मोह के समान कोई मादक द्रव्य नहीं

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः । (यजु० ४०।१)

वेद ने मनुष्य को आदेश दिया है कि (तेन) उस परमेश्वर द्वारा दिये गये पदार्थों का तू (त्यक्तेन) त्याग-भाव से (भुंजीयाः) भोग कर।

परमात्मा ने मनुष्य को विविध पदार्थ दिये हैं कि वह उनका त्याग भाव से उपभोग करे। मनुष्य जीवन की एक बहुत बड़ी समस्या है कि वह पदार्थों का उपभोग तो करना चाहता है, परन्तु त्याग भाव से नहीं। इस त्याग-भाव में बाधक है मोह।

जब प्रेम मूढ़ता की सीमा तक पहुंच जाए तो उसे मोह कहते हैं। जिस वस्तु अथवा व्यक्ति के साथ मेरेपन का सम्बन्ध होता है, वहीं प्रेम की स्थापना होती है। यही प्रेम जब आसक्ति की सीमा तक पहुंच जाता है। और यह विवेक नहीं रहता कि उचित-अनुचित व्यवहार क्या है अथवा अमुक वस्तु अथवा व्यक्ति से हमारा वियोग भी होना है तब यह स्थिति मोह का रूप धारण कर लेती है। प्रेम तृप्ति का कारण होता है तो मोह दुःख का कारण। मनुष्य को यदि इतना विवेक रहे कि वह प्रेम को आसक्ति का रूप न धारण करने दे तो वह मोह की स्थिति से बच सकता है।

—'वेद सन्देश' से

बोध-कथा   *आत्मिक बल की जीत*

गांधी जी ने १५ अगस्त, १९४७ से पूर्व एक वक्तव्य में कहा था—मैं १५ अगस्त के समारोह में भाग नहीं ले सकता। उन्हें दुःख था कि बत्तीस वर्षों के काम का शर्मनाक अन्त हो रहा है। १३ अगस्त को उन्होंने बंगाल के भू.पू. मुख्य-मन्त्री श्री सुहरावर्दी को साथ लेकर बेलेघाटा में एक मुसलमान मजदूर के मकान में रहकर कार्य शुरू किया। गांधी जी के पहुंचने के बाद ही कुछ हिन्दू युवक उनके शान्ति प्रयत्नों के खिलाफ़ प्रदर्शन करने वहां आ धमके। गांधी जी ने उन्हें अपने शान्ति प्रयत्नों का अभिप्राय समझाया और बताया कि भाई-भाई की लड़ाई को रोकना क्यों जरूरी है। यह भी बताया कि हिंसा और तोड़फोड़ से किसी का लाभ न होगा, उल्टे हिन्दुओं का ही नुकसान होगा। उनकी मधुर प्रेमभरी वाणी से युवकों का रोष ठण्डा हो गया। गांधी जी के शान्ति-प्रयासों से कलकत्ते की हालत में रातों-रात परिवर्तन हो गया। दंगे रुक गए, आजादी की अगवानी का दिन १४ अगस्त दोनों कौमों ने संयुक्त रूप से साथ मिलकर मनाया।

एकाएक ३१ अगस्त की रात को बेलेघाट में गांधी जी के निवास स्थान पर कुछ लोगों ने उन्हें घेर लिया और खिड़कियों के कांच फोड़ डाले, लाठियों और ईंटों का प्रहार किया। संयोग से गांधी जी को कोई चोट नहीं आई। उपद्रव शुरू होते ही कलकत्ता की भीतरी बस्तियों और गलियों में घूमकर गांधी जी ने शान्ति-सैनिकों का संगठन कर शान्ति के लिए काम करने का अनुरोध किया। इन शान्ति-प्रयत्नों के साथ ही गांधी जी ने पहली सितम्बर से कलकत्ता में अनशन शुरू कर दिया। 'जब तक कलकत्ता में शान्ति स्थापित नहीं होगी, तब तक गांधी जी अपना उपवास नहीं तोड़ेंगे।' इस घोषणा ने सारे कलकत्ता को हिला दिया। दोनों ही सम्प्रदायों का जोश ठण्डा हो गया। वे लज्जा के मारे झुक गए। उपद्रवकारियों ने आगे आकर कई ट्रक शस्त्र अधिकारियों के पास आकर जमा करा दिए। वे गांधी जी की मौत का कलंक अपने ऊपर लेने की हिम्मत नहीं कर सके थे।

दोनों कौमों के नेताओं ने आपस में शान्ति बनाए रखने की प्रतिज्ञा की और गांधी जी से प्रार्थना की कि वह अनशन समाप्त कर दें। गांधी जी ने इस शर्त पर अपना अनशन तोड़ा कि फिर शान्ति भंग हुई तो वे आमरण अनशन कर देंगे। कलकत्ता के इस उपवास ने जादू का काम किया। 'लन्दन टाइम्स' के भारत स्थित संवाददाता ने कहा—जो काम सेना के कई डिवीजन नहीं कर पाते, उसे एक उपवास ने कर दिखाया। उसके बाद कलकत्ता और बंगाल में कोई गड़बड़ी नहीं हुई। भारत स्थित ब्रिटिश वायसराय लार्ड माउण्टबैटन ने कहा था—"जो चीज गांधी जी ने केवल आत्मिक बल से प्राप्त कर ली है। उसे चार फौजी डिवीजन भी बल-प्रयोग से हासिल नहीं कर सकते थे।" प्रस्तुति—**नरेन्द्र विद्यावाचस्पति**

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ४४, अंक २ वार्षिक मूल्य : बीस रुपये सितम्बर १६६५

सम्पा० अजयकुमार आ० सम्पादक : स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

जिज्ञासु के लिए उपनिषदों की देन—८

शिष्यों को आचार्य का दीक्षान्त भाषण : तैत्तिरीय उपनिषद् का अमर सन्देश

—नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

भारतीय वाङ्मय के अनुसार प्राचीन गुरुकुलों या ऋषि आश्रमों में जब अन्तेवासी-शिष्य अथवा विद्यार्थी अपना अध्ययन पूर्ण कर लेते थे, तब उन्हें आचार्य या गुरु आदेश देता था, उनका अनुशासन करता था। तैत्तिरीय या तित्तिरि महर्षि द्वारा प्रस्तुत की गई उपनिषद् में ऋत, सत्य, तप, स्वाध्याय एवं प्रवचनादि से वर्चस्वी एवं मेधा रूपी अमृत से भरपूर अन्तेवासी या शिष्य अपना विद्याध्ययन पूर्ण कर आचार्य के चरणों में जाकर विदाई लेता था, उन दिनों आचार्य यह आदेश-अनुशासन अथवा सीख देता था— सदा सत्य बोलो **सत्यं वद** । धर्म का पालन करो **धर्मं चर** । स्वाध्याय में कभी प्रमाद न करो **स्वाध्यायान्मा प्रमदः** । दीक्षान्त के समय आचार्य अन्तेवासी शिष्य का अनुशासन करते थे, जहां तुम्हें स्वाध्याय में कभी प्रमाद नहीं करना होगा, वहां जीवन में कभी इन कर्त्तव्यों के पालन में भी प्रमाद नहीं करना होगा । यथा—जैसे सत्य का पालन करने में कभी प्रमाद न करो **सत्यान्न प्रमदितव्यम्** । धर्म का पालन करने में कभी प्रमाद न करो **धर्मान्न प्रमदितव्यम्** । कर्त्तव्य का पालन करने में कभी प्रमाद न करना; इसी प्रकार कुशल-कर्म में आत्मरक्षा में उपयोगी कार्य में कभी प्रमाद न करना **कुशलान्न प्रमदितव्यम्** ; ऐश्वर्य देने वाले मंगलमय शुभकार्यों में कभी प्रमाद न करना **भूत्यै न प्रमदितव्यम्**, इसी

प्रकार स्वाध्याय और प्रवचन में कभी प्रमाद न करो **स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्**; देवताओं-दिव्य गुणों में अपने से बड़े देवों और वय व उम्र में बड़े लोगों के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करने में कभी प्रमाद नहीं करना **देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्** ।

गुरुजनों का आदर करो

आचार्य अन्तेवासियों, शिष्यों को सत्परामर्श देता था । तुम्हें अपने गुरुजनों का आदर, सम्मान करना चाहिए । आचार्य का अनुशासन था, माता को देवी समझना **मातृदेवो भव** । इसी प्रकार पिता, आचार्य तथा अतिथि को भी देव समझना **पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथि देवो भव** । आचार्य का सत्परामर्श होता था । आंख, मूंद कर हमारा अनुसरण न करना प्रत्युत् हमारे जो अच्छे अनिन्दित कार्य हैं, उनका सेवन करना, उनका ही अनुसरण करना **यानि अस्माकम् अनवद्यानि कर्माणि तानि त्वया सेवितव्यानि नेतराणि** । केवल ऐसे ही कर्मों की तुम्हें उपासना करनी चाहिए, दूसरे कर्मों की नहीं ।

आचार्य की सीख होती थी हमें जो भी श्रेष्ठतर विद्वान् जीवन में जिस क्षेत्र में भी जहां भी मिलें उन्हें बैठने के लिए आसन आदि देकर उनका श्रम दूर करना चाहिए, यदि उनमें से किसी को ऊंचा आसन मिले तो तुम्हें लम्बी सांस नहीं छोड़नी चाहिए । तुम्हें उनकी बातों का सार मर्म समझ कर उन्हें ग्रहण करना चाहिए । **ये के चास्मच्छ्रेयांसो ब्राह्मणाः तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम्** ।

जीवन में देने की वृत्ति रखो

शिष्यों को आचार्य सत्परामर्श देता था-जीवन में सदा दूसरों को देने की वृत्ति रखो, आदत डालो, श्रद्धा से दान दो, **श्रद्धया देयम्**, परन्तु श्रद्धा न भी हो तो भी दान देना **अश्रद्धया देयम्**, यदि तुम पर श्री लक्ष्मी की कृपा हो तो दान देना, यदि ऐसी कृपा न हो, तो भी लोक-लाज से देना **श्रिया देयम्, ह्रिया देयम्**, भय के कारण भी देना **भिया देयम्**, प्रेम और प्रतिज्ञा से भी देना **संविदा देयम्** ।

बुजुर्गों के सदाचरण का अनुकरण करो

दीक्षान्त के अवसर पर भावी जीवन के लिए शिष्यों को सतर्क करते हुए आचार्य का स्थायी परामर्श था, जीवन में यदि कभी किसी कार्य या अध्ययन करने में तुम्हें सन्देह हो और यह समझ न पड़े कि इस बारे में तुम्हारा उत्तरदायित्व धर्माचार क्या है अथवा किस अवस्था में कैसा व्यवहार करना है ? उस स्थिति में लोकाचार क्या है ? **अथ**

यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् । उस स्थिति में तुम्हें अपने आसपास के समीपस्थ विचारशील विद्वानों से **तत्र ब्राह्मणाः समदर्शिनः** समदृष्टियों से जीवन में कर्म में लगे सीधे-सादे सन्तुलित कर्तव्य परायण व्यक्तियों से विचारशील जो स्वभाव से रूखे न हों अलूक्षा जो धर्म-नैतिकता का आचरण करने वाले हों **धर्मकामाः स्युः** वे जैसा व्यवहार करें या व्यवहार करने का सत्परामर्श दें तो वैसी स्थिति में तुम वैसा ही उस प्रसंग में आचरण करना । **यथा ते तेषु वर्तेरन् तथा तेषु वर्तेथाः** ।

इसी के साथ आचार्य दीक्षा देते हुए याद दिलाता था, स्मरण कराता था कि आचार्य के लिए जो प्रिय धन हो वह दक्षिणा रूप में **प्रियं धनम् आहृत्य** उस प्रिय धन को दक्षिणा रूप में उसे देना चाहिए। इस विरासत या वंश परम्परा को **प्रजातन्तुम्** छिन्न-भिन्न नहीं करना **मा व्यवच्छेत्सीः** अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम के बाद दूसरे गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होना भी तुम्हारा दायित्व है ।

इतने सारे सत्परामर्श उपदेश आदेश अनुशासन देने के बाद आचार्य अपने वचन पर बल देते हुए कहता था । हमारा यही आदेश है **एष आदेशः** । यही उपदेश है **एष उपदेशः**। यही वेदों और उपनिषदों का सार है **एषा वेदोपनिषद्** । यही हमारा भी अनुशासन है ! **एतद् अनुशासनम्** । इसी प्रकार आचरण करना चाहिए ।

तैत्तिरीय उपनिषद् के ग्यारहवें अनुवाक में अन्तेवासियों को आचार्यों द्वारा दिए दीक्षान्त भाषण का एक व्यवस्थित सन्तुलित विवरण मिलता है कि आचार्य शिष्य को भावी जीवन में सत्य बोलने, धर्माचरण के लिए प्रवृत्त करने के साथ आदेश देता था । स्वाध्याय, सत्याचरण, अपने सामाजिक सांसारिक दायित्वों के निर्वाह में कभी प्रमाद न करो। अन्त में माता-पिता, आचार्य, अतिथि आदि दिव्य शक्तियों का समादर कर गुरुओं की शिक्षाओं पर चलने का आदेश दिया था, स्वभावतः जिज्ञासा होती है कि भारतीय संस्कृति में प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर उच्चतम शिक्षा की क्या प्रणाली थी या क्या कार्यक्रम था, तैत्तिरीय उपनिषत् की शिक्षाध्याय वल्ली के पहले दस अनुवाकों में उसकी ही एक झांकी है।

मानवीय शिक्षा : मौलिक तत्त्व

पठन-पाठन से पूर्व स्तुति, आराधना के माध्यम से जगन्नियन्ता परमेश्वर का स्मरण एवं वन्दन अपेक्षित है । हे ओ३म् आप हमारे सच्चे मित्र हैं, आप हमारे प्राणों के लिए शान्ति दें, आप सुखकारी हों, हमारा सम्पूर्ण वायु संस्थान शान्ति दे, हमारे नेत्र शान्त रहें, हमारी बाहुएं सबल रहें, हमारी वाणी बुद्धि और बृहती विद्या के पति हमारे लिए सुखकारी

हों, हमारा आधार सशक्त एवं गति क्रिया में समर्थ हो। हमारे पैर सुदृढ़ हों, सर्वाधार, सर्वफलप्रद वायु मण्डल के नियन्ता ब्रह्मा आप नमस्करणीय हैं, आप ही प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं। आप सब दिव्य शक्तियों के प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं, आपको ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहता हूं, वहीं कहूंगा जो शास्त्रानुकूल ऋत ही है। इसलिए सत्य ही कहूंगा। मन, वचन, कर्म से ठीक कहूंगा। अन्तःकरण के विरुद्ध कुछ नहीं कहूंगा, सब शुभकार्यों से पूर्व ईशस्तुति निमित्त सत्यवचन की प्रतिज्ञा करता हूं, मेरा सत्य वचन श्रोता की अपेक्षा वक्ता की रक्षा करे, वह उपदेष्टा की रक्षा करे। पहले शिक्षा अध्याय का मूल प्रथम अनुवाक यह है–

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा, शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः, शन्नो विष्णुरुरुक्रमः नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो, त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि, ऋतं वदिष्यामि; सत्यं वदिष्यामि, तन्मामवतु, तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्॥ ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥१॥

ऋषि कहते हैं शिक्षा दो प्रकार की है। एक शब्द-शिक्षा, दूसरी अर्थ-शिक्षा कहलाती है। बालक (बालिका) उच्चारण शुद्ध करें इस दृष्टि से पहली शब्द-शिक्षा में वर्ण, स्वर, मात्रा, प्रयत्न, मध्यम, द्रुत, विलम्बित वृत्ति और संहिता या अवसान आदि के यथार्थ स्वरूप का बोध होना शब्द-शिक्षा कहलाती है। इसके अन्तर्गत शिक्षा नामक वेदाङ्ग और व्याकरण भी परिगणित हो जाते हैं। यह वाचक सम्बन्धिनी शिक्षा भी कही जा सकती है। गुण, कर्म, स्वभावों का शुद्ध करना अर्थ-शिक्षा है, दोनों में दूसरी शिक्षा की महत्ता है। **ओं शिक्षां व्याख्यास्यामः। वर्णः स्वरः मात्रा बलम्, साम सन्तानः इत्युक्तः शिक्षाध्यायः।**

उपनिषत्कार ने वर्ण, स्वर, मात्रा, बल सन्तान आदि की शिक्षा को संहिता कहा है। इसके बाद की भिन्न-भिन्न विषयों के ज्ञान की शिक्षा का नाम 'महासंहिता' दिया गया है। इस शिक्षा का लक्ष्य ब्रह्म-ज्ञान है। संहिता का अर्थ है वाक्यों का योग, जो आपस में संयुक्त हों, एक दूसरे के साथ फिट बैठें। वाक्यविन्यास जिस वर्ण, स्वर आदि के ज्ञान से बनता है, वह संहिता है, । इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा का ज्ञान संहिता-ज्ञान है। उसके बाद माध्यमिक और उच्च शिक्षा का ज्ञान संहत ज्ञान है, यह महासंहिता ज्ञान पांच प्रकार का है उसे अधिलोक, अधिज्योतिष, अधिविद्य, अधिप्रज्ञ तथा अध्यात्म कहते हैं। अधिलोक, लोक सम्बन्धी ज्ञान है। इसे भूगोल विद्या भी कह सकते हैं। अधिज्योतिष इसे खगोलविद्या या ज्योतिषविद्या भी कह सकते हैं। पढ़ाना, उपदेश करना विद्या सम्बन्धी उपयोगी साधनों का व्याख्यान अधिप्रज्ञ, सन्तानोत्पत्ति गृहस्थ विषयक ज्ञान भी अधिप्रज्ञ कहलाता है। विद्याओं

का ज्ञान स्वत: ग्रहण करने और उसे अपनी सन्तान तक पहुंचाने के बाद मानव का दायित्व है कि वह ज्ञान की अन्तिम सीमा आत्म-ज्ञान की प्राप्ति करे । उपनिषद् में इस आत्मज्ञान को अध्यात्म ज्ञान कहा गया है । उपनिषद् में अध्यात्म के दो अर्थ हैं आत्मा का अर्थ शरीर है और आत्मा भी । शरीर की दृष्टि से उसके दो विभाग किए गए हैं । पहला अधर हनु, ठोढ़ी से निम्न भाग और दूसरा उत्तर हनु या ठोढ़ी से ऊपर का भाग । ठोढ़ी से निम्न भाग में शरीर की सारी कर्मेन्द्रियां केन्द्रित रहती हैं । उपनिषत्कार कर्मेन्द्रियों को **'अधरा हनुः पूर्वरूपम्'** पूर्वरूप कहते हैं और वह ज्ञानेन्द्रियों के ज्ञान को उत्तररूप **'उत्तरा हनुः उत्तररूपम्'** कहते हैं । वाणी द्वारा कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों की सन्धि वाक् सन्धि: कही गई है । वाणी की साधिका जिह्वा है, इसलिए उस जोड़ को **जिह्वा सन्धानम्** कहा गया है । शारीरिक दृष्टि से अध्यात्म की यह भी प्रक्रिया है, पर शारीरिक ज्ञान तक अध्यात्म ज्ञान मर्यादित नहीं होता, फलत: उत्तर हनु प्रतीक है—ज्ञानेन्द्रियों और आत्म-ज्ञान का। तैत्तिरीय उपनिषद् में उसे अध्यात्म कहा गया है । **इत्यध्यात्मम्** । इस प्रकार इस उपनिषत् की दृष्टि में सम्पूर्ण शरीर और आत्मा के साथ सम्बन्धित सब समस्याओं का ज्ञान है, संहिता महासंहिता शब्दों का अर्थ ही सब का मिल जाना है । ज्ञान की ये महासंहिताएं हैं, इन पांच महासंहिताओं का वर्णन प्रजा, पशुओं, ब्रह्मतेज, अन्न, स्वर्गलोक से समन्वित हो जाता है । सम्बन्धित ऋचा इस प्रकार है--

अथाध्यात्मम् । अधरा हनुः पूर्वरूपम् । उत्तरा हनुरुत्तररूपम्। वाक्सन्धिः, जिह्वासन्धानम् इत्यध्यात्मम् । इतीमाः महासंहिता । य एवमेता महासंहिता व्याख्याता वेद । सन्धीयते प्रज्ञया पशुभिः ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन सुवर्गेण लोकेन ।।४।।

स्वाध्याय तथा प्रवचन की महत्ता

शिक्षा को सुरक्षित रखने के लिए स्वाध्याय एवं प्रवचन की विशेष महत्ता है, उसका विवरण इस उपनिषद् के नौवें अनुवाक में है। उससे पूर्व चौथे से आठवें अनुवाकों—कुल पांच अनुवाकों में भू:, भुव:, स्व: आदि व्याहृतियों और ओङ्कार की विशद चर्चा है । विद्यार्थी को परमेश्वर से मेधा आदि सर्वोत्तम वस्तुओं को प्राप्त करने की प्रार्थना करनी चाहिए और यथाशक्ति उद्योग करना चाहिए । इसी के साथ शिक्षा प्राप्त करने से पूर्व पृथिवी, अग्नि, ऋक्, प्राण से सम्बन्धित भू का, अन्तरिक्ष, वायु, यजुः अपान से सम्बन्धित भुव: का, असौ आदित्य, चन्द्रमा, ब्रह्म, अन्न से सम्बन्धित चौथी व्याहृति आदि का सम्यक् अर्थ समझना चाहिए। शिक्षा प्राप्ति से पूर्व शिष्य को उपासना सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करने के

लिए पहले अपने मन और इन्द्रियों को सम्यक् नियन्त्रण में करना चाहिए। जीवात्मा को अपना स्वरूप जान कर सत्य सनातन निराकार ब्रह्म की उपासना करनी चाहिए । इसी प्रकार साधक विद्यार्थी को पृथिव्यादि तीन पंचक आधिभौतिक, आधिदैविक तथा प्राणादि के तीन अध्यात्म सम्बन्धी पंचकों का सम्यक् ज्ञान करना चाहिए । आठवें अनुवाक के अन्तर्गत शुभ कर्मों को प्रारम्भ करते हुए तथा उपासना के लिए **ओमिति ब्रह्म, ओमितीदꣳसर्वम्, ओमिति समानि गायन्ति, ओं शोमिति शास्त्राणि शंसन्ति** । ओङ्कार ही ब्रह्म है, ओङ्कार ही सब कुछ है, ओङ्कार की साम स्तुति करते हैं । ओंकार की सब शास्त्र प्रशंसा करते हैं । इस प्रकार प्रत्येक शुभ कार्य का प्रारम्भ करते हुए तथा उपासना के लिए ओंकार का उच्चारण एवं ध्यान करना चाहिए ।

उपनिषत्कार शिक्षा को जीवित-जाग्रत रखने के लिए स्वाध्याय और प्रवचन दो उपाय बतलाते हैं, स्वाध्याय जो शिक्षा ग्रहण की है, जो कुछ पढ़ा है, उसका पाठ करना है, साथ ही नवीन-नवीन ग्रन्थों का अध्ययन करना, दूसरा अपने व्यक्तित्व का अध्ययन करना, यह मूल्यांकन करना कि मैं जीवन में क्या बना हूं, अपनी शिक्षा, अध्ययन को सुरक्षित रखने के लिए मानव जो कुछ जानता है, उसे वह प्रवचन द्वारा दूसरों तक पहुंचाए । इसी के साथ साधक विद्यार्थी को समझ लेना चाहिए सर्वत्र भगवान् का बनाया नियम, जिसे ऋत कहते हैं, चलेगा, मानव का बनाया नियम नहीं । उपनिषत्कार का परामर्श है । जीवन में सत्य का पालन करो, दूसरों के लिए भी सत्य का प्रवचन करो । ऋत और सत्य का पालन करना एक प्रकार की तपस्या है । किसी प्रकार के प्रलोभनों में न पड़ना तप है, उनका दमन करना दम है, प्रलोभनों के मध्य शान्त रहना शम है, इसी तरह अग्न्याधान, अग्निहोत्र, अतिथि-सेवा, मानव सेवा, प्रजा-पालन, सन्तानोत्पत्ति, पुत्र-पौत्रादि के पालन आदि सब दायित्व पूर्ण करते हुए स्वाध्याय- प्रवचन न छोड़े । यह सब उपदेश देते हुए ऋषि कहते हैं सत्य ही सब कुछ है । सत्य कहने वाले रथीतर के पुत्र का कहना था तप ही सब कुछ है । यह तपस्वी पुरुशिष्ट के पुत्र का कथन था, स्वाध्याय और प्रवचन ही सब कुछ हैं, मुद्गल के पुत्र का यह कथन था । इन्हीं दोनों कर्मों से परम कल्याण सम्भव है। पठन-पाठन ही तप हैं, उनका अवश्य सेवन करो। मन्त्र यह है–

ऋतञ्च स्वाध्यायप्रवचने च । सत्यञ्च स्वाध्यायप्रवचने च ॥
तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च । दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च ॥
शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च । अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च ॥
अग्निहोत्रञ्च स्वाध्यायप्रवचने च। अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च ॥
मानुषञ्च स्वाध्यायप्रवचने च । प्रजा च स्वाध्यायप्रचने च ॥

प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च । प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च ॥ सत्यमिति सत्यवचा राथीतरः । तप इति तपोनित्यः पौरुशिष्टिः ॥ स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः तद्धि तपस्तद्धि तपः ॥९॥

जो विद्यार्थी ऋत, सत्य, तप, स्वाध्याय, प्रवचन आदि से समन्वित जीवन व्यतीत करता है उसे अनुभूति होती है-- शरीर रूपी वृक्ष को मैं ही गति देता हूं । मेरी कीर्ति पर्वत की रीढ़ पीठ की तरह ऊंची और सुदृढ़ है, उच्च स्थिति पर पहुंचने के कारण मैं पवित्र हूं, ज्ञानियों के समान मैं पवित्र हूं, मैंने अमृत पा लिया है । ऋत, सत्य, तप, स्वाध्याय, प्रवचन आदि से मिली सम्पदा ही मेरा वर्चस्वी धन है। अच्छी मेधा रूपी अमृत से मैं सींचा गया हूं । वेद के अनुसार ऋषि त्रिशंकु के ये वचन हैं । ऋचा इस प्रकार है-

अहं वृक्षस्य रेरिवा । कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव । ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि । द्रविणं सवर्चसम् । सुमेधा अमृतोक्षितः इति त्रिशंकोर्वेदानुवचनम् ॥१०॥

शिक्षाध्याय वल्ली में प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर उच्चतम शिक्षा तक क्या-क्या पढ़ना चाहिए, इसकी चर्चा है तो प्राचीन शिक्षणालयों के आचार्य अपने अन्तेवासी शिष्य से लम्बे अध्ययन, शिक्षा-कार्यक्रम के बाद अपने दीक्षान्त भाषण में किस प्रकार की दक्षिणा की अपेक्षा करते थे, उसकी पहले ही चर्चा की जा चुकी है । सब तरह की शिक्षा ग्रहण करने के बाद इस उपनिषत् की दूसरी ब्रह्मानन्द वल्ली में आचार्य तथा अन्तेवासी मिल कर एक दूसरे से तादात्म्य स्थापित करने का संकल्प करते हैं-"हे भगवन्, हम दोनों की एक साथ रक्षा करें, हम दोनों साथ मिलकर (अवतु) तृष्णा को छुड़ाकर तृप्त सन्तुष्ट हों, हम दोनों का एक साथ पालन-पोषण, खान-पान करें, हम दोनों की एक साथ रक्षा करें, हम दोनों एक साथ एक दूसरे का बल बढ़ाए, हम दोनों का पठन-पाठन, प्रभावोत्पादक हो, हम आपस में कभी द्वेषभाव से युक्त न हों । हम दो ों को शारीरिक, मानसिक और आत्मिक तीनों प्रकार की शान्ति प्राप्त हो । प्रार्थना-मन्त्र इस प्रकार है-

ओ३म् सह नौ अवतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै । ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

आध्यात्मिक, मानसिक एकता की प्रार्थना करने के बाद ब्रह्मज्ञान के विषय में कहते हैं-ब्रह्म को ठीक तरह से जानने वाला व्यक्ति सृष्टि में जो कुछ भी जानने योग्य परम रहस्य हैं उन को जान लेता है । इसी कारण यह उक्ति कही गई है । ब्रह्म सत्य है, ज्ञान है, अनन्त है, जो साधक जिज्ञासु हृदयाकाश की गहन गुहा में उस ब्रह्म को जान लेता

है, वह सम्पूर्ण कामनाओं से तृप्त हो जाता है, फलतः वह ब्रह्म के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है ।

सृष्टि-विकास की प्रक्रिया

तैत्तिरीय उपनिषत्कार लिखते हैं–उस आत्म तत्त्व से आकाश की सृष्टि हुई, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी, पृथिवी से ओषधियां, ओषधियों से अन्न, अन्न से मानव में वीर्य की सृष्टि होती है, वीर्य से यह प्राणी का शरीर बनता है । अन्न के रस के निर्माण के कारण पुरुष अन्न रसमय कहलाता है । यह अन्नरसमय शरीर ही आत्मा का अन्नमय कोश कहा जाता है । सम्बन्धित मन्त्र इस प्रकार है –

ओ३म् ब्रह्मविदाप्नोति परं तदेषाऽभ्युक्ता । सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्, सोऽश्नुते सर्वान् कामान्। सह ब्रह्मणा विपश्चितेति, तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः, ओषधीभ्योऽन्नम्, अन्नाद्रेतः, रेतसः पुरुषः, स वा पुरुषोऽन्नरसमयः, तस्येदमेव शिरः । अयमात्मा ।

प्राणी का क्रमिक विकास

प्राणी के विकास का क्रम बतलाते हुए ऋषि स्पष्ट करते हैं–पृथिवी पर जो आश्रित हैं या पृथिवी पर जिनकी उपस्थिति है, वे सब अन्न से ही जीवित रहते हैं और अन्त में अन्न में ही समा जाते हैं, पांचों महाभूतों का श्रेष्ठतम रूप अन्न ही है, इसीलिए सब ओषधियों में अन्न ज्येष्ठ कहा जाता है और सब अन्न की प्राप्ति में संलग्न रहते हैं, अन्न को ब्रह्म मानकर ही उसकी उपासना की जाती है । मन्त्र यह है–

अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते, याः काश्च पृथिवीं श्रिताः, अथोऽन्नेनैव जीवन्ति, अथैनदपि यन्त्यन्ततः अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठं तस्मात्सर्वौषधमुच्यते, अन्नाद् भूतानि जायन्ते, सर्वं वै अन्नम् आप्नुवन्ति । ये अन्नं ब्रह्म उपासते ।। दूसरा अनुवाक ।।

ऋषि का कथन है–देव, मनुष्य तथा पशु, प्राण से ही अनुप्राणित हो रहे हैं, प्राण ही सब प्राणियों की आयु है, इसीलिए प्राण सर्वायु कहलाता है । जैसे अन्न सर्वौषध कहलाता है, उसी प्रकार प्राण सर्वायु कहा गया, फलतः अन्न के स्थान पर प्राण को ब्रह्म मान कर उस की उपासना की जाती है और आयु प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। ऋचा इस प्रकार है–

प्राणं देवाः अनुप्राणन्ति मनुष्याः पशवः च ये । प्राणः हि

भूतानाम् आयुः तस्मात् सर्वायुषम् उच्यते । सर्व एव ते आयुः यन्ति ये प्राणं ब्रह्म उपासते ॥

हम यह देख चुके हैं कि मानव का पहला ज्ञान अन्न के साक्षात्कार से होता है, इसी कारण तत्त्वज्ञान की दृष्टि से अन्न को ब्रह्म कहा गया । अन्न के बिना सृष्टि का चक्र नहीं चल सकता । बहुसंख्यक प्राणी प्राणरक्षा के लिए अपना अधिकांश समय अन्न अथवा खान-पान की सामग्री के जुटाने में लगे रहते हैं । प्राणी मात्र का आत्मतत्त्व अन्नमय कोश के लक्ष्य की प्राप्ति में अपना जीवन व्यतीत कर देता है, परन्तु समस्त प्राणी जगत् यह ख्याल नहीं करता कि अन्नमय कोश या शरीर-काया के अतिरिक्त प्राण रूपी ऐसा तत्त्व विद्यमान है, जिसका स्मरण कर प्राणमय कोश या मनोमय कोश की ओर बढ़ा जा सकता है । तैत्तिरीय उपनिषत् के ऋषि परामर्श देते हैं जैसे अन्नमय के अतिरिक्त प्राणमय आत्मा है इसी प्रकार प्राणमय कोश से अतिरिक्त आत्मा मनोमय कोश से भी परिपूर्ण है । जैसे प्राणमय कोश पुरुष के आकार का है, उसी प्रकार मनोमय कोश भी पुरुष के आकार का ही है । शेष बची हुई ऋचा इस प्रकार है-

तस्माद्वा एतस्मात् प्राणमयात् । अन्योऽन्तरः आत्मा मनोमयः तेनैष पूर्णः स वा एष पुरुषविध एव तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयं पुरुषविधः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ब्रह्मानन्द वल्ली ॥

उपनिषत्कार एक मौलिक तथ्य स्पष्ट कर देते हैं कि अन्न, प्राण और मन को ब्रह्म मान कर उनकी उपासना करने से ब्रह्मज्ञान सम्भव नहीं है, उनकी उपासना से प्राकृतिक पदार्थ मिल सकते हैं, भोग्य वस्तुएं उपलब्ध हो सकती हैं, अन्न अथवा मन चाहा भोग्य पदार्थ मिल सकता है, शारीरिक, मानसिक शक्ति पाई जा सकती है, परन्तु सच्चा ब्रह्म ज्ञान जहां वाणी नहीं पहुंच सकती, जहां सच्चा आनन्द है, वहां नहीं पहुंच सकेगा, उपनिषत्कार का कथन है । जहां वाणी और मन लौट आते हैं, वहां से ब्रह्मज्ञान का प्रारम्भ होता है, उस समय ब्रह्मज्ञान से जिस आनन्द की उपलब्धि होती है, उस आनन्द के मिलने पर मानव कठिन से कठिन संकट आने पर भी कभी भयाक्रान्त नहीं होता । मनोमय आत्मा रजो गुण रूप है, फलतः उस में संकल्प-विकल्प का ताना-बाना चलता रहता है, चंचलता रहती है, उसकी अपेक्षा विज्ञानमय आत्मा सत्त्वगुण रूप है, इस कारण शान्ति, धीरता, गम्भीरता आदि गुण रूप से उस में समाधि या समाधान ही प्रमुख है । व्यवस्थित समाधि की स्थिति होने पर परमात्म-ज्ञान होता है और आनन्द की अनुभूति होती है । उपनिषत् का मन्त्र इस प्रकार है-

यतो वाचो निवर्त्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह, आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कदाचनेति, तस्यैष एव शारीर आत्मा, यः पूर्वस्य

तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयात् । अन्योऽन्तरः आत्मा विज्ञानमयः तेनैष पूर्णः स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधताम्, अन्वयं पुरुषविधः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ब्रह्मानन्द वल्ली ॥

ऋषि बतलाते हैं जिस प्रकार अन्नमय से अतिरिक्त प्राणमय है, प्राणमय से अतिरिक्त मनोमय है, मनोमय से अतिरिक्त विज्ञानमय है, उसी प्रकार विज्ञानमय से अतिरिक्त प्राणी की एक और सत्ता आनन्दमय कोश है, यह कोश भी पुरुष के आकार का ही है । मन्त्र देखिए–

तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयात् । अन्योऽन्तर आत्मा आन्दमयः तेन एष पूर्णः स वै एषः पुरुषविधः एव । तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयः पुरुषविधः ॥ इति पंचमोऽनुवाकः॥

ऋषि का परामर्श है सब नित्य-अनित्य, चर-अचर में एक रस कूटस्थ रहता है, इस कारण सदा निर्विकार होने से सत्, स्थूल, एवम् उससे भी सूक्ष्म का आधार होने से परमेश्वर सत्य कहलाता है । **निरुक्ताञ्चानिरुक्तञ्च । निलयञ्चानिलयञ्च । विज्ञानञ्चाविज्ञानञ्च, सत्यञ्चानृतञ्च सत्यमभवत् ॥** सातवें अनुवाक में ऋषि का कथन है–वह अध्यात्म ब्रह्मज्ञान, रस ही रस है । रस को पाकर प्राणी आनन्द में डूब जाता है, भगवान् के निवास हृदयाकाश में यदि आनन्द न हो तो कौन जीवित रहने की इच्छा करे । जब आत्मा इस अदृश्य वर्णनातीत शरीर रहित ब्रह्म में प्रतिष्ठित हो जाता है, उस में अपने को समर्पित कर लेता है, तब वह अभयपद को प्राप्त कर लेता है । मन्त्र इस प्रकार है–

रसौ वै सः, रसं हि एवं लब्ध्वा आनन्दी भवति । को ह्येवान्यत् कः प्राण्यात् । यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् एष ह्येवानन्दयति यद्वा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्ये अनिरुक्तेऽनिलयेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते ॥ इति सप्तमोऽनुवाकः॥

जिज्ञासु जब अन्न-ब्रह्म, प्राण-ब्रह्म, मन-ब्रह्म, विज्ञान-ब्रह्म का ऊहापोह छोड़कर आनन्द-ब्रह्म का विचार धारण कर लेता है, उस समय वह आनन्द की इकाई की कल्पना करता है । एक युवा है, वह बहुत अच्छा है, खूब पढ़ा-लिखा, वह दूसरों को भी पढ़ा सकता है, दूसरों पर शासन कर सकता है, वह बड़ा दृढ़ है, बलवांन् है उसके लिए सम्पूर्ण पृथिवी धन-धान्य से परिपूर्ण हो, वह एक मानव की आनन्द से परिपूर्ण इकाई है । मन्त्र-भाग देखिए–

सा एषा आनन्दस्य मीमांसा । युवा स्यात्, साधु युवा, अध्यापकः आशिष्टः द्रढिष्ठः बलिष्ठः । तस्य इयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात् । स एको मानुष आनन्दः ॥ इत्यष्टमोऽनुवाकः॥

एक मानव के आनन्द को सौ गुणा कर दिया जाए उसे तैत्तिरीय उपनिषत्कार ने मुनष्य के गन्धर्वानन्द की संज्ञा दी. वही आनन्द और

सौ गुणा कर दिया जाए तो उसे **देव-गन्धर्वानन्द** का नाम दिया। उसका भी सौ गुणा कर दिया जाए तो उसे **पितरों का एक आनन्द** और उसे भी सौ गुणा कर दिया जाए तो उसे जन्म से ही दिव्य गुणों को लेकर पैदा हुए व्यक्तियों का '**आजानज व्यक्ति**' आनन्द कहा गया। केवल जन्म से ही नहीं; प्रत्युत कर्म से भी देवत्व पाये व्यक्तियों का शतगुणा अधिक होता है, सौ कर्म देवों के आनन्द से सौ गुणा आनन्द इन्द्रदेव का और उसका भी सौ गुणा आनन्द बृहस्पति का और उससे भी अधिक सौ गुणा आनन्द प्रजापति का आनन्द है और उसे ही ब्रह्मानन्द कहा जाता है। उपनिषत्कार कहते हैं-"यह आनन्द इच्छाओं एषणाओं से शून्य श्रोत्रिय को प्राप्त होता है।" प्रसंग का समापन करते हुए ऋषि कहते हैं-"इस प्रकार जिज्ञासु श्रोत्रिय जान जाता है-पिण्ड के पुरुष और ब्रह्माण्ड के सूर्य में विद्यमान आध्यात्मिक सत्ता एक ही है, वही अखण्ड वास्तविक सत्ता है, जो यह तथ्य जान जाता है। वह अन्न-ब्रह्म के विचार को पीछे छोड़ कर प्राणमय प्राण ब्रह्म-जीवन ब्रह्म के विचार को पारकर वह विज्ञानमय कोश आनन्दमय कोश आनन्द ब्रह्म के विचारों को पीछे छोड़ता हुए ब्रह्मानन्द में लीन हो ब्रह्मलीन हो जाता है, सम्बद्ध अनुवाक का अन्तिम अंश इस प्रकार है--

स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः, स य एवं वित् अस्माल्लोकात्प्रेत्य एतमन्नमयमात्मानमु संक्रामति। एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रामति एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति।

इत्यष्टमोऽनुवाकः॥

मानव जब ब्रह्मानन्द में लीन होता है, उस समय की स्थिति का उल्लेख करते हुए तैत्तिरीय के ऋषि कहते हैं- उसका न वाणी वर्णन कर सकती है, न मन उसका चिन्तन कर सकता है, वहां जो ब्रह्मज्ञानी पहुंच जाता है, उसे ब्रह्मानन्द में लीन होने के कारण किसी दिशा से भी कोई संकट, भय नहीं रह जाता, उसे इस बात की भी चिन्ता नहीं होती कि मैंने कोई साधु-कर्म क्यों नहीं किया और उसे इस बात की भी शंका, सन्देह नहीं होता कि मैंने कभी कोई पाप-कर्म तो नहीं किया। इस प्रकार जो व्यक्ति जिसे न साधु-कर्म न करने का सन्ताप होता है और जिसे न किसी पाप-कर्म करने का प्रायश्चित्त होता है, प्रत्युत जो व्यक्ति अपना कर्त्तव्य समझ कर सब कुछ करता है, वस्तुतः वह आत्मा में बल धारण कर लेता है, ये दोनों विचार उसकी आत्मा को बल देते हैं; जो अध्यात्म का यह रहस्य जान लेता है, वह भली प्रकार समझ लेता है-यही उपनिषत् का सन्देश या शिक्षा है। मूल मन्त्र इस प्रकार है-

यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह, आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान। न बिभेति कुतश्चनेति । एतं हि वाव न तपति । किमहं साधु नाकरम्, किमहं पापम् अकरवमिति स य एवं विद्वानेते आत्मानं स्पृणुते उभे ह्येवैष एते आत्मानं स्पृणुते, य एवं वेद इत्युपनिषत् ॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥

पांच कोशों का क्या अभिप्राय है ?

कहते हैं वारुणि का पुत्र भृगु अपने पिता वरुण के पास गया। उनसे निवेदन किया–"हे भगवन् मुझे ब्रह्म का उपदेश दीजिए ।" वरुण ने भृगु से कहा–अन्न, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन तथा वाणी जिससे उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होने के बाद जिसके कारण जीवित रहते हैं और जीने के बाद जिसमें लौट जाते हैं और जिसमें विलीन हो जाते हैं, उसे आप ब्रह्म ही जानिए ।" यह उपदेश सुनने के बाद भृगु ने तप किया और तपस्या के बाद पिता के पास लौटा और उन्हें गुरु का सन्देश सुनाया। भृगुवल्ली का पहला अनुवाक इस प्रकार है–

भृगुर्वै वारुणिः वरुणं पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तस्मा एतत्प्रोवाच । अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनोवाचमिति। तं होवाच यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व । तद् ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा ॥

भृगु ने पिता से कहा–"अन्न-ब्रह्म को मैं जान गया, उसी से प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन, वाणी आदि सब भूत पैदा होते हैं (**अन्नं-ब्रह्म इति व्यजानात्**) इसी प्रकार प्राण-ब्रह्म को मैं जान गया । (**प्राणः ब्रह्म इति व्यजानात्**) प्राण से ही सब चक्षु, श्रोत्र, मन, वाणी आदि सब भूत उत्पन्न होते हैं, इसी प्रकार मन-ब्रह्म को मैं जान गया । (**मनः ब्रह्म इति व्यजानात्**) मन-ब्रह्म से ही सब भूत पैदा हो जाते हैं; इसी प्रकार विज्ञान-ब्रह्म को मैं जान गया, विज्ञान से ही प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन, वाणी, आदि सब भूत उत्पन्न होते हैं । (**विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्**) इसी तरह इस प्रक्रिया में आनन्द-ब्रह्म को मैं जान गया । (**आनन्दो ब्रह्म इति व्यजानात्**) आनन्द से ही उक्त सब भूत उत्पन्न होते हैं, ये आनन्द से उत्पन्न होने के कारण जीवित बने रहते हैं (**आनन्देन जातानि जीवन्ति**) फिर आनन्द में ही लौट जाते हैं (**आनन्दं प्रयन्ति**) आनन्द में विलीन हो जाते हैं । (**अभिसंविशन्ति**) इस प्रकार निरन्तर तपस्या की प्रक्रिया प्रचलित रख कर जिज्ञासु भृगु ने जान लिया कि अन्न, प्राण, मन, विज्ञान आदि ब्रह्म नहीं हैं, आनन्द तथा उसका उपसंक्रमण करने के बाद ब्रह्म रूपी सत्ता में लीन होना सम्भव है ।

इसे भृगु-वरुण की विद्या कहा जा सकता है। (**सा एषा भार्गवी वारुणी विद्या**) असल में यह विद्या मानव के हृदयाकाश में प्रतिष्ठित है। (**परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता**) जो व्यक्ति यह विद्या जानता है, वह जीवन में डांवाडोल नहीं होता (**स य एवम् वेद प्रतितिष्ठति**) वह स्थिर बुद्धि होकर अन्न का भोक्ता-अन्नवान् हो जाता है, (**अन्नवान् अन्नादः भवति**) फलतः प्रजा, पशु, ब्रह्म, तेज तथा कीर्ति से महान् हो जाता है। (**महान् भवति प्रजया पशुभिः ब्रह्मवर्चसेन महान् कीर्त्या** ।)

अन्न की महिमा

लम्बी तपस्या के बाद भृगु को यह समझ आ गई कि ब्रह्म प्रतीत न होने वाले अन्न, प्राण, मन, विज्ञान, आनन्द को सब कुछ मानकर उपासना करने से कुछ न होगा, अधिक तपस्या-चिन्तन से उनकी आधारभूत जीवनदात्री सत्ता ही यथार्थ ब्रह्म है, पर इस सचाई या तथ्य को भुलाया नहीं जा सकता कि प्राणियों के जीवनयापन का आधार एवं सब समस्याओं की जड़ रोटी या अन्न की उपेक्षा नहीं की जा सकती। तैत्तिरीय उपनिषत् के सातवें, आठवें और नवम अनुवाकों में अन्न या भौतिकवाद की महत्ता को अंगीकार करते हुए वरुण पुत्र भृगु से कहते हैं—यद्यपि यथार्थ ब्रह्म को न जानने से अन्न को ब्रह्म मानकर उसकी उपासना उचित नहीं है, तथापि अन्न-ब्रह्म की निन्दा भी ठीक नहीं है। ऋषि कहते हैं—अन्न-ब्रह्म की निन्दा न करे, यह व्रत धारण करे कि अन्न-ब्रह्म की निन्दा नहीं करनी चाहिए, शरीर प्राण का भोक्ता है क्योंकि शरीर प्राण के आधार पर टिका हुआ है। और प्राण शरीर के आधार पर प्रतिष्ठित है, सार रूप से कहा जा सकता है—अन्न, अन्न के सहारे पर प्रतिष्ठित है। यह सिद्धान्त भी उभर कर आता है कि प्रत्येक पदार्थ किसी अन्य अन्न की दृष्टि से अन्न है, भोग्य है, किसी दूसरे अन्न या भोग्य के सहारे टिका हुआ है, जो यह तथ्य जान लेता है, वह संसार में प्रतिष्ठित हो जाता है, अन्नाद या अन्नवान् हो जाता है, संसार में भोक्ता बन कर निवास करता है और प्रजा, पशु, ब्रह्म, तेज के कारण महान् समझा जाता है, उसकी जगत् में कीर्ति फैल जाती है। ७।८,९ अनुवाक के प्रमुख भाग हैं—

अन्नं न निन्द्यात्, तद् व्रतम्। प्राणः वा अन्नम्, शरीरमन्नादम्। प्राणे शरीरे प्रतिष्ठितम्, शरीरे प्राणः प्रतिष्ठितः, तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्, स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवान् अन्नादः भवति, महान् भवति प्रजया पशुभिः ब्रह्मवर्चसेन महान् कीर्त्या ॥ ७,८,९ अनुवाक॥

इस सम्पूर्ण प्रकरण में अन्न का अर्थ है भोग्य, अन्नाद का अर्थ

हुआ । अन्न को खाने वाला भोक्ता । भोक्ता और भोग्य एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं । इस उपनिषत् की भृगु वल्ली में पहले अनुवाक से लेकर छठे अनुवाक तक भृगु ने अन्न, प्राण, मन, विज्ञान, आनन्द को ब्रह्म मान कर क्रम से उनकी उपासना की और अन्त में यह ज्ञान प्राप्त किया कि असल में ब्रह्म वे नहीं हैं, उनके सिवाय ब्रह्म है, परन्तु पिछले सातवें, आठवें और नौवें अनुवाकों में पिता वरुण ने शिष्य पुत्र वरुण को समझाया कि यद्यपि अन्न आदि ब्रह्म नहीं हैं, तथापि जीवन में उनकी महत्ता कम नहीं है । इसलिए तीन अनुवाकों के माध्यम से जिज्ञासु को परामर्श दिया गया–अन्न की निन्दा नहीं करनी चाहिए (**अन्नं न निन्द्यात्**) ७ वां अनुवाक ।। आठवें अनुवाक में कहा गया–अन्न का अनादर नहीं करना चाहिए । और नौवें अनुवाक में चेतावनी दी गई– अन्न का आवश्यकता से अधिक संग्रह भण्डार एकत्र न करे, बहुत बड़ा भण्डार एकत्र करे, परन्तु केवल अपने भोग के लिए नहीं, दूसरों को देने में संकोच न करे (**अन्नं बहु कुर्वीत**) ।

अन्न का अधिक संग्रह करे, परन्तु अपने उपभोग के लिए नहीं, प्रत्युत यदि अपने आवासीय क्षेत्र में कोई अभावग्रस्त हो, अथवा पदार्थों की कमी के कारण किसी की जरूरत हो तो उसे देने में संकोच न करे वह यह व्रत ले ले । जो कुछ संग्रह किया जाता है, वह दूसरों के लिए है, अन्न का जो ऊपर का, जो मध्य का और अन्त का भाग है, वह दूसरों के लिए ही सिद्ध किया जाता है । (सम्बन्धित ऋषि उक्ति इस प्रकार है ।

न कञ्चन वसतौ प्रत्याचक्षीत् । तस्मात् यया कया च विधया बहु अन्नं प्राप्नुयात् । अराधि अस्मै अन्नम् इति आचक्षते, एतद् वै मुखतः अन्नं राद्धम्, मुखतः अस्मै अन्नं राध्यते एतद् वै मध्यतः अन्नं राद्धम्, मध्यतः अस्मै अन्नं राध्यते, एतद् वै अन्ततः अन्नं राद्धम्, अन्ततः अस्मै अन्नं राध्यते।।

भृगुवल्ली का दसवां अनुवाक।।

जो व्यक्ति स्वार्थ हीनता के चिन्तन को अंगीकार कर लेता है, उसकी वाणी में सब के कल्याण की भावना होती है, उसके श्वास-प्रश्वास में सब के कुशल मंगल की भावना होती है, उसके हाथों में कर्म शक्ति रहती है, उसके पांवों में हर किसी शुभ-कार्य के लिए चल पड़ने की गति रहती है, उसका स्वास्थ्य व्यवस्थित रहता है, मानव-समाज के लिए यही शास्त्रीय व्यवस्था है, जो व्यक्ति स्वार्थपूर्ण जीवन का परित्याग कर दूसरों के लिए जीता है, वह व्यक्ति सम्पूर्ण आयुष्य स्वस्थ, कर्मठ और सक्रिय रहता है । उपनिषत् की वाणी इस प्रकार है–

य एवं वेद क्षेमः इति वाचि योगक्षेमः इति प्राणापानयोः कर्म इति हस्तयोः गति इति पादयोः विमुक्ति इति पादयोः विमुक्ति इति पायौ इति मानुषीः समाजाः ॥

ऐसे परोपकारी व्यक्ति को दिव्य गुण प्राप्त होते हैं, उसकी तृप्ति के लिए यथेच्छ वृष्टि होती है, उसे विद्युत् जितना बल मिलता है, अनेक गाय, बैल, घोड़े आदि रखने वालों को मिलने वाला यश प्राप्त होता है, नक्षत्रों के तुल्य ज्योति उनमें होती है, फलतः उसे प्रजापति का अमृत एवम् उपस्थ का आनन्द मिलता है, इस पृथ्वी और आकाश के मध्य किसी को भी मिलने वाला सब कुछ उसे मिल जाता है। ऋचा इस प्रकार है–

अथ दैवी, तृप्तिरिति वृष्टौ बलमिति विद्युति, यशः इति पशुषु, ज्योतिरिति नक्षत्रेषु, प्रजापतिरमृतमानन्द इति उपस्थे, सर्वम् इति आकाशे ॥

तैत्तिरीय उपनिषत् की शिक्षावल्ली में शिक्षा का लक्ष्य आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति कहा गया था, दूसरी ब्रह्मानन्द वल्ली में आत्मज्ञान का साक्षात्कार ही ब्रह्म प्राप्ति का लक्ष्य कहा गया था तो इस तीसरी भृगु वल्ली में अध्यात्म और आधिभौतिक का सामजस्य अभीष्ट कहा गया है। यह भी अभिव्यक्त किया गया कि अन्न, प्राण, मन, विज्ञान, आनन्द ब्रह्म नहीं है। यह भी स्पष्ट किया गया कि उन सब से ब्रह्म पृथक् है, इसी के साथ यह भी स्पष्ट किया गया कि अन्नादि आधिभौतिक की उपेक्षा समुचित नहीं है, प्रत्युत अध्यात्म तथा आधिभौतिक अन्योन्याश्रित हैं। एक ओर भृगुवल्ली में निर्देश दिया गया कि अन्न की कितनी महिमा है तो इसी वल्ली में अध्यात्म की महिमा का वर्णन करते हुए ऋषि कहते हैं–अध्यात्म की उपासना करते हुए उपासक को समझना चाहिए कि ब्रह्म सर्वत्र प्रतिष्ठित है, जो इस तथ्य को अंगीकार कर उपासना करता है, उसकी सब जगह प्रतिष्ठा हो जाती है, इसी के साथ ब्रह्म को महान् समझना चाहिए, ब्रह्म को महान् समझ कर उपासना करने से वह स्वतः भी महान् हो जाता है, ब्रह्म सब कुछ मनन पूर्वक करता है, जो ब्रह्म को विचारवान् समझता है, वह स्वयं भी विचारवान् बन जाता है, भगवान् की उपासना करते हुए भगवान् को नमन करना चाहिए, नमन करते हुए जो ब्रह्म की उपासना करता है, उसकी सब कामनाएं भी उसे नमन करने लगती हैं। ब्रह्मरूप में ही जो ब्रह्म की उपासना करे, वह ब्रह्मवान् हो जाता है। परिमर रूप में ब्रह्म की उपासना करने वाले के सब शत्रु परास्त हो जाते हैं, उसके अप्रिय बन्धु-बान्धव भी नष्ट हो जाते हैं। मूल संहिता इस प्रकार है–

ततः प्रतिष्ठा इति उपासीत प्रतिष्ठावान् भवति । ततः महः इति उपासीत महान् भवति, तन्मन इत्युपासीत मानवान् भवति, तन्नमः इत्युपासीत, नम्यन्तेऽस्मै कामाः । तत् ब्रह्म इति उपासीत ब्रह्मवान् भवति, तत् ब्रह्मणः परिमरः इति उपासीत परिएनं म्रियन्ते द्विषन्तः सपत्नाः परि ये अप्रियाः भ्रातृव्याः ॥

ऋषि इस वल्ली में कभी अन्न को ब्रह्म, कभी प्राण को ब्रह्म मानता है तो कभी मन, विज्ञान, आनन्द आदि को ब्रह्म समझ इन सब की उपासना करता है, उपासक भृगु को अधिक चिन्तन से अनुभूति होती है कि ब्रह्म इन पांचों कोशों से परे है । इस चिन्तन का सारांश प्रस्तुत करते हुए भृगु के पिता वरुण कहते हैं । हे भृगु, यह सनातन सिद्धान्त समझ लो जो पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में है, यदि पुरुष पिण्ड का प्रतिनिधि है तो आदित्य ब्रह्माण्ड का प्रतिनिधि है । पुरुष रूपी पिण्ड में अन्न, प्राण, मन, विज्ञान और आनन्द हैं तो ब्रह्माण्ड में भी ये तत्त्व विद्यमान हैं । दोनों की नियामक शक्ति आत्म-शक्ति है । जो व्यक्ति पिण्ड तथा ब्रह्माण्ड में एक ही व्यवस्था को व्याप्त देखता है, वह इस लोक से मुक्ति पाकर आत्मा, अन्न, प्राण, मन, विज्ञान, आनन्द आदि कोशों की कामनाओं से परिभ्रमण करता हुआ अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है । तब आनन्दोल्लास में यह सामगान करता है ऋचा इस प्रकार है–

स यश्च अयं पुरुषे यश्चासौ आदित्य स एकः । स य एवं विद् अस्मात् लोकात् प्रेत्य एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रम्य, एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रम्य एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रम्य, एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रम्य, एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रम्य इमान् लोकान् कामान् नीकामरूपी अनुसंचरन् । एतत् साम गायन्नास्ते॥

उपासक गाने लगता है–मैं अन्न हूं, मैं अन्न हूं, मैं अन्न हूं। अब तक मैं भोग्य बना हुआ था, भौतिक जगत् को अपना सर्वस्व माने बैठा था, अन्न को ब्रह्म माने बैठा था, परन्तु मुझे अनुभूति हो गई है, मैं अन्नाद हूं, अर्थात् मैं भोग्य नहीं भोक्ता हूं, भौतिक जगत् के सारे विषय मुझे भोग रहे थे, पर मैं जान गया हूं--मैं भोग्य नहीं भोक्ता हूं, विषयों में आसक्त होने से मैं अपनी कीर्ति भुला बैठा था । पर मुझे अब अहसास हो गया है कि मैं अपनी कीर्ति स्वयं बनाने वाला हूं, मुझे इन्द्रियों के पीछे नहीं चलना, मैं अमृत का केन्द्र हूं, जिन्होंने मुझे जीवन दिया है, वही मेरी रक्षा करेंगे, मैं अन्न हूं, मैं भोग्य हूं तो ऐसा भोक्ता भी हूं जो भोग्य को भी खा जाता है । अगर विषय मुझे खाने वाले हैं तो मैं भी विषयों को खाने वाला हूं । मैं सम्पूर्ण विश्व को अभिभूत कर देता हूं, मैं वह हूं जो यह सब कुछ जानता है, जो यह जान जाता है वह इस उपनिषत् के

रहस्य को जान जाता है । अन्तिम ऋचा यह है–

अहमन्नमहमन्नमन्नम् । अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः। अहं श्लोककृत् अहं श्लोककृत् अहं श्लोककृत् । अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य । पूर्वं देवेभ्योऽमृतस्य नाभिः । यो मा ददाति स इदेव मावाः। अहमन्नमन्नमदन्तमाद्‌मि । अहं विश्वं भुवनमभ्यभवां सुवर्णज्योतिः। य एवं वेद इत्युपनिषत् ॥ इति दशमोऽनुवाकः॥

यह भौतिक जगत् में आनन्द की खोज में अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय, कोशों को अतिसंक्रमण कर उसे अखण्ड आनन्द का स्रोत मिलता है, इस उपनिषद् में वरुण ऋषि इसी को ब्रह्मानन्द नाम देते हैं ।

साहित्य समीक्षा

१. बिखरे मोती–(ऋषि दयानन्द तथा आर्यसमाज के अनेक महापुरुषों के रोचक किन्तु शिक्षाप्रद अछूते संस्मरणों के साथ-साथ शास्त्रार्थों के मनोरजंक प्रसंग, कवियों और साहित्यकारों के हास्य विनोद आदि का अद्भुत संग्रह)

सम्पादक–डा॰ भवानीलाल भारतीय मूल्य ४०/- रु॰

डा॰ भारतीय के विशाल अध्ययन तथा उनकी चयन क्षमता का प्रतीक यह संग्रह अपने आपमें एक अनूठी वस्तु है । इसमें ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, पं॰ ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, पं॰ युधिष्ठिर मीमांसक, महात्मा नारायण स्वामी जैसे अनेक आर्य महापुरुषों के जीवन में घटित उन रोचक किन्तु शिक्षाप्रद घटनाओं का संकलन है । जो विभिन्न स्रोतों से एकत्र की गई हैं । स्वामी दर्शनानन्द, पं॰ गणपति शर्मा, पं॰ धर्मभिक्षु, पं॰ रामचन्द्र देहलवी तथा अमर स्वामी आदि शास्त्रार्थ महारथियों के न्यूनातिन्यून ३१ रोचक प्रसंगों के अतिरिक्त आर्यों की हाजिर जवाबी, साहित्यकारों के बहुरंगी जीवन की झांकियां, उपदेशकों के चुटकुले, कविगुरु, रवीन्द्रनाथ, स्वामी विवेकानन्द, पं॰ नेहरू, जार्ज बर्नार्ड शा आदि विश्व ख्याति के पुरुषों के मार्मिक संस्करणों का यह एक ऐसा अनुपम संग्रह है, जिसे एक बार हाथ में लेने पर समाप्त किये बिना उठना असम्भव है । रोचक ज्ञानवर्धक तथा शिक्षाप्रद ।

२. दीप्ति–(वैदिक सिद्धान्तों, ऋषि दयानन्द एवम् आर्यसमाज विषयक विभिन्न शोध निबन्धों का संग्रह)

लेखक–**स्वामी विद्यानन्द सरस्वती** मूल्य ८०/- रु०

स्वामी विद्यानन्द का आज के आर्य विद्वानों में शीर्षस्थ स्थान है। उन्होंने वेद, दर्शन, आर्य सिद्धान्त, आर्य संस्कृति, इतिहास विषयक अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ विगत दो दशाब्दों में हमें दिये हैं। आलोच्य ग्रन्थ उनके सु विवेचित, शास्त्र प्रमाणों, युक्तियों एवं तर्क से समन्वित१६ ऐसे निबन्धों का संग्रह है जिनमें शरीर में जीवात्मा का आवास, स्थावर (वृक्षों में) जीव विचार, कालाकाल मृत्यु, सृष्टि संवत् आदि उन विषयों का विचार है जो आर्य विद्वानों में भी विवाद के कारण बने हुए हैं। ऋषि के जीवन से सम्बन्धित निबन्धों में ऋषि की मृत्यु का कारण (अपराधी कौन ?) १८५७ की हलचल में स्वामी दयानन्द की तथाकथित भूमिका आदि विषय विवेचित हुए हैं। इन निबन्धों में भावुकता, अतिवादिता तथा अतिशयोक्ति को सर्वथा एक ओर रख कर स्वामी जी ने एक सतर्क समीक्षक की बेबाकी के साथ इन विवादों को सुलझाया है। ये निबन्ध उन लोगों के नेत्रोन्मीलन का कार्य करेंगे जो पं० दीनबन्धु वेद शास्त्री द्वारा कल्पित ऋषि की अज्ञात जीवनी अथवा सोरम सामग्री जैसे निराधार प्रसंगों से आतंकित अथवा प्रभावित होकर स्वामी जी के जीवन का अध्ययन करने में पूर्वाग्रहों से प्रेरित हो जाते हैं। अवशिष्ट निबन्धों में आर्यसमाज की स्थापना की तिथि, आर्यसमाज और राजनीति आदि तथा आर्यसमाज और भारत की वर्तमान राजनीति पर ऐतिहासिक संदर्भ में विवेचन किया गया है। प्रायः देखा जाता है कि अनेक आर्य संन्यासी द्रव्य लोभ के वशवर्ती होकर यज्ञों में ब्रह्मा का पद लेने में संकोच नहीं करते और ऐसा करके वे गृहस्थ पुरोहितों की जीविका पर प्रत्यक्ष प्रहार करते हैं, विद्वान् लेखक ने अनेक शास्त्रीय प्रमाण देकर यज्ञ में ब्रह्मा पद पर विद्वान् गृहस्थ पुरोहित के अधिकार का विवेचन किया है। स्वाध्यायशील आर्यों के लिए यह पुस्तक एक सुन्दर उपहार है।

३. वैदिक ज्ञानधारा–

सम्पादक–**प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु** मूल्य ८०/-रु०

आर्यसमाज के विगत काल के अनेक मनस्वी लेखकों, चिन्तकों तथा विचारकों के द्वारा रचित साहित्य से आज के आर्य पाठक प्रायः अपरिचित ही हैं। आवश्यकता इस बात की है कि ऐसे विशिष्ट निबन्ध साहित्य को पुनः उपलब्ध कराया जाय। प्रा० जिज्ञासु के द्वारा सम्पादित यह ग्रन्थ इसी प्रयास की एक कड़ी है। पूरा ग्रन्थ अध्यात्म, सिद्धान्त

तथा इतिहास शीर्षक तीन खण्डों में विभक्त है और कुल ३८ निबन्ध इसमें सम्मिलित किये गये हैं। अध्यात्म खण्ड के लेखक उच्च कोटि के आर्य संन्यासी हैं जिनमें स्वामी सर्वदानन्द, स्वामी अनुभवानन्द, स्वामी वेदानन्द तीर्थ, महात्मा नारायण स्वामी आदि वे नाम हैं जिन्होंने अपने युग में आर्यसमाज में भक्ति, अध्यात्म तथा उच्चतम जीवन मूल्यों की स्थापना की थी। सिद्धान्त खण्ड की समृद्धि का पता इसी बात से चलता है कि इसमें पं० चमूपति, पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, पं० बिहारीलाल शास्त्री जैसे सिद्धान्तमर्मज्ञ लेखकों की रचनाएँ संकलित हैं, आशा है इस सुन्दर और पठनीय ग्रन्थ को यदि आर्य जनता अपनायेगी तो सम्पादक इसी प्रकार के अन्य उत्कृष्ट निबन्धों को भी प्रकाश में लाकर विगत काल की श्रेष्ठ कृतियों को हमें उपलब्ध करायेंगे।

४. सत्यार्थप्रकाश का अभिनव संस्करण (आधुनिक हिन्दी रूपान्तर) रूपान्तरकार–स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती।

प्रकाशक–भगवती प्रकाशन, एच.१/२ मॉडल टाउन, दिल्ली-९।

मूल्य १२५/- रु०

स्वामी दयानन्द द्वारा रचित सत्यार्थप्रकाश विश्व के धार्मिक साहित्य का एक ऐसा कालजयी गन्थ है जिसमें व्यक्त महर्षि की क्रान्त दृष्टि को आद्यन्त देखा जा सकता है। निश्चय ही इस ग्रन्थ ने आर्यावर्तीय वैदिक, अवैदिक तथा मध्य एशिया में जन्मे सैमेटिक मजहबों की आस्थाओं और मान्यताओं में अपूर्व चेतना तथा वैचारिक मन्थन की स्थिति पैदा की है। सत्यार्थप्रकाश की रचना विगत शताब्दी में हुई थी जब कि हिन्दी खड़ी बोली का गद्य अपनी शैशवास्था में था। पुनरपि स्वामी जी के इस ग्रन्थ में लेखकों, लिपिकारों, सम्पादकों एवं संशोधकों द्वारा मनमाने परिवर्तन आदि भी होते रहे। स्वामी जगदीश्वरानन्द जी ने इस संस्करण में भाषा का पूर्ण परिष्कार कर उसे एक अभिनव रूप दिया है, संशोधन का सम्पूर्ण दायित्व भी उन्हीं पर है।

–डा० भवानीलाल भारतीय

बहुत दिनों बाद प्रकाशित पुस्तकें

जीवांत्मा : *पं॰ गंगाप्रसाद उपाध्याय ।* जीवात्मा के लक्षणं, शरीर और शरीरी, अभौतिक आत्मा, पुनर्जन्म, मुक्ति, जीव-ब्रह्म-सम्बन्ध आदि अनेक विषयों पर महत्त्वपूर्ण लेखों का संग्रह । **मूल्य** : ४०-०० रु॰

प्रार्थनालोक : *स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ।* यज्ञ से पूर्व स्तुति-उपासना के आठ मन्त्रों, प्रात:काल पाठ करने के मन्त्रों तथा शिव संकल्प के छ: मन्त्रों की सरल-सुबोध व्याख्या । **मूल्य** ४०-००

सामाजिक पद्धतियाँ : *महाशय मदनजित् आर्य ।* सन्ध्या, हवन-मन्त्र, यज्ञोपवीत, प्रथम वस्त्र परिधान, जन्म दिवस, विवाह पद्धति, सगाई पद्धति, सेहरा बन्दी, शैंत, मिलनी, गार्हपत्याग्नि-पद्धति, व्यापार-सूत्र, दुकान का मुहूर्त, अन्त्येष्टि क्रिया आदि आवश्यक सामाजिक पद्धतियों का संग्रह । **मूल्य** : १२-०० रु॰

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार : *पं॰ सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार।* इस ग्रन्थ में वैदिक विचारधारा को विज्ञान की कसौटी पर परखने का प्रयत्न किया गया है, ताकि हमारी नई पीढ़ी जिन मान्यताओं को अवैज्ञानिक कह कर छोड़ती जा रही है, उन पर नई दृष्टि से सोचें । **मूल्य**: १५-०० रु॰

षड्दर्शनम् : *स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ।* वैदिक साहित्य में दर्शनों का विशेष महत्त्व है । वेद में ईश्वर, जीव, प्रकृति, पुनर्जन्म, मोक्ष-योग, कर्मसिद्धान्त यज्ञ आदि का बीजरूप में वर्णन है, दर्शनों में इन्हीं विचार-बिन्दुओं पर विस्तृत विवेचन है । **मूल्य**: १५-०० रु॰

THE ONLY WAY ***by Mahatma Anand Swami Saraswati.*** The PATH which Vedas, Upnishads and Brahman Granthas expound is the PATH of TRUTH. Which we have to follow in order to avoid misery, sorrow, disease, poverty and starvation. Price Rs. 30.00

ANAND GAYATRI KATHA ***by Mahatma Anand Swami - Saraswati.*** It contains touching narration of `GAYATRI' in a very simple language, also describes the manner in which GAYATRI' is muttered. Price Rs. 30.00

हमारे प्रकाशन

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

आनन्द गायत्री कथा	१४-००
एक ही रास्ता	१२-००
शंकर और दयानन्द	८-००
मानव जीवन-गाथा	१३-००
सत्यनारायण व्रत कथा	५-००
भक्त और भगवान्	१२-००
उपनिषदों का सन्देश	१८-००
घोर घने जंगल में	२०-००
मानव और मानवता	३०-००
प्रभु मिलन की राह	२०-००
यह धन किसका है ?	२२-००
बोध-कथाएँ	१८-००
दो रास्ते	१७-००
दुनिया में रहना किस तरह ?	१५-००
तत्त्वज्ञान	२०-००
प्रभु-दर्शन	१५-००
प्रभु-भक्ति	१२-००
महामन्त्र	१२-००
सुखी गृहस्थ	७-००
त्यागमयी देवियाँ	८-००

MAHATMA ANAND SWAMI

Anand Gayatri Katha	30-00
The Only Way	30-00
Bodh Kathayen	40-00
How To Lead Life ?	30-00

महर्षि दयानन्द

व्यवहारभानु	४-००
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	१-५०
आर्योद्देश्यरत्नमाला	१-५०

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००-००
वाल्मीकि रामायण	१७५-००
षड्दर्शनम्	१५०-००
चाणक्यनीतिदर्पण	६०-००
विदुरनीतिः (हिन्दी-संस्कृत-अंग्रेजी)	४०-००
ब्रह्मचर्य गौरव	९-००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	९-००
कुछ करो कुछ बनो	१२-००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१२-००
आदर्श परिवार	१५-००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५-००
वैदिक विवाह-पद्धति	८-००
ऋग्वेद सूक्ति-सुधा	२५-००
अथर्ववेद सूक्ति-सुधा	१५-००
सामवेद सूक्ति-सुधा	१२-००
ऋग्वेदशतकम्	१०-००
यजुर्वेदशतकम्	१०-००
सामवेदशतकम्	१०-००
अथर्ववेदशतकम्	१०-००
भक्ति संगीतशतकम्	६-००
चमत्कारी औषधियाँ	१५-००
घरेलू औषधियाँ	१५-००
चतुर्वेदशतकम् (सजिल्द)	५०-००
स्वर्ण पथ	१२-००
प्रभात-वन्दन	८-००
प्रार्थना-प्रकाश	८-००
शिवसंकल्प	८-००
प्रार्थनालोक (सजिल्द)	४०-००

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वेद-सौरभ १२-००

सत्यार्थप्रकाश (सा०) १२५-००

सत्यार्थप्रकाश (विशेष) २००-००

आचार्य उदयवीर शास्त्री

न्यायदर्शन भाष्य १५०-००

वैशेषिकदर्शन भाष्य १२५-००

सांख्यदर्शन भाष्य १२५-००

योगदर्शन भाष्य १००-००

वेदान्तदर्शन भाष्य (ब्रह्मसूत्र) १८०-००

मीमांसादर्शन ३५०-००

सांख्यदर्शन का इतिहास २५०-००

सांख्य सिद्धान्त २००-००

वेदान्तदर्शन का इतिहास २००-००

प्राचीन सांख्य सन्दर्भ १००-००

वीर तरंगिणी (लेखों का संग्रह) २५०-००

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

आदि शंकराचार्य वेदान्ती नहीं थे ४०-००

सृष्टि विज्ञान और विकासवाद ४०-००

वेद मीमांसा ५०-००

दीप्तिः ८०-००

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

शतपथब्राह्मण (तीन खण्ड) १८००-००

सन्ध्या : क्या, क्यों, कैसे १५-००

विवाह और विवाहित जीवन १८-००

जीवात्मा ४०-००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

ब्रह्मचर्य सन्देश २५-००

वैदिक विचारधारा का
वैज्ञानिक आधार १५०-००

प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु

महात्मा हंसराज ६०-००

महात्मा हंसराज ग्रन्थावली
(४ खण्ड) २४०-००

आर्य सूक्ति-सुधा १२-००

वैदिक ज्ञान-धारा ८०-००

डा० भवानीलाल भारतीय

कल्याण मार्ग का पथिक प्रेस में

स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली
(ग्यारह खण्डों में) ६६०-००

आर्यसमाज के बीस बलिदानी १५-००

श्याम जी कृष्ण वर्मा २४-००

आर्यसमाज विषयक
साहित्य परिचय २५-००

बिखरे मोती ४०-००

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

ऋषि बोध कथा १०-००

वैदिक धर्म २५-००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार

ईश्वर का स्वरूप प्रेस में

सहेलियों की वार्ता २०-००

ले० देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय
अनु० पं० घासीराम

महर्षि दयानन्द चरित २५०-००

क्षितीश वेदालंकार

चयनिका १२५-००

पं० रामनाथ वेदालंकार

वैदिक मधुवृष्टि ६०-००

आ० प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेदोद्यान के चुने हुए फूल ५०-००

पं० चन्द्रभानु सिद्धान्ताभूषण

महाभारत सूक्ति-सुधा ४०-००

डॉ० प्रशान्त वेदालंकार

धर्म का स्वरूप ५०-००

पं० विश्वनाथ विद्यालंकार

सन्ध्या रहस्य २५-००

प्रो० रामविचार एम० ए०

आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो ? ४-००

प्रो० नित्यानन्द पटेल

पूर्व और पश्चिम ३५-००

सन्ध्या विनय ६-००

पं० नन्दलाल वानप्रस्थी

गीत सागर २५-००

पं० वा० विष्णुदयाल (मॉरीशस)
वेद भगवान् बोले १५-००

आ० उदयवीर शास्त्री
आचार्य शंकर का काल १०-००

पं० वीरसेन वेदश्रमी
याज्ञिक आचार संहिता ४५-००

नरेन्द्र विद्यावाचस्पति
प्रेरक बोध-कथाएँ १५-००

कवि कस्तूरचन्द
ओंकार गायत्रीशतकम् ३-००

पं० सत्यपाल विद्यालंकार
श्रीमद् भगवद्गीता १५-००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें
आर्य सत्संग गुटका ४-००
पंचयज्ञप्रकाशिका ८-००
वैदिक सन्ध्या २-००
सामाजिक पद्धतियाँ (मदनजीत आर्य) १२-००
सन्ध्या-हवन दर्पण (उर्दू) ८-००
Vedic Prayer 3-00

WORKS OF SVAMI SATYA PRAKASH SARASVATI

Founders of Sciences in Ancient India (Two Vols.) 800-00
Coinage in Ancient India (Two Vols.) 600-00
Geometry in Ancient India 350-00
Brahmgupta and His Works 350-00
God and His Divine Love 5-00
The Critical, Cultural Study of Satapath Brahman In Press

Speeches, Writings & Addresses
Vol. I : VINCITVERITAS 150-00
Vol.II : ARYA SAMAJ : A RENAISSANCE 150-00
Vol. III : DAYANAND : A PHILOSOPHER 150-00
Vol. IV : THREE LIFE HAZARDS 150-00

जीवनी
महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू) १०-००
महात्मा आनन्द स्वामी (हिन्दी) २५-००

बाल साहित्य

त्रिलोकचन्द विशारद
महर्षि दयानन्द ५-००
गुरु विरजानन्द ४-५०
स्वामी श्रद्धानन्द ४-५०
धर्मवीर पं० लेखराम ५-००
मुनिवर पं० गुरुदत्त ५-००
स्वामी दर्शनानन्द ५-००

प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु
महात्मा हंसराज ४-५०
स्वामी स्वतन्त्रानन्द ४-५०
महात्मा नारायण स्वामी ५-५०
देवतास्वरूप भाई परमानन्द ५-५०

स्वामी दर्शनानन्द
कथा पच्चीसी ९-००
बाल शिक्षा २-५०

सुनील शर्मा
हमारे बालनायक ८-००
देश के दुलारे ९-००
हमारे कर्णधार ८-००

सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०
नैतिक शिक्षा–प्रथम २-५०
नैतिक शिक्षा–द्वितीय ३-००
नैतिक शिक्षा–तृतीय ४-५०
नैतिक शिक्षा–चतुर्थ ५-००
नैतिक शिक्षा–पंचम ४-५०
नैतिक शिक्षा–षष्ठ ५-५०
नैतिक शिक्षा–सप्तम ५-५०
नैतिक शिक्षा–अष्टम ५-५०
नैतिक शिक्षा–नवम ८-००
नैतिक शिक्षा–दशम ८-००

नीरू शर्मा

आदर्श महिलाएँ ८-००

हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार ३-००

पं॰ रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली २५-००

ब्र॰ नन्दकिशोर

आचार्य गौरव ५-००

डॉ॰ देवव्रत आचार्य

योग शिक्षा—प्रथम १२-००

योग शिक्षा—द्वितीय १०-००

योग शिक्षा—तृतीय १०-००

योग शिक्षा—चतुर्थ १०-००

म॰ नारायण स्वामी

प्राणायाम-विधि २-००

घर का वैद्य

जब प्रकृति की अनमोल दवाइयां आपको उपलब्ध हों तो पुड़िया आदि की क्या जरूरत है।

घर का वैद्य—प्याज ७-००
घर का वैद्य—लहसुन ७-००
घर का वैद्य—गन्ना ७-००
घर का वैद्य—नीम ७-००
घर का वैद्य—सिरस ७-००
घर का वैद्य—तुलसी ७-००
घर का वैद्य—आँवला ७-००
घर का वैद्य—नींबू ७-००
घर का वैद्य—पीपल ७-००
घर का वैद्य—आक ७-००
घर का वैद्य—गाजर ७-००
घर का वैद्य—मूली ७-००
घर का वैद्य—अदरक ७-००
घर का वैद्य—हल्दी ७-००
घर का वैद्य--बरगद ७-००
घर का वैद्य—दूध-घी ७-००
घर का वैद्य—दही-मट्ठा ७-००
घर का वैद्य—हींग ७-००
घर का वैद्य—नमक ७-००
घर का वैद्य—बेल ७-००
घर का वैद्य—शहद ७-००
घर का वैद्य—फिटकरी ७-००
घर का वैद्य—साग-भाजी ७-००
घर का वैद्य—अनाज ७-००
घर का वैद्य—फल-फूल ७-००
घर का वैद्य—धूप-पानी १५-००

सभी छब्बीस पुस्तकें छः आकर्षक जिल्दों में भी उपलब्ध, कीमत ४५ रुपये प्रत्येक

घर का वैद्य (प्याज, लहसुन, गन्ना, नीम, सिरस)
घर का वैद्य (तुलसी, आँवला, नींबू, पीपल, आक)
घर का वैद्य (गाजर, मूली, अदरक, हल्दी, बरगद)
घर का वैद्य (दूध-घी, दही-मट्ठा, हींग, नमक, बेल)
घर का वैद्य (शहद, अनाज, साग-भाजी, फल-फूल, फिटकरी)
घर का वैद्य—धूप-पानी ४०-००

पुस्तक परिचय

आचार्य उदयवीर शास्त्री कृत

न्यायदर्शनम् भाष्य—जो शास्त्र हमें तर्क-वितर्क का ज्ञान देता है, हमारे भीतर की बन्द आँखों को खोलकर हमें तर्क करने का ज्ञान और साहस प्रदान करता है, उसी का नाम न्यायशास्त्र है और वही न्यायदर्शन है। रूखे व दुरूह कहे जाने वाले इस विषय को लेखक ने अत्यन्त सुबोध शैली में प्रस्तुत किया है।

वैशेषिकदर्शनम् भाष्य—सृष्टि-रचना में जो सूक्ष्म मूल तत्त्व हैं उनका विज्ञानपरक विवेचन इस दर्शन में किया गया है। इसमें पदार्थों के धर्म की व्याख्या है। यह ज्ञान भी सभी के लिए उपयोगी और अनिवार्य है।

सांख्यदर्शनम् भाष्य—लम्बे समय तक यह कुतर्क चलता रहा है कि 'सांख्यदर्शन' अनीश्वरवादी है। इस भ्रान्ति का उन्मूलन करने के लिए आचार्य उदयवीर जी को तत्सम्बन्धी विपुल साहित्य, इतिहास, वाग्जाल और विविध भाष्यों का अध्ययन-चिन्तन-मनन करके इस सत्य को उघाड़ना पड़ा है कि सांख्य-दर्शन अन्य दर्शनशास्त्रों का ही पूरक है। विषय गूढ़ है, किन्तु सरलता से समझा जा सकता है।

योगदर्शनम् भाष्य—योग का सर्वोच्च लक्ष्य है मोक्षरूप परमानन्द की प्राप्ति। मानव-जीवन की समस्त क्रियाओं का लक्ष्य भी 'ब्रह्म का साक्षात्कार' है। 'योगदर्शन' इसी लक्ष्य प्राप्ति का साधन है। योग-सूत्रों की सर्वाङ्ग एवं सम्पूर्ण व्याख्या जिस रोचक शैली में आचार्य उदयवीर जी ने की है, उसे विद्वज्जनों और जनसाधारण ने मुक्तकण्ठ से सराहा है।

वेदान्तदर्शनम् भाष्य (ब्रह्मसूत्र)—महर्षि वेदव्यास बादरायण ने ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को प्रमाणित करने के लिए ब्रह्मसूत्रों की रचना की थी। लेखक ने ब्रह्मसूत्र पर अपना निष्पक्ष व निर्भ्रान्त विद्योदयभाष्य प्रस्तुत करके हमारे वैदिक ज्ञान-विज्ञान को पुनः सार्वभौम और सार्वशिरोमणि कर दिखाया।

मीमांसादर्शनम् भाष्य—मध्यकाल में कुछ ऐसी विडम्बना हुई कि विरोधी मतों की देखादेखी वैदिक वाक्यों के अर्थों में भी अनर्थ होने लगा। यज्ञों में भी पशु और नरबलि मान्य हो गई। आचार्य उदयवीर जी अन्य दर्शनों के भाष्य के बाद, जीवन के अन्तिम वर्षों में मीमांसा-दर्शन के तीन ही अध्यायों का भाष्य करके दिवंगत हो गए। इस भाष्य की विशेषता यह है कि विद्वानों की दृष्टि में यह शास्त्र-सम्मत भी है और विज्ञानपरक भी। यज्ञों में पशु-हिंसा की शंकाओं का सहज समाधान करके विद्वान् भाष्यकार ने पाठकों और शोधकर्ताओं का मार्ग प्रशस्त कर दिया है।

नए प्रकाशन

योग-शिक्षा—एक समीक्षा

—सुनील शर्मा

योग का अर्थ 'योगासन' ही नहीं, जैसा कि अधकचरे योगाचार्यों ने प्रचारित कर रखा है। 'आसन' तो योग के आठ अंगों में से एक हैं। आसनों के द्वारा प्रायः शरीर-बल प्राप्त होता है। विवेकहीन व्यक्ति का शरीर-बल भी पशु-बल बन जाता है। योग का अर्थ है 'जुड़ना' या 'जोड़ना' शरीर को आरोग्य रखते हुए मन और आत्मा को सर्वोच्च शक्तियों से जोड़ लेना ही वास्तविक योग है। महान् भारत की सभी सांस्कृतिक परम्पराओं का ज्ञान योग में निहित है। योग वास्तव में लोक और परलोक की सभी ऋद्धि-सिद्धियों की प्राप्ति का नाम है। योगिराज श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है 'कर्त्तव्य-कर्मों को कुशलतापूर्वक करने का नाम योग है।' 'योग: कर्मसु कौशलम्'; 'समदर्शी होना, सबको प्रभु की सन्तान समझना, जीवन में समता-भाव लाना ही योग है'—समत्वं योग उच्यते। योग हमें सारे संसार से जोड़ता है; यह सभी को 'विश्व-बन्धु' बनने की प्रेरणा देता है। जिन बालक-बालिकाओं को छोटी आयु से ही योग-शिक्षा दी जाती है, उनका सर्वाङ्गीण विकास होता है; वे संसार के लिए आदर्श बन जाते हैं। इसी दिशा में एक सत्प्रयास है—

चार भागों में

किशोर-किशोरियों के लिए अनूठा प्रकाशन

योग-शिक्षा

डॉक्टर देवव्रत आचार्य ने जिन सरल शब्दों में योग के आठों अङ्गों का प्रतिपादन किया है, सभी विद्यालयों के आचार्य उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करेंगे। योग के विविध विषयों को बांटने में छात्र-छात्राओं की सुकोमलता, योग्यता और परिपक्वता को भी ध्यान में रखा गया है। योगासन भी उनकी सामर्थ्य के अनुसार छांटे गए हैं और सभी सचित्र हैं। सभी योगासनों के लाभों का भी संकेत दे दिया है। कक्षा सात से कक्षा दस तक 'योग शिक्षा' द्वारा, विद्यार्थियों को उन सभी बुराइयों से मुक्ति मिलेगी जो आज के छात्र-वर्ग को पीड़ित किए हुए हैं। कलेवर भी मनोरम और नयनाभिराम, विषयवस्तु भी सर्वग्राही। इसके लिए प्रकाशक विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द का प्रयास स्तुत्य ही माना जाएगा।

सम्पर्क करें—

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६

प्रकाशक-मुद्रक अजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया।

आओ संसार-नदी को पार करें

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥

(ऋ० १०।५३।८)

शब्दार्थ—(सखायः) हे मित्रो ! (अश्मन्वती) पत्थरों वाली भयंकर नदी (रीयते) बड़े वेगपूर्वक बह रही है। अतः (उत्तिष्ठत) उठो (सं रभध्वम्) संगठित हो जाओ और (प्र तरत) इस भयंकर नदी को पार कर जाओ (ये) जो (अशेवाः असन्) अशिव, अकल्याणकारक दोष एवं दुर्गुण हैं उन्हें (अत्र जहाम) यहीं छोड़ दो और (वयम् शिवान् वाजान्) हम कल्याणकारी शक्तियों और क्रियाओं को (अभि) सम्मुख रखकर (उत् तरेम) इस नदी को पार कर जायें।

भावार्थ—वेद में संसार की उपमा कहीं सागर से दी गई है तो कहीं वृक्ष से और कहीं किसी अन्य रूप से। प्रस्तुत मन्त्र में संसार की तुलना एक पथरीली नदी से दी गई है।

१. यह संसार एक पथरीली नदी है। इसमें पग-पग पर आने वाले विघ्न और बाधाएं ही बड़े-बड़े पत्थर हैं, दुःखरूपी चट्टानें हैं।

२. इसका प्रवाह बड़ा भयंकर है। अच्छे-अच्छे व्यक्ति इसमें बह जाते हैं।

३. इस नदी को पार करने के लिए उठो, खड़े हो जाओ, आलस्य और प्रमाद को मारकर परे भगा दो। संगठित हो जाओ, तभी इस नदी को पार किया जा सकेगा।

४. बोझ नदी को पार करने में बड़ा बाधक होता है अतः जो पाप की गठड़ी सिर पर उठाई हुई है, जो दुरित, दुर्गुण, काम, क्रोध आदि अशिव दुर्व्यसन हैं उन सब को यहीं छोड़ दो।

५. जो शिव हैं, उत्तम गुण हैं, उन्हें अपने जीवन का अङ्ग बनाकर इस नदी को पार कर जाओ। —'वेद-सौरभ' से

बोध-कथा सेहत का राज-पैदल चलो !

अरब में एक फकीर रहता था। उसके इलाज से कठिन से कठिन बीमारियां भी दूर हो जाती थीं। उन्हीं दिनों बगदाद का एक सरदार सिरदर्द की बीमारी से बहुत परेशान था, सब तरह के इलाज कराने पर भी जब उसे कोई लाभ नहीं हुआ, तब कई लोगों ने सरदार को सलाह दी कि वह उस फकीर अल्लामा इंशा से इलाज कराए। सरदार ने अपने एक गुमाश्ते को अल्लामा के पास भेजा। जब उसका गुमाश्ता फकीर के ठिकाने पर पहुंचा तब उसने वहां एक हृष्ट पुष्ट व्यक्ति को ऊँट चराते हुए देखा। गुमाश्ते ने ऊँट चराने वाले से फकीर अल्लामा इंशा का पता पूछा। ऊँट चराने वाले ने कहा—"कहिए क्या बात है ? मैं ही अल्लामा इंशा हूं।"

यह देखकर गुमाश्ते को बहुत अचम्भा हुआ। उसने फकीर के नीरोग शरीर के बारे में जिज्ञासा प्रकट की तो अल्लामा बोले—"मैं प्रतिदिन पैदल चलता हूं और इस पैदल चलने को ही शरीर और मन की श्रेष्ठ साधना के रूप में अपनाए हुए हूँ।" इस पर गुमाश्ते ने फकीर से सरदार का इलाज करने के लिए सरदार के घर पर जाने की प्रार्थना की तो फकीर ने उत्तर दिया—"माफ कीजिए, मैं इलाज के लिए किसी के घर नहीं जाता।"

गुमाश्ता निराश लौट गया। उसने सरदार को सारा ब्यौरा बताया, तब सरदार ने स्वयं ही फकीर के पास जाने का निश्चय किया और कई दिनों के सफर के बाद वह अल्लामा के पास पहुंचा। अल्लामा ने उसे भली प्रकार देखा। उसके बाद उसे एक कीमती दवाई की पुड़िया देते हुए कहा—"इस बढ़िया दवा की सौ खूराक लेनी हैं। अल्लाह ने चाहा तो तुम्हारा सिरदर्द छूमन्तर हो जाएगा।" फकीर ने सरदार को सलाह दी जब भी पसीना आए तब थोड़ी-सी दवा सिर पर मल लेना।"

अल्लामा की नसीहत के अनुसार सरदार को पैदल ही वापस जाना पड़ा। खूब पसीना आने के लिए सरदार ने तेज चलना शुरू कर दिया। बीस दिन के लम्बे सफर में सरदार को कई बार पसीना आया और उसने हर बार पुड़िया खोलकर दवाई सिर पर लगा ली। घर लौटने तक सरदार का सिरदर्द पूरी तरह दूर हो गया था। अब बची हुई दवा का क्या किया जाए ? प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिए सरदार ने अपने गुमाश्ते को फकीर के पास भेजा।

जब फकीर अल्लामा इंशा ने गुमाश्ते की बात सुनी तो हंसते हुए कहा—"वह दवा तो मामूली मिट्टी है, उसे फेंक सकते हैं। तुम्हारे सरदार का असली इलाज तो लम्बा सफर तय करना और लौटना था। अपने सरदार और साथियों को पैदल चलने के लाभ बताना और कहना कि आदमी पैदल चलने की आदत छोड़ देने से ही रोगी हो जाता है।" प्रस्तुति—**नरेन्द्र विद्यावाचस्पति**

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ४४, अंक ३ वार्षिक मूल्य : बीस रुपये अक्टूबर १९९५

सम्पा० अजयकुमार आ० सम्पादक : स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ऋषि-निर्वाण

नवसस्येष्टि यज्ञों व सुगन्धित दीपमालाओं द्वारा सर्वत्र आमोद-प्रमोद की वर्षा करते हुए दीपावली पर्व का उत्सव कार्तिक अमावस्या के दिन प्राचीन काल से नियत है । इस महत्त्वपूर्ण पर्व को महर्षि दयानन्द के निर्वाण की असाधारण घटना ने और भी गौरवान्वित कर दिया है। कार्तिक अमावस्या संवत् १९४० को वह सायं छः बजे का समय भी कैसा निर्मम था जिसने विश्व की महान् विभूति आर्य (श्रेष्ठ) जनों के प्राणभूत महर्षि को सर्वदा के लिए छीन लिया । तथापि महापुरुषों का देहावसान साधारण व्यक्तियों की भांति शोकोत्पादक न होकर प्रेरणादायक होता है । वे परोपकार के लिए अपने शरीर के उत्सर्ग द्वारा उत्तम आदर्शों की स्थापना करके सुखों का संयोजन करते हैं । कृतज्ञ जन उनके चरित्र के गुणानुवाद से आनन्दानुभव करते हुए प्रेरणा प्राप्त करते हैं । महर्षि दयानन्द के बलिदान की गाथा आस्तिकता व अहिंसा का पावन उद्घोष है । तनिक इस अभूतपूर्व निर्वाण पर दृष्टिपात कीजिए—स्वामी जी महाराज जोधपुर नरेश महाराजा यशवन्तसिंह के निमन्त्रण पर जो जोधपुर पदार्पण करते हैं । वहां नीर-क्षीर का विवेक कराने वाले उनके व्याख्यानों में सदा की भांति न्याय होता था, नीति होती थी, युक्तियां थीं, प्रमाणों से सुसज्जित सर्वोपरि सत्य का प्रकाश होता था । उनके उपदेश-वारिवर्षण में स्नान करके सारे भ्रम दूर होकर श्रद्धालुओं के अन्तःकरण निर्मल हो जाते थे ।

वेदामृत का आनन्द लेने के लिए जोधपुराधीश महाराजा यशवन्तसिंह जी भी स्वामी जी के दर्शनार्थ तीन बार उनके आसन पर आये तथा तीन बार ही श्रीचरणों को अपने आवास पर निमन्त्रित किया। एक दिवस जब जोधपुराधीश के निवास पर दर्शन देने गये तब नन्हीं

जान नाम की वाराङ्गना को वहां से पालकी द्वारा विदा होते देख लिया, वाराङ्गना तो वहां से चली गयी। परन्तु इस दृश्य को देखकर राष्ट्रहितैषी देव दयानन्द का हृदय द्रवित हो उठा। वे महाराजा को इस पापपङ्क से मुक्त करने के लिए देशहितैषिता की भावना से कहने लगे—राजन्! राजा लोग तो सिंह समान समझे जाते हैं। उनका कुक्कुरी सदृश वेश्या में आसक्त हो जाना सर्वथा अनुचित है। इस दुर्व्यसन के कारण धर्म-कर्म-भ्रष्ट होकर पुरुष का अध:पतन स्वत: हो जाता है। आप पर देश का भार है। इस दुर्व्यसन को तिलाञ्जलि देनी चाहिए।

भगवान् दयानन्द के उपदेशामृत से जहां सत्य-प्रिय शुद्ध भाव भावित जन अमर पथ के पथिक बनकर शान्ति का अनुभव कर रहे थे, वहीं संस्कार-विहीन दुराग्रही व्यक्ति द्वेषाग्नि में जल रहे थे। उस देवता के मानस-महत्त्व को विषयानन्द के रसिक मर्त्यलोक के साधारण जीव क्या समझते ?

वेश्या-व्यसन के विरुद्ध महाराजा को किये उपदेश से खिन्नमना नन्हीं जान विकट वैर की विषमज्वाला से अहर्निश सन्तप्त रहने लगी। वह स्वामी जी के विरुद्ध षड्यन्त्र रचना में लग गयी, उसके साथ वे सब भी क्रियात्मक सहानुभूति में उद्यत हो गये जो अपने-अपने स्वार्थवश स्वामी जी के सत्य वचनों का स्पर्श न कर पाने के कारण मतभेद रखने लगे थे। परन्तु जब तक अपने ही भेदी न हों तब तक कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। अपने ही दीपक से भवन भस्म होते हैं। ऐसे ही नराधम ऋषिवर के पास भी रहते थे। आश्विन कृष्णा चतुर्दशी संवत् १९४० को ऋषिवर दुग्धपान करके सो गये। नहीं-नहीं आज दुग्धपान कहां किया था, आज तो वस्तुत: षड्यन्त्रकारियों ने पतित जगन्नाथ के द्वारा अनीति, अन्याय और नीचता से दुग्ध के साथ हलाहल विषम विष का प्रयोग कराकर सब के लिए दु:खद घृणित अनर्थ करा दिया। आह !!! आश्चर्य है विश्वासपात्र जगन्नाथ ही ब्रह्मघाती बन गया।

ऋषिवर अपराधी जगन्नाथ को जान गये। वह अपने अधमतम अपराध को स्वीकार करते हुए प्रायश्चित्त की ज्वाला में जलने लगा। अपराधी को प्रायश्चित्त करते देखकर कर्मगति और फलभोग के विश्वासी दयानन्द अपने प्राणघातक के प्राणों की रक्षा का उपाय चिन्तन करने लगे। वे बोले—जगन्नाथ ! मेरे इस समय मरने से कार्य अपूर्ण रह गया है, तुम नहीं जानते इससे लोकहित को कितनी बाधा पहुंची है। इतना कहकर क्षमाशील दयालु दयानन्द अपने घातक को पाथेय सहित प्राणरक्षा के उपाय में प्रवृत्त करते हुए बोले—जगन्नाथ ! लो ये कुछ रुपये हैं इन्हें लेकर इस राज्य की सीमा से पृथक् नैपाल जाकर अपने प्राणों की रक्षा करो। किसी को भी इस जघन्य कर्म का पता न होने देना। इस

प्रकार इस अहिंसाव्रती ने मारने वाले को भी जीवन-दान देकर संसार के इतिहास में अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया ।

भयङ्कर विष के प्रभाव से स्वामी जी महाराज की स्थिति उत्तरोत्तर बिगड़ती चली गयी । परन्तु दुःख व आश्चर्य तो डा० अलीमर्दान खां पर होता है । जिनकी औषधि निरन्तर विष का कार्य कर रही थी । रोगाग्नि पर औषधि तेल बनकर क्यों प्रकट होती थी । इस रहस्य को परमपिता परमात्मा ही भलीभांति जानते हैं । स्वामी जी जोधपुर से आबू पहुंचे । वहां भी चिकित्सा अनुकूल न देख भक्तों के आग्रह पर अजमेर प्रस्थान करते हैं । परन्तु विष का प्रभाव सारे शरीर में व्याप्त हो गया फलत: रोग ने उग्ररूप धारण कर लिया । अन्तर्दाह व शरीर पर छाले बढ़ते गये । इस विकट विपत्ति में भी स्वामी जी धैर्यपूर्वक भक्तों की खिन्नता दूर करते रहते थे । दीपावली के दो दिन पूर्व लाहौर से पं० गुरुदत्त विद्यार्थी व जीवनदास जी भी स्वामी जी के दर्शनार्थ अजमेर पहुंच गये ।

आश्चर्यजनक अन्तिम दृश्य का समय दीपावली का दिवस भी आ पहुंचा । स्वामी जी के तन को यद्यपि विषजन्य भयङ्कर व्याधि ने सत्त्वहीन कर दिया था तथापि वे प्रसन्नचित्त थे और अपने पवित्र प्रेम के सुपात्र भक्तों को कर्तव्य कर्म का पालन करने व आनन्दपूर्वक रहने के लिए उपदेश करते रहे । ऐसी दशा में ही साढ़े पांच बज गये । स्वामी जी दैवेच्छा को भलीभांति समझ चुके थे । इसलिए परमात्मा की व्यवस्था को सानन्द स्वीकार करके उसमें अपनी सहमति का भी साझा करते हुए महाप्रयाण के लिए सन्नद्ध होकर भवन के सभी द्वार व वातायन खुलवा दिये और समागत भक्तों को अपनी पीठ के पीछे खड़ा कर दिया । फिर पूछा आज कौन सा पक्ष, तिथि व वार है, भक्त मोहनलाल ने कहा कि भगवान् कार्तिक मास की अमावस्या व मङ्गलवार है । यह सुनकर अपनी दिव्य दृष्टि से भवन के चहुं ओर दृष्टिपात किया और गम्भीर ध्वनि से वेदपाठ प्रारम्भ हो गया, मानो दयानन्द के आत्मा व परमात्मा की अन्तरङ्ग परिषत् प्रारम्भ हो गयी । ऋषि-भक्त पं० गुरुदत्त उस कमरे के एक कोने में भित्ति के साथ लगे हुए निर्निमेष नेत्रों से दो सखाओं (ऋषि दयानन्द व परमात्मा) के अनिर्वचनीय मिलन का अवलोकन कर रहे थे । प्रभुमग्न दयानन्द ने वेदगान के अनन्तर परम प्रीति से पुलकित होकर संस्कृत शब्दों में परमात्म देव का गुणगान किया। तत्पश्चात् हिन्दी में गुणगान करते आनन्दमग्न हो गायत्री मन्त्र का पाठ करते-करते शान्त समाधिस्थ हो गये । कुछ काल पश्चात् समाधि की उच्चतम भूमि से उतर कर परमप्रिय पिता से आह्लादक वार्तालाप में निमग्न होकर अतीव मैत्री भाव से कहते हैं-हे दयामय सर्वशक्तिमान् ईश्वर!

तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो । अहा !!!. तूने अच्छी लीला की । इतना कहकर करवट ली और एक बार श्वास को रोककर पुनः सदा के लिए बाहर निकाल मोक्षानन्द को प्राप्त हो गये।

आह !!! इधर सरस्वती का अक्षीण कोष विलुप्त हो गया, सुधारक समाज का अवलम्ब निरवलम्ब हो गया, श्रुतिपथ का उद्धारक अस्त हो गया, वेदसुधा द्वारा समस्त रूढ़ियों का निवारक सद्वैद्य गुप्त हो गया और उधर ऋषिवर अपने अवर्णनीय ईशमिलन से नास्तिक शिरोमणि पं० गुरुदत्त को जीवन दे गये । गुरुदत्त ने एक ईश्वर भक्त योगी को मृत्यु पर विजय करते देखा । वे चिन्तन करने लगे कि इतनी असह्य वेदना व अन्तर्दाह के होते हुए आनन्द में अतिशय निमग्न होकर दयानन्द का आत्मा जिससे प्रेमालाप करते हुए उसकी इच्छा व लीला को प्रत्यक्ष कर रहा था । और जो दिव्यशक्ति दयानन्द का आह्वान कर रही थी उस (ईश्वर) का अस्तित्व अवश्य है ।

इस दयानन्द निर्वाण रूप सुन्दरतम दैवी दृश्य से नास्तिकता के समस्त तर्क विलुप्त हो गये, गुरुदत्त आस्तिक शिरोमणि बनकर सच्चा जीवन पा गये । और सारे जग को अहिंसा व आस्तिकता आदि पावन गुणों का प्रेरक अध्याय मिल गया ।

–आचार्य विष्णुमित्र आर्य

आदर्शनगर, नजीबाबाद

जनपद-बिजनौर (उ०प्र०)

दीपोत्सव और महर्षि दयानन्द

चले परलोक यात्रा पर, दया रे हिन्द के माली ।
लिये लाखों दीये आगे, खड़ी स्वागत को दीवाली ॥

दीपोत्सव का शुभ पर्व जहां धरती को प्रकाश की किरणों से जगमगा देता है वहीं महर्षि दयानन्द का जीवन व निर्वाण मानवमात्र में ज्ञान का आलोक फैलाने का संदेश देता है । 'दीपक तले अन्धेरा' उक्ति के अनुसार दीपक के नीचे अन्धेरा होते हुए भी दूर-दूर के स्थल को आलोकित करता है, पर महर्षि दयानन्द ऐसे प्रकाशपुञ्ज हैं, जो स्वयं ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित हो, अपनी ज्ञान रूपी किरणों से समस्त मानवों के अन्तःस्तल को ज्योतिष्मान् करते हैं । दीपक की रोशनी में वो स्थिरता नहीं, जो ज्ञान के प्रकाश में है । अतः हमें सच्चे ज्ञान के प्राप्त्यर्थ सदैव कृतसङ्कल्प होना चाहिए ।

१. तमसो मा ज्योतिर्गमय का प्रतीक-दीपोत्सव

'दीपी दीप्तौ' धातु से निष्पन्न 'दीप' शब्द अलोकित करने वाला, अग्निवर्धक है । उत्सव अर्थात् मङ्गलकार्य, आनन्द व हर्ष को जिस शुभावसर पर उमङ्ग, उल्लास से प्रकट किया जाये । 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का प्रतीक छोटे से दीये से हम ने बड़ी-बड़ी आशाएँ कर रखी हैं ।

जगमग-जगमग कर दे जग को, पी जा जितना तम है काला ।
ओ माटी के नन्हें दीपक, दुनिया को दे नया उजाला ॥

लेकिन आज मोमबत्ती, बल्ब और आतिशबाजी की अप्राकृतिक रोशनी में जीते हुए हम पर्यावरण प्रदूषण को बढ़ाते जा रहे हैं, तथा बाह्य चकाचौंध को छोड़कर अन्तर्दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि हमारे मन उत्तरोत्तर अमावस्या की गहन कालिमा में लिप्त हो रहे हैं । जीवन ऐसा आदर्शमय होना चाहिए कि स्वयं के साथ-साथ अन्यों के मन मस्तिष्क को भी प्रकाशित कर सके ।

रोशनी दे दूसरों को दीपवत् जलते रहें ।
दो हमें आशीष कि हम उम्र भर चलते रहें ॥

२. क्या धनैश्वर्य की प्रदात्री है—लक्ष्मी-पूजा ?

पुराणों में मिट्टी के पुतले लक्ष्मी को धन की अधिष्ठात्री देवी से सम्बोधित कर लिखते हैं कि उन के हाथ से स्वर्णमुद्राएँ ऐसे झरती हैं, जैसे झरने से जल । सामान्य जनता में यह भ्रम फैला दिया कि दीपोत्सव के दिन उस घर में लक्ष्मी अवश्य आयेगी, जिस में प्रज्वलित दीपकों की पक्तियाँ सर्वाधिक होंगी । इसी कारण गाँवों में आज भी सूप पीटते हुए कहते हैं—'दारिद्र्य जावे, लक्ष्मी आवे ।' किन्तु ये सब मूर्खता के लक्षण हैं । गृह में लक्ष्मी का निवास तब निश्चित होगा, जब घर में प्रकाश के साथ-साथ बुद्धि भी सत्यज्ञान की दीप्ति से देदीप्यमान होगी।

ऋषिवर सत्यार्थप्रकाश में 'लक्ष्मी' शब्द की व्युत्पत्ति करते हैं **"यो लक्षयति पश्यत्यङ्कते चिह्नयति चराचरं जगदथवा वेदैराप्तैर्योगिभिश्च यो लक्ष्यते स लक्ष्मीः ।"** जो चराचर जगत् को देखता, सूर्यचन्द्रादि बनाता और वेदादि शास्त्र, धार्मिक विद्वान् योगियों का लक्ष्य है, वही लक्ष्मी है । उपर्युक्त सभी गुण परमेश्वर में होने से उसी की मन से पूजा करनी चाहिए ।

३. अधोगति की सूचिका-अक्षक्रीड़ा

दीपमालिका जैसे शुभ पर्व के दिन जूआ खेलने की प्रथा द्वारा अपने धन, ऐश्वर्य, सम्पत्ति का दुरुपयोग कर हम भावी जीवन को

अन्धकारमय बनाते जा रहे हैं । अक्ष क्रीड़ा मन की सारी अच्छाइयों को दबा कर कुवासनाओं को जन्म देती है । मन, मस्तिष्क का विनाश कर हाथों को कर्महीन बनाती है । खिलाड़ी केवल भाग्य का आश्रय लेते हुए योगीराज श्रीकृष्ण के सन्देश को विस्मृत कर देता है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

अर्थात् ऐ मानव ! तुम्हारा केवल कर्म पर अधिकार है, फल की आकांक्षा मत कर ।

अतः आज आवश्यकता है वेद के सन्देश को पुनः स्मरण करने की–**अक्षैर्मा दीव्यः** । द्यूतक्रीडा मत खेलो ।

४. ज्ञान के प्रतीक-महर्षि दयानन्द

बाल्यावस्था से ही बालक मूलशंकर जिज्ञासु प्रवृत्ति के थे । जिज्ञासा के कारण उन के जीवन में अनेक मोड़ आये, यथा उन के जिज्ञासु स्वभाव ने बहन व चाचा की अकस्मात् मत्यु पर जन्म-मरण के चक्र की ओर ध्यानाकर्षित किया । छोटे से चूहे की शङ्का ने सर्वान्तर्यामी की सत्ता पर प्रश्नचिह्न लगा दिया । सत्यज्ञान की ललक शनैः-शनैः घर के प्रति विरक्ति उत्पन्न की, जिस का परिणाम क्षणिक सुख वैभव को त्याग बालक मूलशंकर से शुद्ध चैतन्य फिर दयानन्द सरस्वती बने ।

परमहंस परिव्राजकाचार्य दण्डी गुरु विरजानन्द जी के पास पहुंचते ही अन्दर से प्रश्न हुआ कौन ? उत्तर आया–यही तो मैं जानने आया हूं कि मैं कौन हूं ? एक छात्र द्वारा ऐसा विलक्षण उत्तर सुन गुरुवर्य सोचने लगे–अपने द्वार पर अद्भुत तार्किक छात्र को पाकर मैं धन्य हो गया, मेरी आशाएँ अब अवश्य पूर्ण होंगी । यह सच है कि अपने गुरु की आकांक्षाओं को शत-प्रतिशत पूर्ण करने वाला यदि कोई आदित्य ब्रह्मचारी इस धराधाम पर हुआ है तो वे एक मात्र दयानन्द हैं । गुरु दक्षिणा के समय गुरुवर्य कहते हैं–

''मैं तुम से कुछ लौंग नहीं, अपितु जीवन की दक्षिणा चाहता हूं । तुम प्रतिज्ञा करो कि आजीवन आर्ष ग्रन्थों का प्रचार और अनार्ष ग्रन्थों का खण्डन करोगे । तथा भारत में वैदिक धर्म की स्थापना हेतु अपने प्राण देने में भी संकोच न करोगे ।''

इतिहास साक्षी है कि सकल शास्त्र निष्णात महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन के स्वल्पकाल में ही शास्त्रानुशीलन द्वारा सत्यज्ञान को जगत् के सामने रखा । ऋषिवर जानते थे कि–'**ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः**' बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं, तथा '**बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति**' ज्ञान से ही बुद्धि की पवित्रता है । इसी कारण दयानन्द ने आर्ष-अनार्ष ग्रन्थों का समुचित

बोध कराने हेतु हजारों ग्रन्थ रूपी समुद्रों का मन्थन कर तीन हजार ग्रन्थ रत्नों को प्रमाण कोटि में रखा। इस अगाध ज्ञानराशि के कारण महर्षि के अद्‌भुत पाण्डित्य के समक्ष विरोधियों का अहं क्षणभर के वार्तालाप में चूर हो जाता था।

अनेक वेदभाष्यों के होते हुए भी वेदार्थ की दूषित प्रणाली को समाप्त कर सत्य वेदार्थ को जनता तक पहुंचाने के उद्देश्य से महर्षि अपने वेदभाष्य द्वारा चँहु ओर ज्ञान का आलोक देखना चाहते थे–

''परमात्मा की कृपा से मेरा यह शरीर बना रहा और कुशलता से वह दिन देखने को मिला कि वेद भाष्य सम्पूर्ण हो जायें तो निःस्सन्देह इस आर्यावर्त्त देश में ज्ञान का सा प्रकाश हो जायेगा कि जिस के मिटने और ढाँपने का किसी का सामर्थ्य न होगा, क्योंकि सत्य का मूल ऐसा नहीं कि जिस को कोई सुगमता से उखाड़ सके।''

हाय ! यह हमारा दुर्भाग्य है कि वेदोद्धारक महर्षि ने दो वेदों का भाष्य भी पूर्ण नहीं किया कि कुटिलताओं का चक्र घूमा और महर्षि को आज के ही दिन आर्य जाति से छीन लिया गया।

दीपावली का पर्व था, वेदों का सूरज छिप गया।
और सूर्यास्त के साथ-साथ स्वयं ही अस्त हो गया॥

आज दयानन्द निर्वाण-दिवस पर आवश्यकता है महर्षि द्वारा प्रदीप्त वेद भानु के सत्य आलोक से विश्व को पुनः आलोकित करने की, जिस का एकमात्र साधन है ऋषि प्रणीत ग्रन्थों के स्वाध्याय द्वारा ज्ञानार्जन बढ़ाते रहें, क्योंकि सत्य सनातन वैदिक धर्म को आप्रलयान्त सुरक्षित रखना प्रत्येक आर्य का प्रथम कर्त्तव्य है।

–कु॰ मुक्तावाणी शास्त्री, एम. ए.
सागर सदन, प्लाट न॰ ४२ रवीन्द्रनगर,
हब्सीगुडा, हैदराबाद, पिन-५००००७
(आ॰ प्र॰) फोन-८५०२०५

ओ३म्

वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है

आज विश्व में अनेकों मत, पन्थ, सम्प्रदाय तथा मजहब हैं। सभी अपनी-अपनी धर्मपुस्तक पर श्रद्धा एवं विश्वास रखते हैं। इस्लामी मजहब के लोग कुर्आन शरीफ को अपना धर्म ग्रन्थ मानते हैं। ईसाई मत के लोग बाइबिल को अपनी धर्म पुस्तक मानते हैं। इसी प्रकार पारसी मत के लोग जन्दावस्था को, यहूदी मत के लोग तौरेत को, जैन-बौद्ध मत के लोग अपने-अपने शास्त्रों को तथा सिक्ख पन्थ के लोग गुरुग्रन्थसाहिब को अपना धर्म ग्रन्थ मानते हैं।

आर्यावर्त्त के लोग अपनी धर्म पुस्तक वेदों को मानते हैं। वैदिक धर्म के मानने वाले आर्यों का विश्वास है कि सृष्टि उत्पत्ति के साथ ही वेदों का ज्ञान परमपिता परमेश्वर ने सर्वप्रथम अग्नि, वायु, आदित्य, तथा अङ्गिरा ऋषि के हृदय में क्रमशः ऋग्, यजुः साम और अथर्ववेद का प्रकाश किया।

यदि उपर्युक्त समस्त ग्रन्थों में परस्पर विरोधी शिक्षाएँ न होतीं तो माना भी जा सकता था कि एक ही परमात्मा की कृतियाँ हैं। परन्तु अध्ययन करने पर पता चलता है कि सभी में परस्पर विरोधी शिक्षाएँ विद्यमान हैं। सत्यासत्य का निर्णय कैसे करें। व्यक्ति असमंजस में पड़ जाता है। १९ वीं शताब्दी में भारत की पवित्र भूमि गुजरात प्रान्त के अन्तर्गत एक महान् आत्मा ने टंकारा ग्राम में ब्राह्मण कर्षन जी लाल जी तिवारी के घर पर जन्म लिया। जिसे आगे चलकर योगी, तपस्वी, वेदज्ञ, आदित्य ब्रह्मचारी, आर्यसमाज के प्रवर्तक आचार्य प्रवर स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के नाम से जाना गया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यासत्य के निर्णय करने के लिए अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लास में पांच परीक्षाओं का वर्णन किया है जिससे यह जाना जा सकता है कि कौन सा पुस्तक (ज्ञान) ईश्वरीय है और कौन सा नहीं।

१. जो-जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल हो वह-वह सत्य और उससे विरुद्ध असत्य है।

२. जो-जो सृष्टिक्रम से अनुकूल वह-वह सत्य और जो-जो सृष्टिक्रम से विरुद्ध है वह सब असत्य है । जैसे-कोई कहे बिना माता-पिता के योग से लड़का उत्पन्न हुआ । ऐसा कथन सृष्टि से विरुद्ध होने से सर्वथा असत्य है ।

३. आप्त अर्थात् जो धार्मिक विद्वान् सत्यवादी निष्कपटियों का संग, उपदेश वेद के अनुकूल है वह ग्राह्य और जो-जो विरुद्ध है वह अग्राह्य है ।

४. अपने आत्मा की पवित्रता विद्या के अनुकूल अर्थात् जैसा अपने को सुख प्रिय और दु:ख अप्रिय है वैसे ही सर्वत्र समझ लेना कि मैं भी किसी को दु:ख वा सुख दूंगा तो वह भी अप्रसन्न और प्रसन्न होगा ।

५. आठों प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति सम्भव और अभाव दर्शन में सत्य के निर्णायक बताये गये हैं, इनकी अनुकूलता ।

उपर्युक्त कसौटियों पर वेद ही केवल ऐसी धार्मिक पुस्तक हैं जिसके सिद्धान्त अनुकूल हैं अन्य ग्रन्थों के नहीं । अनुमान प्रमाण के आधार पर हम यह सिद्ध कर रहे हैं कि वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है ।

महर्षि गौतम जी महाराज ने न्यायदर्शन के अन्तर्गत अनुमान प्रमाण की सिद्धि के लिए पंच अवयव रखे हैं ।

प्रतिज्ञा-वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है ।

हेतु-प्रत्यक्षादि प्रमाणों से अविरुद्ध यथार्थ ज्ञान होने से ।

उदाहरण-आयुर्वेद के समान ।

उपनय-आयुर्वेद के समान वेद ज्ञान भी यथार्थ है

निगमन-इसलिए प्रत्यक्षादि प्रमाणों से अविरुद्ध होने से वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है ।

वेद शब्द संस्कृत की विद् धातु से बनता है जिसका अर्थ ज्ञान होता है ।

१. विद् ज्ञाने=अर्थात् ज्ञान प्राप्त करना ।

२. विद्लृ लाभे=अर्थात् ज्ञानपूर्वक कर्म द्वारा ऐतिहासिक तथा पारमार्थिक सुख शान्ति को प्राप्त करना ।

३. विद् सत्तायाम्=अर्थात् आत्मा तथा परमेश्वर की सत्ता के स्वरूप को ध्यानावस्थित होकर उपासना योग से पहचानना व अनुभव करना ।

४. विद् विचारणे=अर्थात् विशेष ज्ञान (विचार) द्वारा विवेक द्वारा प्रत्येक पदार्थ का साक्षात्कार करना ।

विषय भेद की दृष्टि से वेद=(ज्ञान) को चार विभागों में बाँट

सकते हैं । ऋग्वेद--ज्ञानकाण्ड, यजुर्वेद--कर्मकाण्ड, सामवेद--उपासना काण्ड तथा अथर्ववेद--विज्ञानकाण्ड । ऋग्वेद में १०५२२ मन्त्र, यजुर्वेद में १९७५ मन्त्र, सामवेद में १८७५ मन्त्र तथा अथर्ववेद में ५९७७ मन्त्र हैं । चारों वेदों में लगभग २०३४९ ऋचाएँ हैं । मानव के लिए समस्त ज्ञान-विज्ञान इन चारों वेदों की ऋचाओं में सूक्ष्म रूप से निहित है । चारों वेदों के मन्त्रों की रचना तीन प्रकार की है । जो मन्त्र छन्दोबद्ध हैं और छन्दों में होने वाली पादव्यवस्था से युक्त हैं उन्हें ऋच् या ऋचा कहा जाता है–

यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था सा ऋक् । जैमिनि सूत्र २।१।३५ ऋग्वेद में ऐसे मन्त्रों का बाहुल्य है इसलिए इसे ऋग्वेद कहा जाता है । जब ऋचाओं को ही गीतिरूप में गाया जाता है तो उन्हें साम कहा जाता है–**गीतिषु सामाख्या ।** जैमिनि सूत्र–२।१।३६ सामवेद में जितने मन्त्र हैं वे भक्तिरस में भरकर गीति रूप में गाये जाते हैं, इसलिए उनका नाम सामवेद है । जो मन्त्र छन्दोबद्ध नहीं हैं और गीति रूप में गाये नहीं जा सकते अर्थात् जो मन्त्र पद्य नहीं है, गद्य हैं उन्हें यजुः कहते हैं । **शेषे यजुः शब्दः ।** जैमिनि सूत्र २।१।३७ यजुर्वेद में ऐसे यजुः मन्त्र अधिक हैं इसलिए उसका नाम यजुर्वेद है । अथर्ववेद में तीनों प्रकार के मन्त्र हैं । क्योंकि चारों वेदों के मन्त्रों की रचना तीन प्रकार की है । इसलिए चारों वेदों को त्रयी या तीन वेद कह दिया जाता है। यों वेद चार ही हैं । केवल तीन प्रकार की रचना के कारण उन्हें तीन वेद भी कह दिया जाता है । पं० धर्मदेव विद्यामार्तड ने भी ''वेदों के यथार्थ स्वरूप'' में लिखा है–ज्ञान, कर्म, उपासना इन तीन मुख्य विषयों के कारण भी चारों वेद त्रयी विद्या कहलाते हैं ।

ईश्वरीय ज्ञान होने के सम्बन्ध में वेद स्वतः प्रमाण भी हैं ।

तस्मा॑द् य॒ज्ञात् स॑र्व॒हुत॒ऽ ऋ॒चः सामा॑नि जज्ञिरे ।
छन्दा॑ᳬसि जज्ञिरे॒ तस्मा॒द् यजु॒स्तस्मा॑दजायत ॥

यजुर्वेद ३१।७॥

अर्थात् उसी परमेश्वर से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद उत्पन्न हुए ।

महर्षि कपिलाचार्य जी महाराज ने भी वेद को स्वतः प्रमाण माना है–

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम् । सांख्यदर्शन ५।५१
न पौरुषेयत्वं तत्कर्त्तुः पुरुषस्याभावात् । सांख्यदर्शन ५।४६

अर्थात् वेद का कर्ता आज तक उत्पन्न नहीं हुआ इसलिए वेद किसी पुरुष के बनाये हुए नहीं हैं ।

वेद ईश्वरीय ज्ञान होने के सम्बन्ध में अन्य कसौटियाँ–

१. ईश्वरीय ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में आना चाहिए

परमपिता परमेश्वर सब मनुष्यों के गुरुओं का भी गुरु है ऐसा महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन के अन्तर्गत लिखा है–

स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् । यो० द० १।२६

इस्लाम के हजरत मुहम्मद का लगभग यह २०१५ वाँ वर्ष चल रहा है । बाइबिल के ईसा मसीह का यह १९९५ वाँ वर्ष, जैनधर्म के महावीर स्वामी का लगभग २५०० वाँ वर्ष, यहूदी धर्म के हजरत मूसा को ४००० वर्ष, पारसियों के महात्मा जर्दुस्थ ४५०० वर्ष तथा सिक्ख धर्म के गुरुनानक साहब को ४३४ वर्ष हुए हैं । वैदिक धर्म जो कि ईश्वर ने जब सृष्टि रचना की उस समय से चला आ रहा है । ज्योतिष के आधार पर गणना करने से पता चलता है कि मनुष्य की सृष्टि को १९६०८५३०९२ वर्ष हो चुके हैं । इस प्रकार एक मात्र वेद ही ऐसा धर्म ग्रन्थ है जो सृष्टि के आरम्भ का है ।

पृथिवी की उम्र के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों का मत है–विज्ञान के मतानुसार पृथिवी की उम्र लगभग ४ अरब ६० करोड़ वर्ष बतायी गयी है । यह परिणाम पुरानी चट्टानों में विद्यमान यूरेनियम आदि पदार्थों के परीक्षण के पश्चात् निकाला गया है ।

According to their deductions, based on the study of rocks, the age of the Earth is estimated to be around 4600 million years. –MANORAMA. A Handy Encyclopedia (year book 1983) Page 105, Science and Technology Section.

वैज्ञानिकों की खोजों के आधार पर सृष्टि उत्पत्तिकाल लगभग दो अरब वर्ष ही ठीक है । पाश्चात्य विद्वान् प्रो० मैक्समूलर महोदय ने भी अपनी पुस्तक धर्म विज्ञान (Science and religion) में लिखा है–''यदि आकाश और धरती का रचयिता कोई ईश्वर है तो उसके लिए यह अन्याय की बात होगी कि वह मूसा से लाखों वर्ष पूर्व जन्मी आत्माओं को अपने ज्ञान से वंचित रखे । तर्क और धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन दोनों बल पूर्वक कहते हैं कि परमेश्वर मानव सृष्टि के आरम्भ में ही अपना ईश्वरीय ज्ञान मनुष्यों को देता है ।''

ऋग्वेद १०।७१।१ मन्त्र के अन्तर्गत बताया गया है कि जब मनुष्यों की सृष्टि हुई तो वे कोई वाणी, कोई भाषा नहीं जानते थे । परमात्मा ने आदिम ऋषियों को वेद का ज्ञान देकर उन्हें वेदवाणी, वेद की भाषा सिखायी । उन ऋषियों ने यह वेद ज्ञान अन्य मनुष्यों को सिखाया ।

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत् प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ।।

ऋ०१०।७१।१

महर्षि मनु जी महाराज भी वेद को आदि सृष्टि में परमात्मा द्वारा दिया गया ज्ञान मानते हैं –

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥

मनु० १।२१

अर्थात् उस परमात्मा ने सृष्टि के आदि में वेद के शब्दों से सब के नाम, कर्म, और व्यवस्थाएँ बनाईं ।

महर्षि वेदव्यास ने भी महाभारत शान्तिपर्व के अन्तर्गत लिखा है–

अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा ।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥

म० भा० शा० २३२।२४

अर्थात् परमात्मा ने सृष्टि के आदि काल में वेद का ज्ञान दिया। जिससे सम्पूर्ण प्रवृत्तियों एवं व्यवहार का प्रकाश हुआ ।

२. सृष्टि क्रम-नियम एवं विज्ञान के अनुकूल

बाइबिल में सृष्टि-क्रम, नियम एवं विज्ञान के प्रतिकूल अनेकों बातें लिखी हैं । प्रमाण स्वरूप बाइबिल के कुछ प्रकरण द्रष्टव्य हैं– ईसामसीह कुमारी मरियम के पेट से विना किसी पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुए । ईसामसीह ने मुर्दों को जीवित कर दिया था । विना औषधि के अन्धों को आंखें दीं ।

इसी प्रकार कुरान के अन्तर्गत भी सृष्टि क्रम-नियम के विरुद्ध बातें लिखी हैं, सूर्य कीचड़ के चश्मे में डूबता था । पहाड़ बादलों की भांति उड़ते थे । मूसा ने पत्थर पर डण्डा मारा और उस पत्थर से बाहर चश्मे बह निकले ।

पुराणों के अन्तर्गत भी विज्ञान के विरुद्ध बातें लिखी हैं । जैसे अगस्त मुनि ने समुद्र पी लिया था ।

उपर्युक्त धर्म पुस्तकों में सृष्टि क्रम-नियम एवं विज्ञान के विरुद्ध बातें लिखी हैं । इसलिए ऐसी पुस्तकें ईश्वरीय ज्ञान की कोटि में नहीं आ सकतीं । वेदों के अन्तर्गत सृष्टि-रचना का वर्णन विज्ञान के अनुकूल देखने को मिलता है ।

ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥

ऋ०८।८।४८।१-३

अर्थात् ईश्वर के ज्ञानमय सामर्थ्य से वेद विद्या और कार्य जगत् उत्पन्न हुआ । उसी परमात्मा की सामर्थ्य से प्रलयरूपी रात्रि तथा महासमुद्र उत्पन्न हुए ।

समस्त ब्रह्माण्ड को सहज स्वभाव से अपने वश में करने वाले ईश्वर ने समुद्र की उत्पत्ति के पश्चात् संवत्सर=वर्ष और फिर इनके विभाग दिन-रात, क्षण, मुहूर्त आदि को रचा ।

समस्त विश्व को धारण और पोषण करने वाले ईश्वर ने पूर्वकल्प के अनुसार इस कल्प में सूर्य चन्द्रमा आदि लोकों को रचा है ।

उपर्युक्त वेद के प्रमाण सृष्टि रचना क्रम-नियम के अनुकूल होने से वेद ईश्वरीय ज्ञान है ।

महर्षि कणाद वैशेषिक दर्शन के अन्तर्गत लिखते हैं-

बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे । वै० द० ६।१।१

अर्थात् वेदों की रचना बुद्धि पूर्वक की गयी है । वेदों के सिद्धान्त विज्ञान अनुकूल होने के पक्ष में W.D. Brown Superiority of Vedic Religion नामक पुस्तक के अन्तर्गत लिखते हैं-

"Vedic religion is thoroughly scientific where science and religion meet hand in hand. here theology is based on science and philosophy."

अर्थात् वैदिक धर्म पूर्णतया वैज्ञानिक धर्म है । जहाँ विज्ञान और धर्म दोनों हाथ में हाथ डालकर चलते हैं । यहाँ धार्मिक सिद्धान्त विज्ञान और दर्शन पर आधारित हैं ।

वेद में समस्त सृष्टि कला का विज्ञान निहित है जैसे एक शिल्पी किसी यन्त्र विशेष अथवा एक वैद्य किसी औषधि विशेष का निर्माण करता है और उसके वर्णनात्मक रूप में ग्रन्थ की रचना कर देता है तो दोनों में सामंजस्य होने पर यह सिद्ध होता है कि दोनों एक ही व्यक्ति की रचना हैं । वैसे ही वेद ब्रह्म का ज्ञान सिद्धान्त (Theory) है तो सृष्टि उसकी प्रयोगात्मक (Laboratory) रचना है । दोनों में पूर्ण सामंजस्य है ।

जेम्स हेस्टिंग्ज ने स्वामी दयानन्द के वेद भाष्य को सृष्टिक्रम एवं विज्ञान अनुकूल बताया है-

Swami Dayanand tried to make the book of God resemble the book of nature.

अर्थात् स्वामी दयानन्द ने ईश्वरीय पुस्तक वेद को प्रकृति की

पुस्तक (सृष्टि) के अनुकूल सिद्ध करने का यत्न किया है ।

स्वामी दयानन्द जी के सृष्टि एवं विज्ञान अनुकूल भाष्य की अनेक विद्वानों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है । उदाहरण के रूप में महर्षि योगी अरविन्द, ऋषि दयानन्द के भाष्य पर लिखते हैं-

In the matter of vedic interpretation Dayanand will be hounered, as the first discover of the right clues. Amidst the choas and obscurity of old ignorance and age long misunderstanding, his was the eye of direct vision that pierced to the truth and fastened on to that which was essential.

He has found the Keys of the doors that time had closed and rent as under the seals of the imprisoned fountains.

वेदों के भावार्थ के विषय में, दयानन्द का इस कारण मान किया जायेगा कि वह पहला व्यक्ति है जिसने वेदार्थ का सही सूत्र पता किया है । अव्यवस्था और पुराने अज्ञान के कारण अस्पष्टता और शताब्दियों की भूल के उपरान्त उसकी ही दृष्टि थी जो सच्चाई तक पहुंच सकी, जिस तक पहुंचना अनिवार्य था ।

काल से बन्द हुए द्वार की कुंजी मिल गयी है और वह ज्ञान के स्रोत को बाहर ले आया है ।

लुई जैकालिएट ने वेदों के सिद्धान्त के बारे में The bible in India के अन्तर्गत अपने विचार व्यक्त किये हैं--

"Astonishing fact The Hindu revelation veda, is of all revelation the only one whose ideas are in the perfect harmony with modern science.

अर्थात् यह आश्चर्यजनक सच्चाई है कि केवल हिन्दुओं का ईश्वरीय ज्ञान वेद ही जिसके सृष्टि रचना विषयक सिद्धान्त आधुनिक विज्ञान की मान्यताओं के अनुरूप हैं ।

३. ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तक में किसी देश का इतिहास नहीं होना चाहिए

बाइबिल में पैलस्टाइन के यहूदियों का इतिहास अधिक है । कुरान में अरब देश के दृश्यों का वर्णन तथा मुहम्मद साहब के जीवन वृत्तान्त बहुत से मिलते हैं । कुरान की रचना मुंहम्मद साहब ने की । वेदों का ज्ञान सृष्टि के आदि में परमात्मा ने मानवमात्र के लिए प्रदान किया । वेद ज्ञान-विज्ञान से पूर्ण ग्रन्थ हैं । अतः उनमें इतिहास की कल्पना भी नहीं की जा सकती । वेद के मन्त्रों के सभी पद यौगिक

होते हैं । महर्षि यास्क की निरुक्त प्रक्रिया से वेद मन्त्रों के अर्थ करने से एक भी मन्त्र में एक भी शब्द में किसी का इतिहास नहीं बन सकता है । जिनको भी वेद में मानव इतिहास का भ्रम हो वे आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री के वैदिक इतिहास विमर्श एवं पं॰ जयदेव शर्मा के 'क्या वेदों में इतिहास है ?' ग्रन्थ का अवलोकन करें । समस्त शंकाओं का समाधान हो जायेगा । तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि केवल वेद ही मानव इतिहास से सर्वथा मुक्त ईश्वरीय पुस्तक (ज्ञान) हैं ।

४. ईश्वरीय ज्ञान किसी देश की भाषा में नहीं आना चाहिए

सृष्टि के आदि में परमात्मा ने वेदों का ज्ञान आदि मानव को वेदवाणी में प्रकाशित किया । जो कि किसी एक देश की भाषा नहीं है । मुहम्मद साहब ने कुरान की रचना अरब देश की अरबी भाषा में की । ईसाइयों की धर्म-पुस्तक इबरानी (हिब्रू) भाषा में है । जन्दावस्था पहलवी भाषा में मिलता है वेद ग्रन्थ वैदिक भाषा में हैं । लौकिक संस्कृत का व्याकरण वेद में नहीं लगता है । वेद का व्याकरण अष्टाध्यायी महाभाष्य है । वेद मन्त्रों के अर्थ करने का प्रकार महर्षि यास्क प्रणीत निरुक्त आदि ग्रन्थों से मिलता है । भाषा से सम्बन्धित प्रश्न पर श्री बॉप (Bopp) भाषा शास्त्री लिखते हैं–

"एक समय ऐसा था जबकि संसार में सर्वत्र संस्कृत भाषा बोली जाती थी ।"

महान् युगद्रष्टा, सत्योपदेशक, वेदोद्धारक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती सत्यार्थप्रकाश के ६ठे समुल्लास के अन्तर्गत लिखते हैं–

"वेद भाषा अन्य सब भाषाओं का कारण है ।"

संस्कृत भाषा के शब्दों के अन्दर जो विज्ञान निहित है वह गौरव विश्व की अन्य भाषाओं को प्राप्त नहीं है । संस्कृत भाषा के भूगोल शब्द का विज्ञान द्रष्टव्य है–भू=पृथिवी, गोल=गोलाकार अर्थात् पृथिवी गोलाकार है । इसी प्रकार हृदय शब्द का अर्थ है–[हृ=हरति] यह अकेला शरीर से अशुद्ध रक्त को लेता, [द=ददाति] शुद्ध करने के लिए फेफड़ों को देता और [य=याति] उनसे शुद्ध रक्त लेकर शरीर में गति करने के लिए भेजता है । इतना बड़ा विज्ञान अंग्रेजी भाषा के Heart शब्द के अन्तर्गत नहीं है ।

अतः वेदों की स्थिति इस दृष्टि से भी ईश्वरीय ज्ञान होने की सुदृढ़ है । यह गौरव भी किसी अन्य धर्म ग्रन्थ को प्राप्त नहीं हो सकता ।

५. सम्पूर्ण विद्याओं का वर्णन होना चाहिए

ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तक में मानवों के कल्याण के लिए समस्त ज्ञान-विज्ञान की विद्याएँ सूक्ष्म रूप से विद्यमान होनी चाहिए । इस कसौटी पर कसने पर बाइबिल आदि ग्रन्थ ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध नहीं होते हैं । इन पुस्तकों में सम्पूर्ण विद्याओं के मूल का वर्णन तो दूर रहा, प्रत्युत इन में अनेक ऐसी बातें लिखी हैं जो विद्या-विज्ञानों से सर्वथा विरुद्ध हैं । बाइबिल और कुरान में लिखा है कि भूमि चौड़ी है । फरिश्ते आसमान पर रहते हैं । स्वर्ग में दूध और शहद की नदियां बहती हैं । इन ग्रन्थों में और भी अनेक बातें विद्या-विज्ञान के विरुद्ध लिखी हैं । योरोप के अन्दर जब भी किसी वैज्ञानिक ने इन बातों को विज्ञान विरुद्ध बताने का साहस किया तो उस पर वहाँ के पादरियों ने सदा अत्याचार किया । प्रसिद्ध वैज्ञानिक कापर निकोलस, गैलेलियो एवं ब्रूनो ने जब कहा कि पृथिवी सूर्य के चारों ओर घूमती है तो सारे ईसाई जगत् में खलबली मच गई । कट्टर पादरियों ने ऐसी संसार की श्रेष्ठ प्रतिभाओं को मौत के घाट उतार दिया। क्योंकि बाइबिल के अन्तर्गत लिखा है कि सूर्य पृथिवी के चारों ओर चक्कर लगाता है । पादरी सिरिल की आज्ञा से देवी हियोफियो नंगी की गई और बाजार में जान से मार डाली गई क्योंकि वह रेखागणित पढ़ाया करती थी । बाइबिल के अन्तर्गत रेखागणित का वर्णन नहीं है । इसलिए पादरी लोग इस विद्या को असत्य मानते थे । वेदों का अध्ययन करने पर पता चलता है कि वेदों का एक मन्त्र भी विज्ञान विरुद्ध नहीं है । अपितु समस्त सत्य विद्याओं का मूल वेदों में विद्यमान है । वेदों में भौतिक-विज्ञान, रसायन विज्ञान, आयुर्वेद, राजनीति-विज्ञान, जीव-विज्ञान, ज्योतिष, आचारशास्त्र, शिल्पकला, रेखागणित, बीजगणित, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, अध्यात्म, मनोविज्ञान, सृष्टि विज्ञान, गृहविज्ञान, व्याकरण, कृषि-विज्ञान आदि आदि अनेक विद्याविज्ञानों के मौलिक तत्त्वों का प्रतिपादन सूक्ष्म रूप में किया गया है ।

महर्षि मनु जी महाराज ने वेदों के बारे में लिखा है–

सर्वज्ञानमयो हि सः । मनु० २।१००

अर्थात् वेद सर्वज्ञानमय (सब ज्ञानों का प्रभवस्थान) है । स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ के अन्तर्गत सामवेद के मन्त्र संख्या प्र० १। मं० २ में बीजगणित का मूल माना है ।

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।

निहोता सत्सि बर्हिषि ॥ –साम० पूर्वा० प्रपा०१ मं०१॥

अर्थात् (अग्न आ०) इस मन्त्र के संकेतों से बीजगणित निकलता है ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती यजुर्वेद के निम्न मन्त्र को रेखागणित का मूल मानते हैं ।

इयं वेदि परोऽअन्तः पृथिव्याऽअयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।

—यजु:२३।६२

इस मन्त्र में परमात्मा ने रेखागणित का प्रकाश किया है, क्योंकि वेदी की रचना में रेखागणित का भी उपदेश है । जैसे तिकोन, चौकोन, श्येनपक्षी के आकार और गोल आदि जो वेदी का आकार किया जाता है, सो आर्यों ने रेखागणित का दृष्टान्त माना था ।

पृथिवी की आयु के बारे में अथर्ववेद मन्त्र ८।२।२१ के अन्तर्गत स्पष्ट वर्णन मिलता है—

शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः ।
इन्द्राग्नी विश्वदेवास्तेऽनुमन्यन्तामहृणीयमानाः ॥

—अथर्व०८।२।२१

अर्थात् दस लाख तक विन्दु रखने पर दो, तीन, चार के अंक उनसे पूर्व रखने से ४,३२,००,००,००० वर्ष की आयु पृथिवी की निकल आती है । इतने समय तक स्थित रहने के बाद प्रलयावस्था आती है ।

महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य में व्याकरण के वेद मूलक होने की पुष्टि में कई मन्त्र दिये हैं । इस सन्दर्भ में यजुर्वेद का एक मन्त्र द्रष्टव्य है—

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः ।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः ॥

—यजुर्वेद १९।७७

इसमें प्रथम वैयाकरण प्रजापति अर्थात् परमात्मा को माना गया है । उसने ही सर्वप्रथम सत्य और अनृत का व्याकरण (विवेचन, विश्लेषण) किया । तात्त्विक दृष्टि के द्वारा उसने सत्य में श्रद्धा और असत्य या अनृत में अश्रद्धा रखी । यही सत्य और असत्य का विश्लेषण बाद में प्रकृति और प्रत्यय का विश्लेषण होकर व्याकरण बना ।

६. सार्वकालिक नित्य तथा पूर्ण ज्ञान का वर्णन होना चाहिए

वेद को छोड़कर जितने भी धर्मग्रन्थ हैं वे समस्त मनुष्यों की रचनाएँ हैं । अत: वे नित्य नहीं हो सकतीं । वेदों की नित्यता के बारे में महर्षि मनु लिखते हैं

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ।
भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति ॥

—मनुस्मृति १२।९७

अर्थात् चारों वर्ण, तीनों लोक, चारों आश्रम तथा भूत, वर्तमान और भविष्य की सब व्यवस्थाएँ वेद से ही संसार में प्रचलित होती हैं।

७. ईश्वरीय ज्ञान ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल होना चाहिए.

बाइबिल, कुरान और पुराण आदि ग्रन्थों में ऐसी अनेक बातें लिखी हैं जो परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव से मेल नहीं रखतीं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज के दूसरे नियम में परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन किया है। वेदों में अनेक मन्त्र हैं जो परमात्मा के सत्यस्वरूप, न्यायकारी, दयालु, नित्य, अनादि, सर्वव्यापक, अजर, अमर, शुद्ध, बुद्ध मुक्त स्वभाव, पवित्र, सर्वज्ञ आदि गुण, कर्म, स्वभाव का परिचय देते हैं। कुछ मन्त्र प्रमाण स्वरूप द्रष्टव्य हैं–

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥
–यजु॰४०।८

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्॥
–अथर्व॰ १०।८।४४

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्। –ऋग्वेद १।२२।२२

यो भूतञ्च भव्यञ्च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥
–अथर्व॰ १०।८।१

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
–ऋ॰मं॰१। सू॰१६४। मं॰४६

वेदों में वर्णित बातें ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव के अनुकूल हैं। इसलिए केवल वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है।

८. ईश्वरीय ज्ञान किसी वर्ग विशेष के लिए न होकर मानवमात्र के लिए होना चाहिए।

ईश्वरीय ज्ञान किसी वर्ग विशेष के लिए न होकर संसार के समस्त मनुष्यों के लिए होना चाहिए। यह विशेषता केवल वेद में है। कुरान अरब के मुसलमानों के लिए अरब में उतारा गया था। आज भी वह मुसलमानों का ही धर्मग्रन्थ है। बाइबिल केवल ईसाइयों के लिए है। किन्तु वेद का उपदेश है–

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय ॥ –यजु॰२६।२

अर्थात् परमपिता परमात्मा ने पवित्र कल्याणकारी वेदवाणी का उपदेश ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सभी को दिया ।

यूरोप के उदार विचार के विद्वान् रोमां रोलां ने लिखा है–

It was in truth an epoch making date for India when a Brahmin not only a knowledge that all human beings have the right to know the vedas, whose study had been previously prohibited by orthodox Brahmins, but insisted that their study and propaganda was the duty of every Arya.

(Roman Rolland : Life of Ramkrishna. p–59 Nov.1974)

अर्थात् वस्तुतः भारत में एक युगारम्भ का दिन था, जब एक ब्राह्मण (स्वामी दयानन्द) ने केवल यह स्वीकार ही नहीं किया कि सब मनुष्यों को वेदों के अध्ययन का जिसे कट्टरपंथी ब्राह्मणों ने वर्जित कर रखा था अधिकार है प्रत्युत उसने इस बात पर भी बल दिया कि **''वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है और इनका पढ़ना-पढ़ाना तथा सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।''**

५००० वर्ष से अधिक काल के अनन्तर स्वामी दयानन्द ही अकेले भारतीय विद्वान् हुए हैं जो वेदों का पठन-पाठन और अध्ययन का अधिकार मनुष्य मात्र को देते हैं ।

९. प्रेम संगठन, शान्ति का उत्पादक हो

प्रेम, संगठन और शान्ति से सम्बन्धित उच्च विचार जैसे वेद के अन्तर्गत मिलते हैं । वैसे विचार बाइबिल, कुरान आदि की शिक्षाओं में नहीं हैं । वेद में अनेकों स्थलों पर परस्पर एक दूसरे के प्रति प्रेमभाव से बरतने के विचार आये हैं । अथर्ववेद १९।६२।१ में प्रार्थना है–

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥

–अथर्व॰ १९।६२।१

''अर्थात् हे परमात्मन् ! आप मुझे ब्राह्मणों का, क्षत्रियों का, वैश्यों और शूद्रों का प्यारा बना दो ।''

यजुर्वेद १४।४८ में भी प्रार्थना है–

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥

–यजु॰१४।४८

अर्थात् हे परमात्मन् ! आपकी कृपा से हमारा स्वभाव और मन

ऐसा हो जाये कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्णों के लोगों के प्रति हमारी रुचि हो। सभी वर्णों के लोग हमें अच्छे लगें। सभी वर्णों के लोगों के प्रति हमारा बर्ताव सदा प्रेम और प्रीति का रहे।

ऋग्वेद में सामाजिक सहयोग सौहार्द तथा संगठन से सम्बन्धित मन्त्रों का एक समूह है जिसे संज्ञान सूक्त (संगठन सूक्त) कहते हैं।

संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथापूर्वे सं जनाना उपासते ॥

—ऋ० १०।१९१।२

ऐश्वर्य के अभिलाषियो! परस्पर सम्यक्, शालीनता के साथ गमन-व्यवहार करो, सम्यक्, शालीनता के साथ बोलो, बातचीत करो तुम्हारे मन सम्यक् जानें, ज्ञानवान् बनें। उत्तम, सुज्ञानीदेव अपने-अपने अंश को यथावत् पालन करते हैं।

यजुर्वेद ३६।१७ मन्त्र में शान्ति की प्रार्थना की गई है—

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥

अर्थात् संघर्ष रहते हुए भी पृथिवी, जलों, ओषधियों, वनस्पतियों को जो शान्ति प्राप्त है, सूर्य, चन्द्र, पवन आदि समस्त देवों को जो शान्ति प्राप्त है, ब्रह्म को जो शान्ति प्राप्त है, विश्व को जो शान्ति प्राप्त है, सर्वत्र जो शान्ति ही शान्ति है वही शान्ति मुझे प्राप्त रहे।

उपर्युक्त मन्त्रों से केवल वेद ही को यह गौरव प्राप्त होता है कि ईश्वरीय ग्रन्थ माने जा सकते हैं।

१०. ईश्वरीय ज्ञान को बार-बार बदलने की आवश्यकता नहीं है।

परमात्मा पूर्ण और सर्वज्ञ है। परमात्मा सृष्टि रचना के साथ ही मानव मात्र के कल्याण के लिए ज्ञान देता है। जिसे बीच में बदलने की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए। यदि परमात्मा सृष्टि के आदि में अधूरा ज्ञान देता और बीच में फिर ज्ञान देता तो सृष्टि प्रारम्भ के समय मनुष्यों के साथ अन्याय हो जाता। बाइबिल में कई स्थानों पर ऐसा वर्णन आता है कि परमेश्वर ने अपनी भूल के लिए पश्चात्ताप किया। बाइबिल के भिन्न-भिन्न भागों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे भिन्न-भिन्न समयों में आसमान से उतरे। इसी प्रकार मुसलमान मानते हैं कि परमेश्वर ने पहले क्रमशः जबूर, तौरेत और इंजील के ज्ञान प्रकाशित किये, फिर उन सब को क्रमशः निरस्त करता रहा। फिर कुरान का प्रकाश किया। वेद में लिखा है कि परमात्मा का ज्ञान कभी नष्ट नहीं

होता है । इसलिए बदलने की आवश्यकता ही नहीं है ।

देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति । –अ०१०।८।३२

अर्थात् परमेश्वर के काव्य को देखो, जो न नष्ट होता है न कभी (जीर्ण) पुराना होता है ।

महर्षि वेदव्यास ने भी वेदान्तदर्शन के सूत्र १।१।३ में वेद का स्रोत परमात्मा को माना है–

शास्त्रयोनित्वात् । –वेदान्त दर्शन १।१।३

अर्थात् वह सर्वज्ञ ब्रह्म वेद (=ज्ञान) का स्रोत है । महर्षि कणाद भी वेदों की नित्यता को अपने वैशेषिक दर्शन में मानते हैं ।

तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् । –वैशेषिक दर्शन १।३

अर्थात् वेद ईश्वरोक्त हैं इनमें सत्य विद्या और पक्षपात रहित धर्म का ही प्रतिपादन है । इससे वेद चारों नित्य हैं क्योंकि ब्रह्म नित्य है अत: उसकी विद्या (ज्ञान) भी नित्य है ।

पाश्चात्य विद्वान् प्रो० मैक्समूलर वेदों को संसार की प्राचीनतम पुस्तक (ज्ञान) मानते हैं । वह लिखते हैं–

After the latest researches into the history and chronology of the books of old Testament we may now safely call the rigveda as the oldest book not only of the Aryan Humanity, But of the whole world.

"अर्थात् इतिहास की आधुनिकतम गवेषणाओं के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि ऋग्वेद आर्य जाति की ही नहीं, संसार की प्राचीनतम पुस्तक है ।"

एक अन्य स्थल पर भी वह लिखते हैं–

"विद्यमान ग्रन्थों में वेद सब से अधिक पुराना है । वेद होमर की कविताओं से भी अधिक पुराना है ।"

अत: ईश्वरीय होने के सम्बन्ध में वेद ही ऐसे ग्रन्थ हैं जो विश्व के पुस्तकालय में सर्वप्राचीन एवं कसौटियों पर ठीक उतरते हैं अन्य ग्रन्थ नहीं।

"जिस प्रकार एक राजा का कानून सम्पूर्ण राज्य में एक सा होता है । उसी प्रकार परमात्मा का ज्ञान व कानून वेद सम्पूर्ण लोक लोकान्तरों में भी एक जैसा वर्तमान है ।"

[महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती]

–ब्र० राजेन्द्रार्य:
आर्यसमाज शक्तिनगर
सोनभद्र (उ० प्र०)

हमारे प्रकाशन

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

पुस्तक	मूल्य
आनन्द गायत्री कथा	१४-००
एक ही रास्ता	१२-००
शंकर और दयानन्द	८-००
मानव जीवन-गाथा	१३-००
सत्यनारायण व्रत कथा	५-००
भक्त और भगवान्	१२-००
उपनिषदों का सन्देश	१८-००
घोर घने जंगल में	२०-००
मानव और मानवता	३०-००
प्रभु मिलन की राह	२०-००
यह धन किसका है ?	२२-००
बोध-कथाएँ	१८-००
दो रास्ते	१७-००
दुनिया में रहना किस तरह ?	१५-००
तत्त्वज्ञान	२०-००
प्रभु-दर्शन	१५-००
प्रभु-भक्ति	१२-००
महामन्त्र	१२-००
सुखी गृहस्थ	७-००
त्यागमयी देवियाँ	८-००

MAHATMA ANAND SWAMI

Book	Price
Anand Gayatri Katha	30-00
The Only Way	30-00
Bodh Kathayen	40-00
How To Lead Life ?	30-00

महर्षि दयानन्द

पुस्तक	मूल्य
व्यवहारभानु	४-००
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	१-५०
आर्योद्देश्यरत्नमाला	१-५०

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

पुस्तक	मूल्य
महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००-००
वाल्मीकि रामायण	१७५-००
षड्दर्शनम्	१५०-००
चाणक्यनीतिदर्पण	६०-००
विदुरनीतिः (हिन्दी-संस्कृत-अंग्रेजी)	४०-००
ब्रह्मचर्य गौरव	९-००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	९-००
कुछ करो कुछ बनो	१२-००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१२-००
आदर्श परिवार	१५-००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५-००
वैदिक विवाह-पद्धति	८-००
ऋग्वेद सूक्ति-सुधा	२५-००
अथर्ववेद सूक्ति-सुधा	१५-००
सामवेद सूक्ति-सुधा	१२-००
ऋग्वेदशतकम्	१०-००
यजुर्वेदशतकम्	१०-००
सामवेदशतकम्	१०-००
अथर्ववेदशतकम्	१०-००
भक्ति संगीतशतकम्	६-००
चमत्कारी औषधियाँ	१५-००
घरेलू औषधियाँ	१५-००
चतुर्वेदशतकम् (सजिल्द)	५०-००
स्वर्ण पथ	१२-००
प्रभात-वन्दन	८-००
प्रार्थना-प्रकाश	८-००
शिवसंकल्प	८-००
प्रार्थनालोक (सजिल्द)	४०-००

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वेद-सौरभ १२-००
सत्यार्थप्रकाश (सा०) १२५-००
सत्यार्थप्रकाश (विशेष) २००-००

आचार्य उदयवीर शास्त्री

न्यायदर्शन भाष्य १५०-००
वैशेषिकदर्शन भाष्य १२५-००
सांख्यदर्शन भाष्य १२५-००
योगदर्शन भाष्य १००-००
वेदान्तदर्शन भाष्य (ब्रह्मसूत्र) १८०-००
मीमांसादर्शन ३५०-००
सांख्यदर्शन का इतिहास २५०-००
सांख्य सिद्धान्त २००-००
वेदान्तदर्शन का इतिहास २००-००
प्राचीन सांख्य सन्दर्भ १००-००
वीर तरंगिणी (लेखों का संग्रह) २५०-००

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

आदि शंकराचार्य वेदान्ती नहीं थे ४०-००
सृष्टि विज्ञान और विकासवाद ४०-००
वेद मीमांसा ५०-००
दीप्ति: ८०-००

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

शतपथब्राह्मण (तीन खण्ड) १८००-००
सन्ध्या : क्या, क्यों, कैसे १५-००
विवाह और विवाहित जीवन १८-००
जीवात्मा ४०-००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

ब्रह्मचर्य सन्देश २५-००
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार १५०-००

प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु

महात्मा हंसराज ६०-००
महात्मा हंसराज ग्रन्थावली (४ खण्ड) २४०-००
आर्य सूक्ति-सुधा १२-००
वैदिक ज्ञान-धारा ८०-००

डा० भवानीलाल भारतीय

कल्याण मार्ग का पथिक प्रेस में
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (ग्यारह खण्डों में) ६६०-००
आर्यसमाज के बीस बलिदानी १५-००
श्याम जी कृष्ण वर्मा २४-००
आर्यसमाज विषयक साहित्य परिचय २५-००
बिखरे मोती ४०-००

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

ऋषि बोध कथा १०-००
वैदिक धर्म २५-००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार

ईश्वर का स्वरूप प्रेस में
सहेलियों की वार्ता २०-००

ले० देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय
अनु० पं० घासीराम

महर्षि दयानन्द चरित २५०-००

क्षितीश वेदालंकार

चयनिका १२५-००

पं० रामनाथ वेदालंकार

वैदिक मधुवृष्टि ६०-००

आ० प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेदोद्यान के चुने हुए फूल ५०-००

पं० चन्द्रभानु सिद्धान्ताभूषण

महाभारत सूक्ति-सुधा ४०-००

डॉ० प्रशान्त वेदालंकार

धर्म का स्वरूप ५०-००

पं० विश्वनाथ विद्यालंकार

सन्ध्या रहस्य २५-००

प्रो० रामविचार एम० ए०

आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो ? ४-००

प्रो० नित्यानन्द पटेल

पूर्व और पश्चिम ३५-००
सन्ध्या विनय ६-००

पं० नन्दलाल वानप्रस्थी

गीत सागर २५-००

पं॰ वा॰ विष्णुदयाल (मॉरीशस)

वेद भगवान् बोले ·१५-००

आ॰ उदयवीर शास्त्री

आचार्य शंकर का काल १०-००

पं॰ वीरसेन वेदश्रमी

याज्ञिक आचार संहिता ४५-००

नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रेरक बोध-कथाएँ १५-००

कवि कस्तूरचन्द

ओंकार गायत्रीशतकम् ३-००

पं॰ सत्यपाल विद्यालंकार

श्रीमद् भगवद्गीता १५-००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका ४-००

पंचयज्ञप्रकाशिका ८-००

वैदिक सन्ध्या २-००

सामाजिक पद्धतियाँ (मदनजीत आर्य) १२-००

सन्ध्या-हवन दर्पण (उर्दू) ८-००

Vedic Prayer 3-00

WORKS OF SVAMI SATYA PRAKASH SARASVATI

Founders of Sciences in Ancient India (Two Vols.) 800-00

Coinage in Ancient India (Two Vols.) 600-00

Geometry in Ancient India 350-00

Brahmgupta and His Works 350-00

God and His Divine Love 5-00

The Critical, Cultural Study of Satapath Brahman In Press

Speeches, Writings & Addresses

Vol. I : VINCITVERITAS 150-00

Vol.II : ARYA SAMAJ : A RENAISSANCE 150-00

Vol. III : DAYANAND : A PHILOSOPHER 150-00

Vol. IV : THREE LIFE HAZARDS 150-00

जीवनी

महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू) १०-००

महात्मा आनन्द स्वामी (हिन्दी) २५-००

बाल साहित्य

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द ५-००

गुरु विरजानन्द ४-५०

स्वामी श्रद्धानन्द ४-५०

धर्मवीर पं॰ लेखराम ५-००

मुनिवर पं॰ गुरुदत्त ५-००

स्वामी दर्शनानन्द ५-००

प्रा॰ राजेन्द्र जिज्ञासु

महात्मा हंसराज ४-५०

स्वामी स्वतन्त्रानन्द ४-५०

महात्मा नारायण स्वामी ५-५०

देवतास्वरूप भाई परमानन्द ५-५०

स्वामी दर्शनानन्द

कथा पच्चीसी ९-००

बाल शिक्षा २-५०

सुनील शर्मा

हमारे बालनायक ८-००

देश के दुलारे ९-००

हमारे कर्णधार ८-००

सत्यभूषण वेदालंकार एम॰ ए॰

नैतिक शिक्षा–प्रथम २-५०

नैतिक शिक्षा–द्वितीय ३-००

नैतिक शिक्षा–तृतीय ४-५०

नैतिक शिक्षा–चतुर्थ ५-००

नैतिक शिक्षा–पंचम ४-५०

नैतिक शिक्षा–षष्ठ ५-५०

नैतिक शिक्षा–सप्तम ५-५०

नैतिक शिक्षा–अष्टम ५-५०

नैतिक शिक्षा–नवम ८-००

नैतिक शिक्षा–दशम ८-००

वेद सूक्तियाँ

वेद प्रभु प्रदत्त दिव्य ज्ञान है। वेद सार्वभौम एवं सार्वकालिक है। वेद देश, जाति, रंग की सीमाओं में आबद्ध नहीं है। वेद का ज्ञान आबाल-वृद्ध, नर-नारी, युवक-युवती सभी के लिए है।

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती द्वारा चारों वेदों का गहन अध्ययन करके इन सूक्तियों का मनोरम एवं उपदेशप्रद संकलन तैयार किया है। इन सूक्तियों को पढ़िए, विचारिए, स्वयं कण्ठस्थ कीजिए, अपने बच्चों को कण्ठस्थ कराइए, लेखों और भाषणों में इनका प्रयोग कीजिए।

सामवेद सूक्ति सुधा	१२.००	अथर्ववेद सूक्ति सुधा	१५.००
ऋग्वेद सूक्ति सुधा	२५.००	यजुर्वेद सूक्ति सुधा	१५.००

वेद शतक

वेद ईश्वरीय ज्ञान है। 'वेद' विद्या के अक्षय भण्डार और ज्ञान के अगाध समुद्र हैं। उनमें वैदिक संस्कृति का सर्वोच्च चित्रण है और मानवता के आदर्शों का पूर्णरूपेण वर्णन है। वेदों के अध्ययन, मनन और तदनुसार आचरण से मनुष्य अपने स्वरूप को जानकर तथा लक्ष्य को पहचानकर अपने लौकिक और पारलौकिक जीवन को आनन्दमय बना सकता है।

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती द्वारा चारों वेदों से चुनकर सौ-सौ मन्त्रों का अर्थ सहित संकलन किया गया है।

प्रत्येक गृहस्थ में वेद का साहित्य हो। हमारे घर वैदिक ध्वनि से गूंजें। हम वेद का स्वाध्याय करें। वेद मानव-जीवन का अंग बने। प्रत्येक व्यक्ति वेद पढ़ सके, और उसे समझ सके इसके लिए ही हमारा प्रयास है।

सामवेदशतकम्, यजुर्वेदशतकम्, अथर्ववेदशतकम्, ऋग्वेदशतकम्

प्रत्येक का मूल्य १०.००

ऋषि निर्वाण दिवस पर

'वेदप्रकाश' के ग्राहकों के लिए निम्न प्रकाशनों पर

विशेष छूट

१. महर्षि दयानन्द चरित्र : ले० देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ।
ऋषि दयानन्द का यह अनूठा जीवन चरित्र है ।
मूल्य : रु० २५०.०० के स्थान पर रु० १७५.०० में प्राप्त करें ।

२. षडदर्शनम् : ले० स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ।
वेद में ईश्वर, जीव, प्रकृति, पुनर्जन्म, मोक्ष, योग, कर्मसिद्धान्त, यज्ञ आदि का बीजरूप में वर्णन है । दर्शनों में इन्हीं पर विस्तृत विवेचन ।
मूल्य : रु० १५०.०० के स्थान पर रु० १०५.०० में प्राप्त करें ।

३. सत्यार्थप्रकाश (आधुनिक हिन्दी रूपान्तर) : स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ।
आज तक छपे सभी संस्करणों से सुन्दर, अनेक टिप्पणियों से विभूषित, कठिन शब्दों के अर्थ से युक्त है यह संस्करण ।
मूल्य : रु० १२५.०० के स्थान पर रु० १००.०० में प्राप्त करें ।

४. महात्मा हंसराज ग्रन्थावली (चार खण्ड) : सं० प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु ।
त्यागी, तपस्वी, धीर-गम्भीर, दूरदर्शी, महात्मा हंसराज जी का कृतित्व व व्यक्तित्व चार खण्डों में सम्पूर्ण ।
मूल्य : रु० २४०.०० के स्थान पर रु० १७०.०० में प्राप्त करें ।

५. स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (ग्यारह खण्ड) :
सं० डॉ० भवानीलाल भारतीय व प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु ।
अछूतोद्धार, स्त्री-शिक्षा, शुद्धि आन्दोलन, धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यों में समर्पित व्यक्तित्व स्वामी श्रद्धानन्द का सम्पूर्ण लेखन ।
मूल्य : रु० ६६०.०० के स्थान पर ४६०.०० में प्राप्त करें ।

विशेष छूट केवल ३१ अक्तूबर १९९५ तक उपलब्ध ।
अपना आदेश आज ही भेजें ।
पोस्ट द्वारा मंगाने पर खर्चा हम वहन करेंगे ।

प्रकाशक-मुद्रक अजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया ।

मृत्यु से पार कराने वाला रस

यो दाधार पृथिवीं विश्वभोजसं यो अन्तरिक्षमापृणाद् रसेन।
यो अस्तभ्नाद् दिवमूर्ध्वो महिम्ना तेनौदनेनातितराणि मृत्युम् ।।

अथर्व० ४।३५।३

अर्थ—(यः) जो (विश्वभोजसम्) सब को भोजन देने वाली (पृथिवीं) पृथिवी को (दाधार) धारण किए हुए है, (यः) जो (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष को (रसेन) रस से (आपृणात्) पूर्ण करता है, (यः) जो (महिम्ना) अपनी महिमा से (दिवम्) द्युलोक को (ऊर्ध्वः) ऊपर (अस्तभ्नात्) थामे हुए है (तेन) उस (ओदनेन) सब को रस देने वाले परमात्मा की सहायता से (मृत्युम्) मृत्यु को (अतितराणि) तर जाऊँ।

उस प्रभु की महिमा महान् है। जिस धरती पर बहने वाले पानी और उगने वाले अन्न, फल और ओषधियों से मनुष्य से लेकर कीटपर्यन्त सब प्राणी अपना भोजन प्राप्त करते हैं उस धरती को प्रभु ने ही सुरक्षित रूप में धारण किया हुआ है। जिस अन्तरिक्ष से बादलों से बरसने वाले और ओस के रूप में पड़ने वाले पानी से सब प्राणी और वनस्पतियाँ रस-लाभ करते हैं, उस अन्तरिक्ष में यह रस उस प्रभु की शक्ति से ही आता है। जिस द्युलोक में दिन में प्रकाशपुंज सूर्य और रात्रि में मनोहर चन्द्रमा और तारे चमकते हैं और उसके विराट् (sublime) रूप का परिचय देते हैं, उस विराट् द्युलोक को अपनी जगह पर उसी प्रभु ने थाम रखा है। यदि इन तीनों लोकों के नीचे प्रभु की सत्ता का सहारा न हो तो इनमें से कोई-सा एक क्षण के लिए भी नहीं रह सकता।

ऐसा महान् महिमा वाला प्रभु ही हमें मृत्यु के भय और जन्म-मरण के क्लेश से बचा सकता है। हम मृत्यु को जीतने और अमृत प्राप्त करने के लिए उसी रसस्वरूप का आश्रय लेते हैं।

—'वेदोद्यान के चुने हुए फूल' से

बोध-कथा

आग से जूझने वाला वह व्यक्तित्व

भीषण आग लगने पर खतरे की घण्टी बजने पर भी आंखों वाले तो अपने चपेट में लेने के लिए बढ़ती तेज आग से अपना बचाव कर सकते हैं, पर ऐसी परिस्थिति में जब संगी-साथी चले जायें, साथी भी कमरे का दरवाजा बाहर से अचानक बन्द कर चले जायें तो किसी की भी हिम्मत पस्त हो सकती है, पर १९९५ में मई मास की भीषण गर्मी में कस्तूरबा गांधी मार्ग, नई दिल्ली की बहु-मंजिली कैलाश बिल्डिंग की आठवीं मंजिल में नेत्रहीन दीनानाथ यादव ने गजब के जीवट, धीरज, साहस का परिचय दिया।

वह आग लगने के समय अपने कमरे में अकेला रह गया था, उसके सभी साथी अपनी प्राणरक्षा के लिए जा चुके थे, एक सुरक्षाकर्मी ने हाल का दरवाजा भी बन्द कर दिया था। दीनानाथ ने कुर्सी पर खड़े होकर दरवाजा खोलने की कोशिश की, वह दरवाजा नहीं खुला। हिम्मत न हार कर उस ने पड़ोस में अवस्थित इण्डियन आयल कम्पनी के दफ्तर फोन किया। कई बार की कोशिश करने पर फोन तो मिला पर उस पड़ोस की इमारत के भी सब कर्मचारी आग की लपटों और उसे बचाने के प्रबन्ध को देखने बाहर जा चुके थे। अन्त में कई बार की कोशिश के बाद उनका अपने एक साथी-सहयोगी दिलीप चावला से सम्पर्क स्थापित हुआ। उन्होंने फायर ब्रिगेड वालों को सूचना दी और उनके साथ पम्प के सहारे ऊपर चढ़े और आठवीं मंजिल से नेत्रहीन दीनानाथ यादव को सकुशल निकाल लाये।

दीनानाथ यादव इण्डियन आयल कम्पनी में स्टेनोग्राफर हैं, उनकी उम्र तीस वर्ष है, नेत्रहीन हैं। महीने भर पहले ही उनका विवाह हुआ था। उन्होंने केवल भाग्य पर भरोसा नहीं किया प्रत्युत आग और धुएँ से कैसे बचें—इसके लिए अपने पहले पढ़े पाठ से गीले रूमाल के प्रयोग से आग और धुएं से अपना बचाव किया। कह सकते हैं—दीनानाथ यादव जैसे लोग ही मानव के अदम्य साहस और जीवनी शक्ति के उदाहरण बनते हैं। ऐसे व्यक्ति को विकलांग कहना अनुचित है। शरीर के किसी अंग का अशक्त होना या काम न करना किसी भी मानव के समूचे व्यक्तित्व को मर्यादित नहीं कर सकता। संकट के समय बाधाओं से जूझने वाले व्यक्ति को आंख वाले से कम आंकना ठीक नहीं, आग के बीच आंख वालों की हड़बड़ी, आपाधापी के बीच अकेले पड़े दीनानाथ ने जैसे संकट का सामना किया, सूझबूझ दिखाई, वह सब के लिए अनुकरणीय है।

प्रस्तुति—नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द
वर्ष ४४, अंक ५ वार्षिक मूल्य : बीस रुपये दिसम्बर १६६५
सम्पा० अजयकुमार आ० सम्पादक : स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

जिज्ञासु के लिए उपनिषदों की सीख : ९

छान्दोग्य उपनिषत् का सन्देश
सर्वत्र सामगान गूंजा
प्रेरक कथाएं

–नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

छान्दोग्य उपनिषद् एक विराट् ग्रन्थ है, अपने आकार और विषय वस्तु दोनों ही दृष्टियों से इसमें ८ प्रपाठक और उनमें १५४ खण्ड हैं। वैदिक वाङ्मय में ओङ्कार की व्यापक चर्चा है। प्रतीत होता है कि वहां ओङ्कार की उपासना ही जीवन का चरम लक्ष्य है। यमाचार्य ने कठोपनिषद् में नचिकेता को सीख दी थी–सब वेदों, सब तपों में ब्रह्मचर्य व्रत की चाहना में ओङ्कार का ही मुख्य लक्ष्य है। मुण्डक उपनिषद् में परा और अपरा विद्याओं का उपदेश देते हुए प्रणव ओङ्कार को धनुष और आत्मा को शर या बाण कहा गया है। माण्डूक्य उपनिषद् भी 'अ उ म' ओङ्कार की तीन मात्राओं का वर्णन करती है। तैत्तिरीय उपनिषद् में ओ३म् को ब्रह्म कहा गया है।

वैदिक सूक्तों का सस्वर पाठ करने वाला–छन्दोबद्ध पद्यमय साहित्य पाठ करने वाला सामगायक छान्दोग्य का विनम्र साधक कहा जा सकता है। इस उपनिषत् के रचनाकार 'ओ३म्' की महत्ता प्रदर्शित करते हुए बतलाते हैं--पांच महाभूतों में सर्वाधिक महत्ता पृथिवी तत्त्व की है। **एषां भूतानां पृथिवी रसः।** इस पृथिवी में जीवन के लिए अत्यधिक उपयोगी जल तत्त्व है। **पृथिव्याः आपः रसः**, जलों की अपेक्षा

भी ओषधियों की महत्ता होती है । **अपाम् ओषधयः रसः**, इन ओषधियों के रस से पुरुष का निर्माण होता है (**ओषधीनां पुरुषः रसः**), पुरुष की महत्ता उसकी वाणी से प्रदर्शित होती है (**पुरुषस्य वाक् रसः**), वाणी की महत्ता साम-गान से प्रमाणित होती है । (**वाचः ऋक् रसः**) ऋचाओं की महत्ता साम-गान से होती है और सामगान की महत्ता ओङ्कार द्वारा प्रभु का गायन करने से है (**साम्ना उद्गीथः रसः**) ।

ओङ्कार का सस्वर उच्चारण तथा उसका गायन रसों का रस है, वह परम रस है—**स एषः रसानां रसतमः**। इस ओङ्कार की ध्यान, उपासना में परम स्थिति होती है । (**परमः परार्ध्यः**) पृथिवी से लेकर उद्गीथ-ओङ्कार तक गिनती की जाए तो ओङ्कार का रस आठवें स्थान पर आता है । इस उपनिषत् के पहले खण्ड में उद्गीथ-ओङ्कार की महिमा का ही आख्यान है । ओङ्कार को उद्गीथ इसलिए कहते हैं कि उसका उच्च स्वर से गान किया जाए तो चित्त को शान्ति मिलती है। गीथ का अर्थ है गान करना, उद्गीथ उच्च स्वर से गान करना ।

'उद्गीथ' ओङ्कार की महिमा दिखलाने के लिए एक चिन्तन प्रस्तुत किया गया है —देव और असुर दोनों प्रजापति की सन्तान हैं । दोनों में संघर्ष छिड़ गया, दोनों ही प्रजापति की सन्तान थे, दोनों ने अपने आश्रय के लिए उद्गीथ को ग्रहण किया, उन्होंने विचार किया इस उद्गीथ के आश्रय से वे असुरों को हरा देंगे । (**देवाः उद्गीथम् आजहुः, अनेन एतान् अभिभविष्यामः इति ।**) इस कहानी में उल्लेख है देवों और असुरों दोनों ने सोचा कि उद्गीथ की उपासना करें । नासिका में चलती हुई सांस के कारण देवों को लगा कि नाक में चलने वाला सांस ही उद्गीथ है, वे उसकी उपासना करने लगे । असुर देवताओं का अनुसरण कर रहे थे, उन्होंने सांस को पाप से बींध दिया । **तं ह असुराः पाप्मना विविधुः** सम्भवतः यही कारण है कि मानव सांस के द्वारा सुगन्ध तथा दुर्गन्ध दोनों का ग्रहण करता है ।

इस पर देवों को अनुभूति हुई कि सांस में तो सुगन्ध दुर्गन्ध दोनों हैं, उन्होंने वाणी में वचनों के अस्तित्व को देख कर उसमें उद्गीथ की कल्पना की कि वाणी का बोल ही उद्गीथ है । **अथ ह वाचम् उद्गीथम् उपासाञ्चक्रिरे** । इस पर असुरों ने वाणी को बींध दिया **ताम् असुराः पाप्मना विविधुः** । पाप के समाविष्ट होने से मानव की वाणी में सत्य और असत्य दोनों ही होते हैं। **तस्मात् तया उभयं वदति सत्यं च अनृतं च** । इसके बाद देवता देखने की क्रिया को उद्गीथ का कारण समझ कर चक्षु में उसकी उपासना करने लगे । **अथ च चक्षुः उद्गीथम् उपासाञ्चक्रिरे**, तब असुरों ने चक्षु को पाप से बींध दिया । **तस्मात् तेन उभयं पश्यति दर्शनीयञ्च अदर्शनीयञ्च** । क्योंकि असुरों ने उसे

पाप से बींध दिया था । **पाप्मना हि एतत् विद्धम् ।**

उस समय देवों को अनुभूति हुई कि नासिका, वाणी, चक्षु के बाद श्रोत्र से मनुष्य श्रवणीय और अश्रवणीय दोनों को सुनता है, तब वे मनन के कारण उद्गीथ का कारण मन को समझ कर मन की उपासना करने लगे । **अथ ह मन उद्गीथम् उपासाञ्चक्रिरे,** तब असुरों ने नासिका, वाणी, चक्षु के बाद श्रोत्र और मन को भी पाप से बींध दिया । **तत् ह असुराः पाप्मना विविधुः** तब मन भी सोचने योग्य, न सोचने योग्य को भी सोचने लगा, तब असुरों ने पाप को भी बींध दिया, **पाप्मना हि एतद् विद्धम् ।**

इस पर दिव्य शक्तियों ने चिन्तन किया । नाक, आवाज, आंख, कान, मन जिस जगह भी उद्गीथ की कल्पना कर वे गये, उपासना करने लगे । उस प्रत्येक जगह को असुरों ने पाप से बींध दिया, असुरों से बचने के लिए वे मानव के जीवन के स्रोत मुख्य प्राण के पास पहुंचे। जिसके कारण मानव जीवन का अस्तित्व बना रहता है, तब वे प्राण को उद्गीथ समझ कर उसकी उपासना करने लगे, असुर उसे बींधने के लिए प्राण के पास पहुंचे । परन्तु इस बार असुरों का प्रयत्न अकारथ हो गया, वे स्वयं नष्ट हो गए । **(तम् उद्गीथम् उपासाञ्चक्रिरे तं ह असुराः कृत्वा विदध्वंसुः ।)** ठीक उसी प्रकार जैसे कठोर पाषाण से टकरा कर मिट्टी का ढेला बिखर जाता है । **(एवं यथा अश्मानं आखणं कृत्वा विध्वंसते एवं ह एव विध्वंसते।)** उसी प्रकार वह बिखर जाता है ।

असुर लोग प्राण को बींधने में समर्थ नहीं हो सके, उससे पूर्व नाक अच्छी गन्ध लेती है, बुरी भी, वाणी सत्य बोलती है, असत्य भी, आंख दर्शनीय देखती है, अदर्शनीय भी, कान श्रवणीय सुनते हैं, अश्रवणीय भी, मन शुभ संकल्प करता है, अशुभ भी, परन्तु प्राण में पाप नहीं पहुंचता, इसलिए उसमें आसुरीयता नहीं आ सकती । प्राणों में उद्गीथ की कल्पना करने से न वहां सुगन्ध रहती है और न दुर्गन्ध। **न एव एतेन सुरभिं न दुर्गन्धिं विजानाति,** असुर प्राणों को पाप से नहीं बींध सकते । फलतः- उद्गीथ ओङ्कार की उपासना करने से मानव जो कुछ खाता है, जो कुछ पीता है, तब वह प्राण अन्य अंगों को प्राण-शक्ति देता है **(तेन यद् अश्नाति, यत् पिबति तेन इतरान् प्राणान् अवति।)** वह अन्तकाल के समय अपने लिए कुछ न रख कर खाली हाथ संसार से चल देता है **अन्ततः अवित्वा उत्क्रामति ।** आगे कहा गया है 'उद्गीथ' ही अंगों का रस होने के कारण आंगिरस है, उद्गीथ ही बृहत् विराट् होने के कारण आंगिरस है । इस कथानक से स्पष्ट है कि नासिका वाणी, चक्षु, श्रोत्र, मन आदि में उद्गीथ की प्रतिष्ठा की गई, तब असुरों

ने उसे पाप से बींध दिया । परन्तु प्राण और मुख अपने पास कुछ न रख कर दूसरों को बांट देते हैं, जो खाया जाता है, उसे मुख अपने पास न रखकर शरीर के अंग-अंग में बांट देता है, इसी प्रकार प्राण जीवन शक्ति लेकर उसे अपने पास न रख कर कोष्ठ-कोष्ट में पहुंचा देता है । प्राण तथा मुख नि:स्वार्थ भाव से कार्य करते हैं, फलत: वहां उद्गीथ और ओङ्कार का वास सम्भव है ।

ब्रह्माण्ड में उद्गीथ की उपासना के सम्बन्ध में वर्णन है । तपते हुए सूर्य में उद्गीथ की कल्पना करके उसकी उपासना करे । वही विश्व की प्रजाओं को ऊपर उठा रहा होता है । वह भय रूपी अन्धकार का नाश कर देता है और जो इस रहस्य को जान लेता है, वह यथार्थ में ओङ्कार का रहस्य जान लेता है । प्राण और सूर्य दोनों ही स्वार्थों से शून्य हैं, वे सदा दूसरों को देते हैं, कभी कुछ लेते नहीं, इसी प्रकार दोनों में गर्मी या उष्णता देने की भी समानता है । **समान उ एव अयं च असौ च, उष्णः अयम् उष्णः असौ।** इसी प्रकार दोनों में स्वर विद्या या प्राण विद्या भी है । इन समानताओं के कारण उस सूर्य और इस प्राण की उपासना करे, जैसे प्राण और सूर्य में उद्गीथ की कल्पना कर उनकी उपासना का परामर्श है, उसी प्रकार भीतर लिये जाने वाले और बाहर निकाले जाने वाले प्राण अर्थात् व्यान की भी उपासना करे । (**अथ खलु व्यानम् एव उद्गीथं उपासीत यत् वै प्राणिति सः प्राणः, यत् अपानिति स अपानः**) जो भीतर, लिया जाता है वह प्राण है जो सांस बाहर निकाली जाती है वह अपान है, प्राण और अपान का मेल या सन्धि ही व्यान है । **अथ यः प्राणापानयोः सन्धिः सः व्यानः** । इस सन्धि स्थान से भी ओङ्कार की ध्वनि होती है । प्राण में उद्गीथ की कल्पना प्राणायाम के समय ध्यान में ओङ्कार का निरन्तर जाप करना, सूर्य के प्राणों का ध्यान करते हुए ओङ्कार का जाप करना, सूर्य के गुणों का अनुसरण करूं, मैं भय रूपी अन्धकार से उन्मुक्त रहूं । मुझ में स्नेह की गंगा का प्रवाह प्रवाहित हो ।

इस के बाद साधक 'उद्' 'गी' 'थ'-उद्गीथ के तीन अक्षरों में से **प्राणः एव उत्** । पहले अक्षर उत् पर प्राण केन्द्रित किया जाए, प्राण से ही वह ऊपर उठता है । **प्राणेन हि उत्तिष्ठति।** उत् के ध्यान के बाद गी वाणी दूसरा अक्षर है । **वाक् गीः वाचः ह गिरः इति आचक्षते।** उद्गीथ के तीसरे अक्षर थ से अन्न का ध्यान करे, अन्न में ही सब कुछ अवस्थित है । **अन्नं यम्, अन्नं हि इदं सर्वं स्थितम्, अन्ने हि इदं सर्वं स्थितम्** । उद्गीथ के माध्यम से उपनिषत्कार ने अध्यात्म जीवन की एक छवि प्रस्तुत की है, उसमें भौतिकता के साथ आध्यात्मिकता का समन्वय है । ऋचाओं में चिन्तन किया गया है--द्यौः

उद् है, अन्तरिक्ष गी है और पृथिवी थ है, सूर्य उद् है, वायु गी है और अग्नि थ है, इसी प्रकार सामवेद उद् है, यजुर्वेद गी है और ऋग्वेद थ है । इस तरह उपनिषत् के ऋषि के अनुसार सम्पूर्ण विश्व में उद्गीथ-ओङ्कार का ही स्वरूप है । इन अक्षरों को भली प्रकार समझ कर जो साधक ओङ्कार की उपासना करता है, उस की वाणी से ओङ्कार का स्तवन गोदुग्ध, वाणी का यही दूध होता है । ऐसा साधक अन्नवान् बन जाता है । **दुग्धे अस्मै वाग् दोहम् यः वाचः दोहः अन्नवान् अन्नादः भवति यः एतानि एवं विद्वान् उद्गीथ अक्षराणि उपास्ते ।** जो साधक उद्गीथ के इन अक्षरों को समझ कर उनकी सच्ची उपासना करता है, वह उद्गीथ का रहस्य समझ लेता है ।

उपनिषत् के पहले प्रपाठक के चौथे खण्ड में उपनिषत्कार ने स्पष्ट किया है–'ओ३म्' अक्षर ही उद्गीथ है । उसी की उपासना गान करना चाहिए । देवता लोग मृत्यु भय से छन्दों से आच्छादित ऋक्, यजुः, साम ऋचाओं में प्रविष्ट हो गए, जब देवों ने अनुभव किया कि मृत्यु ने उन्हें देख लिया तब वे ऋचाओं से ऊपर स्वरों में प्रविष्ट हो गए । वेदों की ऋचाओं का उच्चारण 'ओ३म्' इस स्वर का ही उच्चारण है, ओ३म् का दीर्घ स्वर से उच्चारण ही अमृत है 'एतद् अमृतम्' उसी से अभय पद प्राप्त होता है 'अभयम्' जब देवताओं ने ओ३म् अक्षर में प्रवेश किया और ऊंचे स्वर से ओङ्कार का उच्चारण करने लगे, तब वे अमृत और अभय हो गए । **'तत् प्रविश्य देवाः अमृताः अभयाः अभवन् ।'** इस समस्त विवरण का यही आशय जान पड़ता है कि मात्र छन्दों के पाठ से अमर पद की उपलब्धि सम्भव नहीं, उसके लिए पहले छन्दों में फिर छन्दों के पाठ से ऊपर उठ कर ओङ्कार के स्वर में डूब गए तब उन्हें अमृत-अभय पद की प्राप्ति हुई ।

सर्वत्र साम-गान प्रचलित

छान्दोग्य उपनिषद् के पहले प्रपाठक के १२-१३ खण्डों में उद्गीथ या ओङ्कार की उपासना सृष्टि में सर्वत्र प्रचलित सृष्टि-नाद के तुल्य मालूम पड़ती है । उपनिषत्कार की दृष्टि में मानव जिस प्रकार उद्गीथ-ओङ्कार की उपासना करता है, उसी प्रकार प्राणी, पशु, जगत् में उद्गीथ-उपासना हो रही है । द्रष्टा सृष्टि को जिस दृष्टि से देखना चाहे, देख सकता है । एक सैनिक सांझ के सूर्य की लाली देखकर चारों ओर खून ही खून देखता है । एक साधु इस लालिमा में गेरुए रंग को चारों ओर बिखरा अनुभव करता है । इस प्रकार द्रष्टा को सृष्टि के कण-कण में वृष्टि, जल, ऋतु, पशु, जगत् और प्राण में उच्च स्वर से आरोह-अवरोह के रूप में ओङ्कार की उपासना होती प्रतीत होती

है । द्रष्टा को सम्पूर्ण सृष्टि में साम-गान होने की प्रतीति होती है, इस प्रकार जो द्रष्टा सम्पूर्ण जगत् को साम-गान के संगीत से ओत-प्रोत हुए देखता है, वह पूर्णतया संगीतमय हो उठता है, उससे सामंजस्य स्थापित कर वह ओङ्कारोपासना में तल्लीन हो जाता है । **सः यः एवम् एतत् साम सर्वस्मिन् प्रोतम् वेद, सर्वं ह भवति, सर्वम् अस्मि उपासीत तद् व्रतम्** । यही उसका व्रत बन जाता है ।

साम गायक आकांक्षा करता है, दिव्य गुण युक्त ब्राह्मण अमर हों । **(अमृतत्वं देवेभ्यः आगायानि ।)** देश के रक्षक योद्धा आकांक्षा करते हैं कि उनकी भी रक्षा हो, सम्मान्य जनों की आशाएं-आकांक्षाएं भी पूर्ण हों । **(आशां मनुष्येभ्यः)** पशुओं, प्राणियों को तृणोदक का अभाव कभी न हो **(तृणोदकं पशुभ्यः)** सब के कल्याण की कामना करता हुआ वह यजमान के सुखी जीवन की आकांक्षा करे । वह अपने लिए शरीर के संरक्षण के लिए अन्न की कामना करे । **स्वर्गं लोकं यजमानाय, अन्नम्, आत्मने आगायानि** । इस प्रकार बिना आलस्य किए ओङ्कार का सामगान से स्तवन करता रहे ।

सामगान द्वारा ओङ्कार की उपासना का उपसंहार करते हुए ऋषि बतलाते हैं–धर्म के तीन आधार हैं–**त्रयः धर्म स्कन्धाः** । ये तीन आधार हैं–यज्ञ, अध्ययन और दान **यज्ञः अध्ययनं दानम् इति** । पहले आधार यज्ञ का अर्थ तप है । **प्रथमः तपः एव** । दूसरे आधार अध्ययन का अर्थ है आचार्य कुल में रहने वाला ब्रह्मचारी, **द्वितीयः ब्रह्मचारी आचार्यकुलवासी** । उन में धर्म के तीसरे आधार का तात्पर्य दान या इच्छाओं के क्षय या अवसादन से है । **तृतीयः अत्यन्तम् आत्मानम् आचार्यकुले अवसादनम्** । इन तीन आधारों से मनुष्य को पुण्य की प्राप्ति होती है । **सर्वे एते पुण्यलोकाः भवन्ति** । जीवन के इस मार्ग पर चलने से मानव अमर हो जाता है । **अमृतत्वम् एति** ।

प्रजापति ने धर्म के तीन स्कन्धों को तपाया **प्रजापतिः लोकान् अभ्यतपत्** । इन तीनों लोकों को तपाने से इन लोकों का सारभूत, निचोड़, सारभूत तत्त्व त्रयी विद्या प्राप्त हुई । **तेभ्यः अभितप्तेभ्यः त्रयी विद्या संप्रास्त्रवत्** । फिर उन्होंने त्रयी विद्या तपाई, उनके तपने से तीन अविनाशी अक्षर–**भूः भुवः स्वः इति एतानि अक्षराणि संप्रास्त्रवन्त** । से तीन अक्षर प्रकट हुए । इन अक्षरों को भी तपाया गया–तानि अभ्यतपत्। उनके तपने पर ओङ्कार प्रकट हुए । **ताभ्यः अभितप्तेभ्यः ओङ्कारः संप्रास्त्रवत्** । उपनिषत्कार, निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं– जैसे वृक्ष के डंठल से सब पत्ते जुड़े रहते हैं, इसी प्रकार ओङ्कार सम्पूर्ण वाङ्मय से संलग्न है ।

उपनिषत् के रचयिता ऋषियों की प्रस्तुति है– जो पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में है । यजमान अपना जीवन यज्ञमय कर वसु, रुद्र और

आदित्य ब्रह्मचारियों के समान तेजस्वी बन सकता है । पिण्ड में जिस आदित्य ब्रह्मचारी का चिन्तन किया गया है, ब्रह्माण्ड में वह आदित्य ब्रह्मचारी का चिन्तन किया गया है, ब्रह्माण्ड में वह आदित्य ब्रह्मचारी सूर्य है । सृष्टि में सूर्य तेज का प्रतीक है, परन्तु उसमें किसी प्रकार की कटुता नहीं होती, अपितु उसमें मधुरता होती है । **ओ३म् असौ वा आदित्यः देवमधुः ।** आदित्य ब्रह्मचारी को ओङ्कार की उपासना से यश, तेज, ऐश्वर्य और शक्ति स्वरूप वीर्य की उपलब्धि होती है । **(यशः तेजः इन्द्रियं वीर्यम् ।)** ये सब उपलब्धियां रसों के रस वेद के ज्ञान से होती है **ते वा एते रसानां रसाः वेदाः ।** आदित्य ब्रह्मचारी वर्ग को भी जब वेदरस की उपलब्धि होती है, तब ब्रह्मचारी गण इतने अघा जाते हैं, इतने तृप्त हो जाते हैं कि वे न खाते हैं, न पीते हैं, अमृतस्वरूप भगवान् के साक्षात्कार से ही तृप्त हो जाते हैं । **(न वै देवाः अश्नन्ति न पिबन्ति एतत् एव अमृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ।)** इसी प्रकरण में आगे कहा गया है कि वसु-ब्रह्मचारी 'अग्नि-मुख' होता है, इसी के अगले खण्ड में रुद्र-ब्रह्मचारी को भी इन्द्रमुख कहा गया है, इससे अगले खण्ड में आदित्य ब्रह्मचारी को वरुण-मुख, नवें खण्ड में आजीवन ब्रह्मचारी को सोम-मुख दसवें खण्ड में ब्रह्म सदृश साध्य ब्रह्मचारी को ब्रह्ममुख कहा गया है । उपनिषत्कार इन सभी ब्रह्मचारियों की चर्चा करते हुए कहते हैं कि वे सब अपने लक्ष्य की पूर्ति में इतने अधिक तल्लीन हो जाते हैं कि उन्हें न खाने की सुध रहती है । **(न वै देवाः अश्नन्ति।)** न पीने की सुध रहती है **(न पिबन्ति)** । इसी अमृत स्वरूप भगवान् का साक्षात्कार करते हुए उनकी तृप्ति हो जाती है **(तृप्यन्ति)** ।

उपनिषत्कार की परिभाषा में आध्यात्मिक जीवन का संकल्प करने वाला-इस संसार में वास करने वाला 'वसु' कहलाता है । इस मानवीय जीवन का चरम लक्ष्य पांचवें चरण के रूप में 'साध्य-कोटि तक पहुंचना है । 'वसु' अग्नि मुख के रूप में कहा गया है तो साध्य की संज्ञा ब्रह्ममुख कही गई है । आध्यात्मिक जीवन के प्रारम्भ में अग्नि को साधन बना कर खाना-पीना, सांसारिक जीवन व्यतीत करना पहला चरण है । परन्तु सांसारिक जीवन को भोगने में ही न लगे रहना, इस प्रारम्भिक स्थिति में इन सांसारिक वृत्तियों को भोगने के बाद उन्हें त्याग कर अग्नि से ब्रह्म की ओर प्रवृत्त होना अग्नि-मुख से ब्रह्म-मुख हो जाना आध्यात्मिक जीवन का चरम लक्ष्य है । संसार में बसना ' 'वसु' स्थिति है तो जीवन के अन्तिम लक्ष्य-साध्य जीवन में सिद्ध करना स्थिति प्राप्त करना है । 'वसु' ब्रह्मचारी को यश रूपी अमृत की प्राप्ति होती है तो साध्य ब्रह्मचारी को खाए जाने वाले अथवा सब कुछ को खा-जाने वाले विशिष्ट अन्न की (अनाज की नहीं) अमृत रूप में उपलब्धि होती

है । (**अद्यते अत्ति वा इति अन्नम् ।**) हम संसारी प्राणियों को अन्न खा रहा है । वस्तुत: हम संसार का भोग नहीं कर रहे, संसार से भोगे जा रहे हैं, यह संसार हमें दबाए हुए है जो संसार पर चढ़ जाता है, संसार उसका सेवक या सहायक बन जाता है । उपनिषद् उसी साध्य स्थिति में पहुंच इस विशिष्ट अन्न रूपी पंचम स्थिति पाने का पथ-प्रदर्शन करता है । ब्रह्म-मुख स्थिति में पहुंच कर संसार को अन्न समझ कर उसका स्वामी बनना अन्तिम पंचम साध्य स्थिति का लक्ष्य है ।

अग्नि मुख से ब्रह्म-मुख की पांचवीं स्थिति तक पहुंचने के मध्य में रुद्र, आदित्य तथा मरुत् की तीन मध्यवर्त्तिनी स्थितियां हैं । आध्यात्मिक विकास में इन तीनों की क्रमिक अवस्थाएं हैं । उष्णता और शीतलता भौतिक संसार के दो प्रधान तत्त्व हैं । मानसिक चिन्तन की दृष्टि से क्रोध, ईर्ष्या और भय उष्णता के प्रतीक हैं तो प्रेम, सहानुभूति और सहृदयता शीतलता को अभिव्यक्त करते हैं । आध्यात्मिक विकास में वसु के बाद मानव रुद्र बनता है, इन्द्रमुख उसकी संज्ञा होती है । रुद्र की स्थिति में वह संसार त्यागने लगता है, त्याग करने वाला तेज प्राप्त करता है । आध्यात्मिक विकास में रुद्र के बाद मानव आदित्य की स्थिति प्राप्त करता है । उस समय उसका तेज तीखा नहीं होता, वह ऐश्वर्य बन जाता है । वसु, रुद्र, आदित्य अवस्थाओं में ईर्ष्या, क्रोध और भय की थोड़ी बहुत उष्णता या गर्मी रहती है, इन तीनों स्थितियों के बाद आध्यात्मिक विकास की चौथी मरुत् स्थिति आती है । उसमें उष्णता का स्थान शीतलता, ईर्ष्या का स्थान प्रेम ले लेता है । इस मरुत् अवस्था में व्यक्ति सोम-मुख बन जाता है । अर्थात् शान्ति-सौम्यता की ओर उसका मुख हो जाता है, वह उस स्थिति में शक्ति रूपी अमृत का सेवन करता है । पांचवीं साध्य अवस्था में ब्रह्ममुख अवस्था में यथार्थ भोक्ता ब्रह्म के सान्निध्य में विकासोन्मुख, साधक को साध्य अवस्था में सम्पूर्ण विश्व ही भोग्य स्वरूप अन्न की अवस्था में उपलब्ध होता है ।

पिण्ड तथा ब्रह्माण्ड में भगवान् के दर्शन

उपनिषत्कार शरीर रूपी पिण्ड तथा सृष्टि रूपी ब्रह्माण्ड में ब्रह्म-ईश्वर-भगवान् के साक्षात् दर्शन की चर्चा करते हैं । शरीर रूपी भवन में जीवात्मा प्रतिष्ठित है । इस शरीर में कई छिद्र हैं । दो छिद्र या छेद देखने के लिए हैं तो दो छिद्र सुनने के लिए, एक छेद के माध्यम से बोलते हैं, इसी शरीर में चिन्तन में लगा मन का यान्त्रिक कारखाना है। शरीर रूप भवन में अवस्थित जीवात्मा आंख, कान, वाणी मन, वायु, वात संस्थान के माध्यम से बाहर के विश्व के दर्शन करता है । प्राण,

व्यान, अपान, समान तथा उदान आदि पंच प्राण उसके सहायक हैं। उनके माध्यम से वह पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊपर और नीचे सभी दिशाओं में देख रहा है। कायारूपी इसी गृह में उसे तेज, यश, ब्रह्मवर्चस्, कीर्त्ति तथा ओज की उपलब्धि हो रही है। उपनिषत्कार की सम्मति में वस्तुतः ये सब पंचेन्द्रिय और पंच प्राण ब्रह्मदेव के दर्शन के ही द्वार हैं। पिण्ड में बैठे जीवात्मा को किसी चमत्कार के कारण नहीं, प्रत्युत परमात्मा की अनुकम्पा से सब कुछ दिखाई देता है। वैसे, वह कुछ देख रहा है, वह ब्रह्मदेव के दर्शन के तुल्य है।

प्रसिद्ध लेखक किशन खन्ना ने लिखा था– ''*यद्यपि मैं भगवान् में विश्वास नहीं करता तथापि जब मैंने हिमालय की शृंखला में चमकता हुआ कैलाश का सुनहरा शिखर देखा, तब अनायास मेरा सिर झुक गया और मैंने एक दिव्य शक्ति की अनुभूति की।*''

चौदहवें खण्ड में चिन्तक शाण्डिल्य की प्रस्तुति है–यह सब ब्रह्म है, **सर्वं खलु इदं ब्रह्म**। जिज्ञासु जलान् शब्द से ब्रह्म की उपासना करे। ज+ल+अन्=इन तीन अक्षरों से जलान् शब्द बना है। ज का अर्थ है–उसी ब्रह्म से विश्व जन्मा है। ल का अर्थ–उसी ब्रह्म में सब लीन हो जाता है। अन् का अर्थ है–उसी ब्रह्म से सब अनुप्राणित होता है। जिज्ञासा होती है–ब्रह्म की उपासना कौन करे? यह पुरुष ही उसकी उपासना करे। बैठे-बैठे पुरुष उपासना न करे, प्रत्युत कर्म करते हुए जीवन में बढ़ना है। इस लोक में पुरुष जैसे कर्म करेगा, यहां से अपना पार्थिव शरीर छोड़ कर मरकर वह अपने कर्मों के अनुसार वैसा ही बनता है। **अथ खलु क्रतुमयः पुरुषः यथा क्रतुः अस्मिन् लोके पुरुषः भवति तथा इतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत।**

जीव का पार्थिव शरीर यहीं रह जाता है, परन्तु एक सूक्ष्म शरीर–कैसा शरीर–एक मनोमय–प्राणमय शरीर उसके साथ जाता है। यह शरीर प्रकाश स्वरूप होता है। वह आकाश में चला जाता है। उसके जीवन भर के संकल्प उसके साथ जाते हैं। **मनोमयः प्राणमयः भारूपः सत्यसङ्कल्पः आकाशात्मा**। उसके सब संकल्प, सब कर्म, सम्पूर्ण कामनाएं लेकर यह सूक्ष्म काया बिना बोले, किसी भी संकल्प कर्म या कामना छोड़े बिना, किसी गन्ध या रस से परिपूर्ण पदार्थ के समान, अगले जन्म के लिए प्रस्थान कर देता है।

मेरे इस ज़ीवात्मा का सूक्ष्म शरीर पार्थिव शरीर छोड़, मृत्यु के बाद सब पूर्व संस्कारों को लेकर अगले जन्म के लिए चल देता है। हृदय के अन्तःस्थल अणु प्रमाण में अवस्थित यह जीवात्मा अन्न के कण, जौ, सरसों, चावल के कण से भी कहीं अधिक सूक्ष्म है **एष मे आत्मा अन्तःहृदये अणीयान् व्रीहेर्वा यवाद् वा सर्षपाद् वा**

श्यामाकतण्डुलाद् वा । इतना सूक्ष्म होते हुए हृदय के अन्तःस्थल में उपस्थित मेरा आत्मा पृथिवी से भी महान् है । **एष मे आत्मा अन्तःहृदये ज्यायान् पृथिव्याः ज्यायान् अन्तरिक्षात् ज्यायान् दिवः ज्यायान् एभ्य लोकेभ्यः ।)**

सूक्ष्म शरीर का स्वामी—सब कर्मों, कामनाओं को सर्वकर्मा सर्वकामः करने वाला यह जीवात्मा, गन्ध रस से व्याप्त पदार्थ की तरह **(सर्वगन्धः सर्वरसः)** सब ओर से सब कुछ ग्रहण कर । **(सर्वम् इदम् अभि आवः।)** बिना बोले हुए अवाकी, एक भी संकल्प, कर्म या कामना का त्याग किए बिना अनादरः मेरे हृदय के अन्तःस्थल में विराजमान है, यहां से मुझ जीवात्मा का सूक्ष्म शरीर प्रस्थान कर उस ब्रह्म को प्राप्त कर लेगा । वह ब्रह्म है, महान् है । शाण्डिल्य का कथन है कि वह उस गन्तव्य लक्ष्य को पहुंच जाता है ।

जीवन सोम-याग के तुल्य है

उपनिषत्कार की दृष्टि में जीवन एक यज्ञ है और उसका सोम-याग से समन्वय है । सोम-याग में प्रातः मध्याह्न तथा तृतीय सन्ध्या-काल तीनों समयों का यज्ञ होता है । ब्रह्मचारी का जीवन वसु-ब्रह्मचर्य, रुद्र ब्रह्मचर्य और आदित्य ब्रह्मचर्य की तीन अवस्थाओं में परिभाषित होता है । सोम-याग में गायत्री, त्रिष्टुप् तथा जगती तीन छन्द प्रयुक्त किए जाते हैं । उल्लेखनीय है गायत्री छन्द में २४ अक्षर होते हैं, त्रिष्टुप् में ४४ और जगती छन्द में ४८ अक्षर होते हैं । विवेचकों का कथन है कि सोम-याग में प्रयुक्त गायत्री के २४ अक्षर वसु ब्रह्मचारी के २४ वर्ष के ब्रह्मचर्य की सूचना देते हैं । सोम-योग में प्रयुक्त त्रिष्टुप् छन्द के ४४ अक्षर रुद्र ब्रह्मचारी के ४४ वर्षों के ब्रह्मचर्य की सूचना देते हैं । तीसरे सोमयाग में प्रयुक्त जगती छन्द के ४८ अक्षर आदित्य ब्रह्मचारी के ४८ वर्षों के ब्रह्मचर्य की सूचना देते हैं । **पुरुषो वाव यज्ञः।** सोम-यज्ञ रूपी ब्रह्मचर्य जीवन के पहले व्रत के २४ वर्षों की कालावधि यदि कोई अवरोध आ जाए तो व्रती ब्रह्मचारी को कहना चाहिए **(तत् अन्ये वसवः अन्वायत्ताः।)** यह मेरे जीवन के प्रातः काल का पहला चरण था । **(तं चेत् एतस्मिन् वयसि किञ्चित् उपतपेत् इदं मे प्रातः सवनम् ।)** मेरा व्रत यहीं समाप्त नहीं होना चाहिए। मुझे ४४ वर्षों के रुद्र ब्रह्मचर्य के व्रत की दीक्षा लेनी होगी—यह मेरे आध्यात्मिक जीवन-व्रत का माध्यन्दिन काल होगा । **माध्यदिनं सवनं अनुसन्तनुत इति।** मेरा माध्यन्दिन व्रत समाप्त न हो, इसके लिए उसे ४८ वर्षों के आदित्य ब्रह्मचर्य व्रत का संकल्प लेना चाहिए ।

जीवन यज्ञमय है—घोर आंगिरस ने देवकी पुत्र कृष्ण को यह

निष्कर्ष दिया (**तत् एतद् घोरः आङ्गिरसः कृष्णाय देवकीपुत्राय उक्त्वा उवाच ।**)–जीवन के अन्तिम क्षणों में तीन वाक्य बोलता है। वह कामना की प्यास–जीवन चक्र से उन्मुक्त हो जाता है । (**अपिपासः एव स बभूव यः अन्तःवेलायाम् एतत् त्रयं प्रतिपद्येत ।**) ये तीन वाक्य ये हैं– १. भगवन् आप अविनाशी हैं (**अक्षितम् असि**) २. हे भगवन् आप अडिग हैं (**अच्युतम् असि**) ३. हे भगवन् आप प्राण से भी सूक्ष्म–तीक्ष्ण हैं (**प्राण–संशितम् असि**)

उल्लेखनीय है उपनिषत् के इस विवरण में देवकी पुत्र श्रीकृष्ण को आंगिरस ने जीवन में यज्ञमय होने का रहस्य बतलाया था। गीता में भी यज्ञ की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है–

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः। तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥ सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः । अनेन प्रसविष्यध्वम् एष वोऽस्त्विष्ट कामधुक् ॥

–गीता ३।९।१०

तज यज्ञ को शुभ कर्म सारे कर्म बन्धन पार्थ हैं, अतएव तज आसक्ति सब कर कर्म जो यज्ञार्थ हैं ।। विधि ने प्रजा के साथ पहले यज्ञ को रच के कहा, पूरे करे यह सब मनोरथ, वृद्धि हो इससे महा।।

यहां प्रसव शब्द का प्रयोग कर यज्ञ से नये जन्म को प्राप्त करने का सन्देश दिया है । हमारा यज्ञ उस स्थिति में सार्थक हो सकता है जब हमारा जीवन परिवर्त्तित हो जाए ।

प्राण विद्या के प्रस्तोता गाड़ीवान रैक्व ऋषि की कहानी

एक राजा थे, नाम था ज्ञानश्रुति । उनकी तीन पीढ़ियां जीवित थीं । वह प्रसिद्ध दानी थे । उन्होंने यात्रियों के ठहरने और भोजन करने के लिए स्थान–स्थान पर धर्मशालाएं बनवा दी थीं । उनका यश सर्वत्र फैल रहा था । एक बार कई साधु–सन्त राजा की स्तुति और गौरव–गाथा गा रहे थे । इतने में एक महात्मा ने कहा–"एक सामान्य राजा की तुम स्तुति कर रहे हो, उससे तो गाड़ी वाला रैक्व ऋषि ही अधिक ज्ञानी है । देखने में वह बड़ा सीधा–सादा है, परन्तु बड़े–बड़े ऋषि मुनि भी उसका लोहा मान लेते हैं ।" राजा ने अपने दूतों को आदेश दिया कि वे गाड़ीवान रैक्व ऋषि का पता लगाएं । बड़े–बड़े नगरों और अट्टालिकाओं में उस ऋषि का पता नहीं लगा । खाली हाथ लौटने पर राजा ने कहा–"सच्चे महात्मा महलों और नगरों में नहीं मिलते हैं ।" इस बार खोज करने पर एक बैलगाड़ी की छाया में अपनी काया को खुजाते हुए गाड़ीवान रैक्व ऋषि मिल गए । भारी प्रलोभन और

राज-शक्ति भी उसे राजा के यहां जाने के लिए प्रेरित नहीं कर सकी।

अन्त में राजा भारी धन-धान्य, दक्षिणा, हजार गौएं और अपनी कन्या लेकर रैक्व मुनि के चरणों में पहुंचा और बोला–''यह सब धन-सम्पत्ति मैं भेंट कर रहा हूं। यह कन्या आपकी सेवा करेगी।''

मुनि बोले–''हे शूद्र, इन गोओं को लाया है, यह धन-सम्पत्ति भी लाया है। खैर, तू अपनी पुत्री भी लाया है, उसका सम्मान रखने के लिए मुझे तुम्हारी जिज्ञासा दूर करनी होगी।'' उस गाड़ीवान मुनि ने राजा की ब्रह्म सम्बन्धी सभी जिज्ञासाओं का समाधान किया। मुनि न तो किसी राजा के दान का भिखारी था और न श्रेष्ठियों, व्यापारियों और किसी की सहायता का। उसका अपना अवलम्ब गाड़ी थी, उसी के सहारे वह अपना भरण-पोषण करता था और स्वावलम्बन के आधार पर सच्चे तत्वचिन्तन में लीन रहता था। सम्भवतः इसलिए वह अपने युग का सब से लोकप्रिय तत्त्वचिन्तक बन गया था। जैसे ब्रह्माण्ड में वह आंखों से ओझल होने पर नष्ट नहीं होता, इसी प्रकार पिण्ड में जब वाणी, आंख, श्रोत्र बोलते, देखते और सुनते नहीं, तब ये प्राण में विद्यमान रहते हैं, प्राण ही उन सब का संवरण करता है। ब्रह्माण्ड ौर पिण्ड में लय के स्थान दो हैं ब्रह्माण्ड में वायु और पिण्ड में ण। रैक्व ऋषि ने यही संवर्ग या प्राणविद्या देकर राजा की जिज्ञासा ा समाधान किया था।

सत्य में गहरी आस्था के प्रतीक

छान्दोग्य उपनिषत् के चतुर्थ प्रपाठक की एक सच्ची घटना से सत्य पर गहरी आस्था का विवरण मिलता है। एक बार एक सामान्य नारी जबाला के पुत्र सत्यकाम ने अपनी माता से जिज्ञासा की–''हे जननी, मेरी इच्छा ब्रह्मचर्य धारण कर विद्याध्ययन करने की है। कृपा कर मुझे बतलाइए, मेरा क्या गोत्र है ? माता ने पुत्र से कहा–''बेटे मैं नहीं जानती कि तू किस गोत्र का है ? मैं युवावस्था में अनेक व्यक्तियों की सेवा किया करती थी, उसी समय मैंने तुम्हें पाया, इसलिए मुझे नहीं मालूम तुम्हारा क्या गोत्र है, जबाला मेरा नाम है, तुम्हारा नाम सत्यकाम है तो गुरु-आचार्य के पूछने पर कह देना मैं सत्यकाम जाबाल हूं।

ब्रह्मचारी सत्यकाम गौतम गोत्र में जन्मे हारिद्रुमत् मुनि की सेवा में पहुंचा। बोला–''आचार्यवर, मैं नहीं जानता मेरा क्या गोत्र है। मैंने मातुश्री से पूछा था। उन्होंने मुझे बतलाया, वह युवावस्था में अनेक व्यक्तियों की सेवा किया करती थीं, उसी समय मेरा जन्म हुआ, इसलिए उन्हें नहीं मालूम कि मेरा क्या गोत्र है। माता ने कहा– 'उनका नाम

जबाला है, सत्यकाम मेरा नाम है, हे आचार्यप्रवर, इस प्रकार मैं सत्यकाम जाबाल हुआ ।'

मुनि हारिद्रुमत् ने कहा–"जो सच्चा ब्राह्मण न हो, उसे छोड़कर ऐसी सत्य बात दूसरा कह नहीं सकता । हे सौम्य शिष्य, समिधा ले आ, मैं तुम्हारा उपनयन करूंगा, तुझे यज्ञोपवीत की दीक्षा दूंगा, तू सत्य से डिगा नहीं । तू सच्चा विद्यार्थी है । "मुनि ने सत्यकाम का उपनयन संस्कार कर उसे ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी ।

सत्यकाम ने अनेक वर्षों तक आचार्य के सान्निध्य में विद्याध्ययन किया, यह काल इतना था कि आचार्य क़ी जिन गौओं की वह सेवा करता था, वे ४०० से हजार हो गईं । सत्यकाम ने वन-उपवनों में विचरते हुए ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया और स्वयम् आचार्य बन गया । वनों उपवनों में रहने वाले सत्यकाम को अग्नि, वायु और सूर्य ने शिक्षा दी थी और सत्यकाम के शिष्य उपकोसल को तीन प्रकार की अग्नियों ने अग्नि विद्या या आत्मविद्या की शिक्षा दी । मानव-जीवन शुष्क समिधा के समान है, जब तक जीवन में संघर्ष नहीं होता, वह शुष्क रह जाता है, संघर्ष से जीवन की ज्योति प्रदीप्त हो उठती है। प्रकृति की अग्नि से यह ज्ञान प्राप्त कर उपकोसल भी अग्नि या आत्मविद्या से दीक्षित हो गया ।

जीवन के बाद का जीवन

डॉ० रित्शे को चिकित्सकों ने मृत घोषित कर दिया था, परन्तु कुछ समय बाद वह जी उठे । उन्होंने प्राण संचार पुनः होने पर मृत्यु का वर्णन करते हुए लिखा । जब मैं मरा, तब मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मैं १५ वाट प्रकाश के समान किसी दैवी सत्ता की ओर आकर्षित हो रहा हूं । यह प्रकाश धीरे-धीरे तेज हो उठा । अचानक वह इतना तीव्र होता गया जितना वैल्डिग करने वाले की तीव्र ज्योति उससे भी तेज हो उठा । पाश्चात्य लेखक रेमोण्ड ए० मोडी ने जीवन के बाद का जीवन विषयक अपनी पुस्तक में यह विवरण दिया था ।

दूसरी उपनिषदों की तरह छान्दोग्य उपनिषद् में प्राण तथा इन्द्रियों के विवाद की कहानी दी गई है । एक बार प्राण तथा इन्द्रियों में विवाद हुआ कि उनमें श्रेष्ठ कौन है ? उन्होंने प्राणिजगत् के पिता प्रजापति से पूछा– हम सब में कौन श्रेष्ठ है ? प्रजापति का उत्तर था जिसके निकलने पर शरीर घृणित हो जाए, वही श्रेष्ठ है । शरीर से वाणी, आंख, कान, मन सब बाहर गए परन्तु जैसे अन्धे, बहरे और मन के बिना भी बालक जीते हैं, वैसे शरीर जीवित रहा, परन्तु जब प्राण निकलने को हुआ तो इन्द्रियों की दुर्दशा हो गई, फलतः इन्द्रियों ने प्राण की श्रेष्ठता स्वीकार की ।

उपनिषत्कार ने पिण्ड तथा ब्रह्माण्ड को मिलाकर पांच यज्ञों की कल्पना की है । यज्ञों की शृंखला में द्यु, पर्जन्य, पृथिवी, पुरुष तथा स्त्री को मिला कर पांच यज्ञों की कल्पना की गई है । इन में तीन यज्ञ ब्रह्माण्ड में हो रहे हैं तो शेष दो यज्ञ पिण्ड में हो रहे हैं। पहली आहुति जल की थी जो सूर्य में तपकर, बादल रूप में बदला। तीसरे बादल से बरस कर पृथिवी में गया,,चौथे पृथिवी में जाकर अन्न में गया और पांचवें अन्न से जाकर वीर्य रूप में बदला । सृष्टि के ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड में हो रहे सार्वत्रिक यज्ञ में सन्तानोत्पत्ति भी एक विशिष्ट प्रक्रिया है ।

वही सत् है वही आत्मा है

ऋषि आरुणि का पुत्र श्वेतकेतु गुरुकुल में विद्याध्ययन कर जब घर वापस आया तब पिता को अनुभूति हुई कि पुत्र में कुछ घमण्ड आ गया है । पिता ने कहा-- ''बेटे, तुम समझते हो कि तुम सब जान गए हो, पर यह तो बताओ कि क्या तुम ने वह विद्या पढ़ी है,,जिसे पढ़कर सब कुछ पा लिया जाता है ? श्वेतकेतु ने कहा--वह तो मैं नहीं जानता, आप मुझे बतलाइए ।''

ऋषि आरुणि ने कहा--सौम्य, तुम ने मिट्टी देखी है । इस मिट्टी के लोंदे से घड़ा, मटका, सुराही आदि वर्तन बनते हैं । इसी मिट्टी से हाथी, घोड़ा, तोता, कबूतर, राजा, रानी बिल्ली आदि के खिलौने बन सकते हैं । सब के नाम अलग, पर सब के चेहरे अलग । ये मिट्टी के पात्र और पदार्थ पानी में डालते ही गल जाते हैं । इसी प्रकार सोने, चांदी, लोहे, पीतल आदि धातुओं से लोटा, गिलास, कलश, थाली, बाजूबन्द, गले के पदार्थ आदि बन सकते हैं । बर्तनों के नाम चाहे कुछ हों, उनके नाम पृथक् हों, पर उनमें आन्तरिक सत्य मिट्टी का है, इसी तरह धातुओं से बने पदार्थों में धातु ही सत्य है । इसी प्रकार सारी प्रजा सत् से ही बनी है । यह सम्पूर्ण अणिमा ही जगत् की आत्मा है । यह सत्य है । सारे खनिज पदार्थ, सारी वनस्पतियां, सारे पशु-पक्षी, सब मानव उसी तत्त्व के बने हैं ।

बात कुछ गहरी थी, श्वेतकेतु ने कहा--मुझे ठीक से समझाइए। आरुणि ने तरह-तरह से समझाया । ऋषि ने कहा-''सामने के वट वृक्ष का एक फल ले आ ।'' पिता ने फल तोड़ने के लिए कहा । तोड़ने पर पिता ने पूछा-''क्या दीखा ।'' ''अणु जैसे छोटे-छोटे दाने हैं ।'' पिता ने कहा-''इन दानों को तोड़ ।'' तोड़ने पर पिता ने पूछा- ''कुछ दिखाई दिया ?'' ''इसमें तो कुछ दिखाई नहीं दिया ।'' पिता ने समझाया-''जो सूक्ष्म वस्तु दिखाई नहीं देती, उस अणिमा का ही यह विराट् वट वृक्ष है । वही सत् है ।''

पुत्र ने जिज्ञासा प्रकट की–"वह कैसे सर्वत्र व्याप्त है ?" पिता ने पुत्र को नमक की एक डली लाकर पानी में डालने के लिए कहा । अगले दिन सुबह पिता ने पानी के बर्तन से वह नमक की डली निकालने के लिए कहा । श्वेतकेतु ने बर्तन में हाथ डाला । वह पहले दिन डाली डली खोजी, पर वह नहीं मिली । श्वेतकेतु बोला–"वह नमक की डली तो नहीं मिल रही ।" पिता ने कहा–इस जल पात्र का पानी अलग-अलग स्थानों से निकाल कर चख कर देखो। पुत्र बोला–'पानी सब जगह एक जैसा नमकीन है।'

ऋषि आरुणि ने कहा–"जिस तरह नमक की डली दिखाई नहीं देती, परन्तु वह पानी में सब जगह व्याप्त है, उसी तरह वह सत् भी सब जगह व्याप्त है । वही आत्मा है, वही तुम हो ।

मानव का लक्ष्य

एक बार सदा कुमार रहने वाले सनत्कुमार ऋषि के पास नारद मुनि पहुंचे और उनसे अनुरोध किया–मुझे ज्ञान दीजिए । ऋषि ने कहा जो कुछ तुम जानते हो, वह बतलाओ, मैं उससे आगे की शिक्षा दूंगा । मुनि नारद ने ऋषि सनत्कुमार से कहा–मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास-पुराण, पित्र्यराशि, दैव विद्या, विधिशास्त्र, तर्क शास्त्र, अर्थशास्त्र, देव विद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्र विद्या, नक्षत्र विद्या, विष विद्या, ललित कला, ये सब विद्याएं पढ़ी हैं इन्हें पढ़कर मन्त्रविद् हो गया हूं, परन्तु आत्मविद् नहीं हुआ । मैंने विद्वानों से सुना है जो आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह शोक-सागर से तर जाता है । कृपा कर के मुझे शोक-सागर से पार कराइए ।

ऋषि सनत्कुमार ने कहा–वेदादि अनेक शास्त्रों का जो ज्ञान प्राप्त किया है, वह नाम-ब्रह्म का नाम मात्र का ज्ञान है, तुम ने शास्त्र पढ़े परन्तु गुने नहीं, आत्मज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई । गुरु सनत्कुमार ने कहा–नाम ब्रह्म के आगे वाणी ब्रह्म है, उसके आगे मन ब्रह्म है, मन ब्रह्म के बाद संकल्प ब्रह्म है, संकल्प के आगे चित्त ब्रह्म है, चित्त ब्रह्म से अलग सोपान ध्यान ब्रह्म का है, ध्यान ब्रह्म के आगे विज्ञान ब्रह्म अथवा सच्चा ज्ञान है । इस विज्ञान ब्रह्म के आगे बल-शक्ति ब्रह्म है। बल से आगे अन्न-ब्रह्म है । अन्न से आगे जल ब्रह्म है और जल से अगला सोपान तेज ब्रह्म का है । अन्न, जल, तेज, (पृथिवी, जल, अग्नि से) आगे आकाश-ब्रह्म है । ये सब उत्तरोत्तर अधिक बलशाली हैं।

गुरु ने कहा–आकाश ब्रह्म से स्मृति ब्रह्म बलशाली है. आशा ब्रह्म स्मृति से आगे है, प्राण ब्रह्म आशा-ब्रह्म से भी आगे है जिस प्रकार रथ के चक्र में सब अरे नाभि जुड़े होते हैं इसी प्रकार नाम से लेकर

प्राण तक जीवन के सब अरे प्राण रूपी चक्र में समर्पित हैं ।

नारद ने कहा—मैं सत्यज्ञान के लिए आपके पास आया हूं । मुझे सत्य-ज्ञान दीजिए ।

गुरु ने कहा—सत्य के ज्ञान के लिए मनन करने की शक्ति, श्रद्धा निष्ठा, कर्मण्यता की आवश्यकता है । नारद ने पूछा—सुख के सम्बन्ध में कुछ बतलाइए ? मुनि ने कहा—जो अल्प है, सीमा वाला है, उसमें सुख नहीं है, निस्सीम का ज्ञान, निस्सीम का सम्पर्क ही सुख है । गुरु ने कहा—परम शुद्ध अवस्था में मनुष्य अन्य वस्तु को न देखता है, न सुनता है, न जानता है, वह निस्सीम निरतिशय अवस्था ही भूमा है । भूमा ही अमृत है । नारद के यह पूछने पर यह भूमा किस पर टिकी हुई है ? गुरु सनत्कुमार ने कहा—भूमा किसी दूसरे के सहारे पर नहीं, भूमा की महिमा अपने आप में हैं, इसे दूसरा सहारा नहीं ।

उपनिषत्कार का सन्देश है—हर व्यक्ति सुषुप्त अवस्था में हृदयाकाश में स्थित भूमा तक पहुंच जाता है । आत्मा हृदय में है । **(स वा एष आत्मा हृदि।)** जो व्यक्ति इस रहस्य को जान लेता है वह हृदयाकाश में स्थित भूमा रूप ब्रह्म तक पहुंच जाता है । जो इस रहस्य को जान लेता है, वह मानो स्वर्गलोक को पा लेता है ।

आत्मा का निवास हृदय प्रदेश में है, उस शोक, भूख-प्यास से मुक्त, सत्य संकल्प और सत्यकाम आत्मा को जानने वाला सब लोकों को पा लेता है, वह व्यक्ति सब लोकों को प्राप्त कर लेता है । और सब कामनाएं प्राप्त कर लेता है । जो उस आत्मा को जान लेता है । प्रजापति की यह घोषणा देवों तथा असुरों ने सुनी । दोनों प्रजापति के आश्रम में ३२ वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत से रहे । प्रजापति ने पूछा—किस इच्छा से आप विराज रहे हैं? असुरों देवताओं ने कहा—आप ने कहा—जो आत्मा को जान लेता है, वह सब कुछ पा लेता है ।

प्रजापति ने देवों-असुरों को कहा—आंख से जो पुरुष दीखता है, यह आत्मा है, यह अमृत है, अभय है, यही ब्रह्म है । जाग्रत अवस्था में जिसे तुम देख रहे हो वह आत्मा है । यह सुन कर दोनों चले गंए, दोनों ही आत्मा को उपलब्ध किए बिना चले गए । फिर इन्द्र प्रजापति के पास पहुंचा । मुझे शरीर को आत्मा समझने का सिद्धान्त समझ में नहीं आया ।

प्रजापति ने इन्द्र को भी ब्रह्मचर्यपूर्वक ३२ वर्ष गुरु निवास में रहने के लिए कहा । यह अवधि समाप्त होने पर प्रजापति ने इन्द्र को बतलाया—जो यह स्वप्नावस्था में महिमाशाली होकर विचरण करता है, वही आत्मा है, वही अभय है, वही ब्रह्म है । इन्द्र ने लौट कर

कहा–स्वप्नावस्था में आत्मा का जो स्वरूप दीखता है, उसे आत्मा मानने का सिद्धान्त ठीक नहीं जान पड़ता। प्रजापति ने कहा–तुम्हारी शंका ठीक है, ब्रह्मचर्य की अवधि पूर्ण होने पर इन्द्र को प्रजापति ने कहा–स्वप्नावस्था के बाद सुषुप्तावस्था में समस्त होने वाला स्वरूप ही आत्मा है, वही अमृत है, वही अभय और ब्रह्म है। इन्द्र ने फिर शंका प्रकट की सुषुप्तावस्था में वह अपने को नहीं जानता। सुषुप्तावस्था में आत्मा को अपना ज्ञान नहीं होता, न संसार का ज्ञान होता है। प्रजापति ने कहा–तुम्हारी शंका ठीक है।

ब्रह्मचर्य आश्रम में १०१ वर्ष बीत जाने पर इन्द्र को प्रजापति ने समझाया–शरीर से पृथक्ता की अनुभूति ही आत्मज्ञान है। यह शरीर मरणधर्मा है। **(मर्त्यम् वै इदम् शरीरम्।)** इसे मृत्यु ग्रस्त कर लेती है। **(आत्तम् मृत्युना)** यह शरीर अशरीरी अमृत आत्मा का अधिष्ठान है। शरीर से आत्मा का सम्बन्ध होने पर उसे प्रिय अप्रिय से निवृत्ति नहीं होती। वायु, बादल, विद्युत्, गर्जन ये सब अशरीर हैं, ये आकाश से उठ कर परम ज्योति सूर्य के सम्पर्क में सशरीर हो जाते हैं, इसी प्रकार यह प्रसाद गुण सम्पन्न आत्मा शरीर से उठ कर ज्योति ब्रह्म को प्राप्त कर अपने शुद्ध रूप को प्राप्त कर लेता है। जो इस प्रकार अपने अशरीरी रूप को जान लेता है, वह उत्तम पुरुष कहलाता है। **(एवम् एव एषः संप्रसादः अस्मात् शरीरात् समुत्थाय परं ज्योतिः उपसम्पद्य स्वेन रूपेण अभिनिष्पद्यते स उत्तमः पुरुषः।)**

आत्मा के यथार्थ स्वरूप को समझने के लिए इन्द्र या साधक को समिधा लेकर ब्रह्मचर्य का व्रत लेना चाहिए। आत्मज्ञान का अर्थ केवल आत्मा के अस्तित्व को जान लेना ही नहीं है, प्रत्युत शरीर अलग है, प्रकृति पृथक् है, ब्रह्म पृथक्। इस विचार को क्रियात्मक जीवन में उतारने में एक लम्बे समय की अवधि साध क को व्यतीत करनी पड़ती है।

–अभ्युदय, बी–२२
गुलमोहर पार्क,
नई दिल्ली–११००४९

परमात्मा प्रकरण

–श्री कृष्णदत्त शास्त्री
विद्या वाचस्पति
सी–५ बी/४ए जनकपुरी,
दिल्ली–५८

संसार में वेद विद्या के प्रसार, प्रचार की पूर्ण जानकारी न होने के कारण अनेक मतावलम्बी व सम्प्रदायवादियों ने अपनी स्वार्थ–पूर्ति के लिए अधिकतर जन समुदाय को भ्रमित किया हुआ है और कर रहे हैं । उत्तम पुरुषों, महात्माओं, सन्त–ज्ञानियों व अन्य विचार के लोगों को ही परमात्मा मान कर अनेक प्रकार के मन्दिर बनवाने का प्रचलन चल रहा है, अन्य ढंग से भी मूर्ति आदि बनवाकर मन्दिरों में मूर्तियों की प्राण–प्रतिष्ठा कराते हैं । यदि प्राण–प्रतिष्ठा इन्हीं लोगों के हाथों में होती, तो किसी की भी मृत्यु नहीं होने देते । और भी कितने ही प्रकार का अन्धविश्वास जमा करके पाखण्ड को बढ़ावा दिया जा रहा है । इस अन्धविश्वास और पाखण्ड को दूर करने हेतु मैंने अपनी पुस्तक 'वेद पुष्प–संग्रह' के परमात्मा प्रकरण विषय में वेदों से सप्रमाण लिखा है। परमात्मा एक है, परमात्मा की मूर्ति नहीं है आदि । इसी सन्दर्भ में 'वेद पुष्प–संग्रह' के परमात्मा प्रकरण से उद्धृत प्रथम अध्याय का कुछ भाग प्रस्तुत है ।

प्रथम अध्याय

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥

–यजु० ३०।३॥

अर्थ–हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्ता समग्र ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर! आप कृपा कर के हमारे दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिए । जो कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं, वह सब हम को प्राप्त कराइये ।

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥

–यजु० ३२।१४॥

अर्थ–हे ज्ञान स्वरूप ज्ञान के प्रकाशक परमेश्वर जिस बुद्धि को अनेकों विद्वान् और ज्ञानी लोग प्राप्त कर के उपासना व सेवन करते हैं, उस बुद्धि से मुझ को आज वर्तमान समय में ही प्रशंसित बुद्धि वाला कीजिये, यह सत्य वाणी से प्रार्थना करता हूं ।

परमात्मा सब का राजा है, स्वामी है ।

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् ।
त्वं राजा जनानाम् ॥ —ऋ०८।६४।३॥

अर्थ—हे ईश्वर तू शुभ कर्मों में लगे हुए मनुष्यों का स्वामी है और कुकर्मियों और अकर्मियों का भी तू स्वामी है। किन्तु सब जनों का तू ही राजा है। अतः सभी मनुष्यों को परमात्मा की ही प्रार्थना करनी चाहिए।

अग्निं सुदीतये छर्दिः ॥ —ऋ० ८।७१।१४ ऋचा का वाक्य है।

अर्थ—परमेश्वर प्राणीमात्र को भोजन निवास दे रहा है। हमें उसी, परमात्मा की प्रार्थना करनी चाहिए।

क्योंकि **हरिः पवित्रे अर्षति ॥** ऋ० ९।३।९॥ मन्त्र का वाक्य है।

अर्थ—दुःखों को हरने वाला परमात्मा पवित्र हृदय में प्रकट होता है, इसलिए पवित्र विचार ही रखने चाहिए।

स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥ ऋ० ८।४३।११॥ ऋचा का वाक्य है।

अर्थ—सर्वव्यापी परमेश्वर की विविध स्तोत्रों और मन से उपासना करें।

सखाय क्रतुम् इच्छत ॥ —ऋ० ८।७०।१३ ऋचा का वाक्य है।

अर्थ—हे मित्रो ! शुभ कर्म की इच्छा करो।

इन्द्रस्य हार्द्याविशन् ॥ —ऋ० ९।६०।३ ऋचा का वाक्य है।

अर्थ—परमात्मा सच्चाई के धाम में निवास करते हैं।

इन्द्रस्य हार्दि कलशेषु सीदति ॥ —ऋ० ९।८४।४॥

अर्थ—परमात्मा सदाचारी, ज्ञानी, योगी के हृदय प्रकाश में स्थिर होता है।

स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव ।
सचेमहि तव दस्म प्रकेतैरुरुष्या ण उरुभिर्देव शंसैः ॥
—ऋ० १०।७।१॥

अर्थ—हे प्रकाशस्वरूप भगवन् आपकी कृपा से द्यौलोक से और पृथिवी लोक से हमारे लिए सुख हो। हे देव यज्ञादि उत्तम कर्मों को करने के लिए सम्पूर्ण उपयोगी साधन हम को दीजिए। आत्मा से साक्षात्कार योग्य प्रभु तुम्हारे ज्ञान से हम युक्त होवें। देव अपने अनेक रक्षक गुणों द्वारा हमारी रक्षा कीजिए।

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यो देवानां नामधा एक एव सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥
—ऋ० १०।८२।३॥

अर्थ—जो परमात्मा हमारा पालक है, पिता है, हमारा उत्पन्न करने वाला है, जो सब जगत् का रचयिता है। सम्पूर्ण स्थानों और लोकों

को तथा पदार्थों को जानता है, और जो समस्त पदार्थों का नाम रखने वाला है, अद्वितीय है, वही सब समस्याओं का एकमात्र साधन है।

इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत्पर्वतानाम्।
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणामिन्द्रः क्षेमे योग हव्य इन्द्र॥

—ऋ० १०।८९।१०

अर्थ—सर्वशक्तिमान् प्रभु द्यौलोक, पृथ्वी लोक, जलों, अन्तरिक्ष मेघों बढ़ने वालों और मेधावी लोगों में उसी का शासन है, वही शासन करता है। वही परमेश्वर हमारे योग और क्षेम के वहन करने में रक्षक है।

प्राक्तुभ्य इन्द्रः प्र वृधो अहभ्यः प्रान्तरिक्षात् प्र समुद्रस्य धासेः।
प्र वातस्य प्रथसः प्र ज्मो अन्तात् प्र सिन्धुभ्यो रिरिचे प्र क्षितिभ्यः॥

—ऋ० १०।८९।११॥

अर्थ—परमैश्वर्यवान् प्रभु रात्रियों, दिवसों, अन्तरिक्ष, समुद्र को घेरने वाले स्थानों, वायु के फैलाव, और पृथिवी के अन्त भागों से भी बड़ा है। वह नदियों से भी अधिक बड़ा है और क्षितिजों व मनुष्यों से भी बड़ा है, वह व्यापक परमेश्वर इन सब से अधिक है।

ईश्वर, जीव को कर्म का फल देने वाला है।

कोऽदात्कस्माऽअदात्कामोऽदात्कामायादात्।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत् ते॥

—यजु० ७।४८॥

अर्थ—कौन कर्म फल को देता, और किसके लिए देता है?

उत्तर—जिसकी कामना सब करते हैं वह परमेश्वर देता है, और कामना करने वाले जीव को देता है।

कामः दाता। अर्थ—जिसकी कामना योगीजन करते हैं, वह परमेश्वर देने वाला है।

कामः प्रतिग्रहीता। कामना करने वाला जीव, लेने वाला है।

कामैतत् ते। कामना करने वाले जीव, तेरे लिए मैंने वेदों के द्वारा यह समस्त आज्ञा की है, ऐसा तू निश्चय जान।

परमात्मा एक ही है

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधाऽएकऽएव तम् सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या॥

—यजु० १७।२७॥

हे मनुष्यो! जो हमारा पालने वाला है और जो उत्पन्न करने वाला है, और निर्माण करने वाला है, जो सब लोक लोकान्तरों के नाम व स्थान जानता है, जो पृथिवी आदि पदार्थ देव हैं का नाम रखने

वाला है–एक ही परमात्मा है । उस परमात्मा के बारे में बातचीत करो, सत्संग करो, जिसको सब लोग प्राप्त होते हैं ।

इन्द्रमभि प्र गायत । —साम० १५५॥

अर्थ–परमेश्वर को गाओ अर्थात् परमेश्वर का कीर्तन करो ।

परमात्मा कहां व्याप्त है, अर्थात् परमात्मा का कहां निवास है ।

पंचस्वन्तःपुरुष ऽ आविवेश तान्यन्तः पुरुषेऽअर्पितानि ।
एतत् त्वात्र प्रतिमन्वानोऽअस्मि न मायया भवस्युत्तरो मत् ॥

—यजु० २३।५२॥

अर्थ–पांच भूतों व उनकी सूक्ष्म तन्मात्राओं में भीतर पूर्ण परमात्मा अपनी व्याप्ति से अच्छी प्रकार व्याप्त हो रहा है । वे पंचभूत तन्मात्रा पूर्ण परमात्मा पुरुष के भीतर स्थापित हैं । यह इस जगत् में आपको प्रत्यक्ष जानता हुआ, समाधान करता हूं, । जो उत्तम बुद्धि से युक्त तू होता है, तो मुझ से उत्तम समाधान-कर्ता कोई भी नहीं है यह तू जान ।

परमात्मा का घर में आह्वान

इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुपह्वये । अस्माकमस्तु केवलः ॥

—ऋ० १।१३।१०॥

अर्थ–मैं जिस सब वस्तुओं के आगे होने तथा सब दुःखों को दूर करने वाले परमात्मा को इस घर में अच्छी प्रकार आह्वान करता हूं। हम लोगों को स्तुति करने योग्य हो ।

प्रकृति विषय में, परमात्मा की उपासना

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ —यजु० २०।२१॥

अर्थ–हे मनुष्यो ! हम लोग अन्धकार से परे प्रकाश स्वरूप सूर्य लोक व चराचर के आत्मा परमेश्वर को सब ओर से देखते हुए दिव्य गुण वाले देवों में उत्तम सुख देने वाले सुख स्वरूप सब से सूक्ष्म उत्कृष्ट स्वप्रकाश स्वरूप परमात्मा को उत्तमता से प्राप्त हों ।

ईश्वर कैसा है, परमात्मा उत्पन्न न होकर जगत् को उत्पन्न करता है ।

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽअन्तरजायमानो बहुधा वि जायते ।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥

—यजु० ३१।१९॥

अर्थ–हे मनुष्यो जो अपने स्वरूप से नहीं उत्पन्न होने वाला प्रजा का रक्षक जगदीश्वर सब जीवात्मा के भीतर हृदय में विचरता है और बहुत प्रकार से प्रकट होता है, उस परमेश्वर के स्वरूप को सब ओर से देखते हैं, उसमें ही निश्चय सब लोक-लोकान्तर स्थित हैं।

परमात्मा के समान कोई शुद्ध नहीं है

न त्वावाँ२ऽअन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥

–यजु॰ २७।३६॥

अर्थ–हे उत्तम ऐश्वर्य से युक्त सब दु:खों के नाशक परमेश्वर! वेग वाले उत्तम वाणी बोलते हुए शीघ्रता चाहते हुए हम लोग आपकी स्तुति करते हैं। क्योंकि जिस कारण कोई अन्य पदार्थ आपके समान शुद्ध न कोई पृथिवी पर प्रसिद्ध, न कोई उत्पन्न हुआ और न होगा।

परमात्मा की मूर्ति नहीं है

न तस्य प्रतिमा ऽ अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।
हिरण्यगर्भऽइत्येष मा मा हिँसीदित्येष यस्मान्न जात ऽ इत्येषः ॥

–यजु॰ ३२।३॥

अर्थ–हे मनुष्यो जिस परमेश्वर का प्रसिद्ध महान् यश है उस परमात्मा की मूर्ति, तस्वीर नहीं है। जो सूर्य, बिजली आदि पदार्थों का आधार है। इस प्रकार अन्तर्यामी होने से मुझ को अपने से विमुख मत करे और ताड़ना मत दे जो इस प्रकार कारण से उत्पन्न नहीं हुआ।

फिर परमेश्वर कैसा है ?

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽ अर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

–यजु॰ ४०।८॥

अर्थ–सारे विश्व का आत्मा सब भूत प्राणियों का मूल आधार वह परमेश्वर है। सब ओर से सर्वत्र विद्यमान है, वह दीप्तिमान् है, काया रहित है, व्रण छिद्र रहित है और नस-नाड़ियों से रहित है अर्थात् परम सूक्ष्म है। वह परम शुद्ध है, सदा पवित्र और पापों से बंधा नहीं है पाप रहित है, सर्वथा निर्दोष है। परमात्मा सूक्ष्म स्थूल और कारण तीनों शरीरों से रहित है। वह सर्वज्ञ मनों को जानने वाला सर्वत्र प्रकट और स्वतन्त्र सत्ता है। उस स्वयम्भू परमात्मा सनातन अनादि स्वरूप अपने स्वरूप से उत्पत्ति और विनाश रहित प्रजाओं के लिए यथार्थ भाव से ठीक-ठीक निरन्तर रहने वाले वर्षों के लिए

वायु आदि पदार्थों को रचा । परमेश्वर ने सभी पदार्थ लोक-लोकान्तर जैसे चाहिए वैसे रचे ।

स उ गर्भे अन्तः । —यजु० ३२।४।। ऋचा का वाक्य है ।

अर्थ—वह परमात्मा सब प्राणियों के हृदय में स्थिर है ।

इति एषः आसीत् । —यजु० ३२।३।।

अर्थ—इस प्रकार वह परमात्मा उपासना के योग्य है ।

परमात्मा से बुद्धि की याचना

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ।।

—यजु० ३२।४।।

अर्थ—हे ईश्वर अनेकों विद्वान् और ज्ञानी लोग जिस बुद्धि को प्राप्त होकर सेवन करते हैं, उस बुद्धि व धन से मुझ को आज बुद्धि व धन वाला कीजिए । यह सत्य वाणी से प्रार्थना करता हूं ।

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः ।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ।।

—यजु० ३२।१५।।

अर्थ—हे मनुष्यो! अति श्रेष्ठ परमेश्वर धर्मयुक्त क्रिया वाले मेरे लिए शुद्ध बुद्धि व धन को देवे और विद्या से प्रकाशित प्रजा का रक्षक, परमेश्वर बुद्धि को देवे और बलदाता बलवान् बुद्धि को देवे और सब संसार का धारण करने वाला परमेश्वर मेरे लिए बुद्धि व धन को दे ।

परमात्मा को ही मित्र करें

इन्द्रो युवा सखा । वेद वाक्य ।। —यजु० ३३।२४।।

अर्थ—जवान परमात्मा ही मित्र है ।

परमात्मा उत्पन्न नहीं होता

न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ।

—यजु० ३३।७९।।

अर्थ—परमात्मा उत्पन्न नहीं होता, न हुआ, न होगा ।

मनुष्य क्या करे ?

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ।।

—यजु० ३४।३४।।

अर्थ—हे मनुष्यो ! प्रातःकाल प्रकाश स्वरूप परमात्मा को प्रातः

समय उत्तम ऐश्वर्य को प्रभात समय प्राण, उदान के समान प्रिय और सर्वशक्तिमान् प्रातःकाल सूर्य चन्द्र को जिसने उत्पन्न किया है, उस परमात्मा की स्तुति करते हैं, और प्रातःकाल सेवन करने योग्य ऐश्वर्ययुक्त पुष्टिकारक ब्रह्माण्ड के पालन करने वाले प्रातः अन्तर्यामी प्रेरक और पापियों को रुलाने वाले, सर्वरोग नाशक जगदीश्वर की प्रार्थना करो।

—यह मन्त्र ऋ० ७।४१।१ में भी है।

परमेश्वर एक ही है

यदेको विश्वं परिभूम जायसे ॥ —अथर्व०

अर्थ—जो एक ही तू सब संसार और सब ओर से प्रकट होता है।

परमात्मा संसार के बीच प्रकाशमान है।

इन्द्रो विश्वस्य राजति। शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥

—यजु० ३६।८॥

अर्थ—हे जगदीश्वर! जो आप बिजुली के समान संसार के बीच प्रकाशमान हैं। आपकी कृपा से हमारे पुत्रादिकों के लिए और गौ आदि पशुओं के लिए दो पैर वाले मनुष्य आदि के लिए सुख हो।

परमात्मा हमारा पालक और रक्षक पिता है

पिता नोऽसि पिता नो बोधि नमस्तेऽअस्तु ॥ —यजु० ३७।२०॥

अर्थ—हे जगदीश्वर! आप हमारे पिता हैं। आप हम को बोध कराइये। आपको नमस्ते हो।

गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम्।
सं देवो देवेन सवित्रा गत सꣳ सूर्येण रोचते ॥

—यजु० ३७।१४॥

अर्थ—हे मनुष्यो पृथिवी आदि तेतीस देवों के बीच व्यापक बुद्धिमान् मनुष्यों के पिता उत्पन्न हुए पदार्थों का रक्षक स्वामी स्वयं प्रकाश स्वरूप परमात्मा उत्पत्ति के हेतु प्रकाशक विद्वानों के साथ सम्यक् प्रकाशित होता है। उस पूर्ण परमात्मा की सदैव उपासना किया करो।

ऐश्वर्य के लिए प्रार्थना

भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥

—अथर्व० ३।१६।५, यजु० ३४।३८, ऋ० ७।४१।५

अर्थ—हे मनुष्यो, विद्वान् लोगो सकल ऐश्वर्य सम्पन्न जगदीश्वर

उस ऐश्वर्य रूप ऐश्वर्य वाले सेवा के योग्य परमेश्वर के साथ हम सब तरह से शोभायमान होवें । उस परमेश्वर को सब सज्जन निश्चय ही पुकारते हैं और गुणगान करते हैं । हे परमेश्वर ! सकल ऐश्वर्य के दाता, वह आप इस संसार में हमारे अग्रगामी आदर्श शुभ कर्मों में प्रेरित करने वाले हो, और परमात्मा ही हमारा ऐश्वर्य हो ।

परमात्मा सब जगत् व जीवों के भीतर भी है, और बाहर भी है ।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥

—यजु॰ ४०।५॥

अर्थ—वह ब्रह्म मूर्खों की दृष्टि में चलायमान होता व चलायमान नहीं होता और चलाया जाता है । अधर्मियों से दूर है, ज्ञानी, योगी, भक्त के समीप है । वह इस जगत् व जीवों के भीतर और इस जगत् के प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष बाहर भी वर्तमान है ।

परमात्मा प्यारे मित्र के समान उपदेश करते हैं

यज्ञा यज्ञा वो अग्नये गिरा गिरा च दक्षसे ।
प्र प्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रन्न शंसिषम् ॥

—साम॰ ३५॥

अर्थ—हे मनुष्यो! हम तुम्हारे यज्ञ में और ऋचा ऋचा से ज्ञान स्वरूप महान् अमर परमात्मा हम को प्यारे मित्र के समान उपदेश करते हैं ।

अन्त में ईश्वर उपदेश करते हैं

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ॥ ओ३म् खं ब्रह्म ॥

—यजु॰ ४०।१७॥

अर्थ—हे मनुष्यो ! जिस ज्योति स्वरूप मुझ से अविनाशी यथार्थ कारण के ढके हुए मुख के समान प्रकाश किया जाता है, जो वह सूर्य मण्डल में पूर्ण परमात्मा है, वह परोक्ष रूप में आकाश के समान व्यापक, सब से गुण कर्म और स्वरूप करके अधिक हूं । सब का रक्षक जो मैं हूँ उसका ओ३म् नाम जानो ।

परमात्मा से श्रेष्ठ बड़ा कोई नहीं है

न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ।
न क्येवं यथा त्वम् ॥ —साम॰ २०३॥

अर्थ–परमैश्वर्य वाले परमात्मा तुझ से श्रेष्ठ कुछ नहीं और न तुझ से कुछ बड़ा है ।

विद्वान् ब्राह्मण के शत्रुओं को दूर कीजिए

अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ –साम॰ १९४ ऋचा का वाक्य है ।

अर्थ–वेद शास्त्रों, विद्वान् ब्राह्मण के शत्रुओं को दूर कीजिए ।

हर समय मुसीबत, यज्ञ अवसर पर बैठकर परमात्मा को याद करो

योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ –साम॰ १६३॥

अर्थ–हर समय यज्ञ अवसर पर भीड़ आने पर प्रत्येक लड़ाई में हम मित्र, अति बलवान् परमात्मा को रक्षा के लिए पुकारते हैं ।

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत ।
सखायः स्तोमवाहसः ॥ –साम॰ १६४॥

अर्थ–हे मित्रो ! आओ बैठो और स्तुति का प्रवाह चलाते हुए परमेश्वर का कीर्तन गान करो ।

एक परमात्मा ही पूजनीय है

य एक इद्धूर तिथिर्जनानाम् ॥

–साम॰ ३७२ ऋचा का वाक्य है।

अर्थ–जो एक परमात्मा ही प्राणियों व मनुष्यों का सेवनीय है, पूजनीय है ।

□□

हमारे प्रकाशन

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

आनन्द गायत्री कथा	१४.००
एक ही रास्ता	१२.००
शंकर और दयानन्द	८.००
मानव जीवन-गाथा	१३.००
सत्यनारायण व्रत कथा	६.००
भक्त और भगवान	१२.००
उपनिषदों का सन्देश	१८.००
घोर घने जंगल में	२२.००
मानव और मानवता	३२.००
प्रभु मिलन की राह	२०.००
यह धन किसका है ?	२२.००
बोध-कथाएँ	१८.००
दो रास्ते	१७.००
दुनिया में रहना किस तरह	१७.००
तत्त्वज्ञान	२२.००
प्रभु-दर्शन	१७.००
प्रभु-भक्ति	१२.००
महामन्त्र	१४.००
सुखी गृहस्थ	७.००
त्यागमयी देवियाँ	९.००

MAHATMA ANAND SWAMI

Anand Gayatri Katha	30.00
The Only Way	30.00
Bodh Kathayen	40.00
How To Lead Life?	30.00

महर्षि दयानन्द

व्यवहारभानु	४.००
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	१.५०
आर्योद्देश्यरत्नमाला	१.५०
पंचमहायज्ञ विधिः	८.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

सत्यार्थ प्रकाश	१२५.००
महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००.००
वाल्मीकि रामायण	१७५.००
षड्दर्शनम्	१५०.००
चाणक्यनीति दर्पण	६०.००
विदुरनीतिः (हिन्दी-संस्कृत-अंग्रेजी)	४०.००
ब्रह्मचर्य गौरव	९.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	९.००
कुछ करो कुछ बनो	१४.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१२.००
आदर्श परिवार	१५.००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५.००
वैदिक विवाह पद्धति	८.००
ऋग्वेद सूक्ति सुधा	२५.००
अथर्ववेद सूक्ति सुधा	१५.००
सामवेद सूक्ति सुधा	१२.००
ऋग्वेद शतकम्	१०.००
यजुर्वेद शतकम्	१०.००
सामवेद शतकम्	१०.००
अथर्ववेद शतकम्	१०.००
भक्ति संगीत शतकम्	६.००
चमत्कारी औषधियाँ	१५.००
घरेलू औषधियाँ	१५.००
चतुर्वेद शतकम् (सजिल्द)	५०.००
स्वर्ण पथ	१४.००
प्रभात-वन्दन	८.००
प्रार्थना-प्रकाश	८.००
शिवसंकल्प	८.००
प्रार्थना लोक (सजिल्द)	४०.००
वेद सौरभ	१२.००

आचार्य उदयवीर शास्त्री

न्यायदर्शन भाष्य १५०.००
वैशेषिकदर्शन भाष्य १५०.००
सांख्यदर्शन भाष्य १२५.००
योगदर्शन भाष्य १००.००
वेदान्तदर्शन भाष्य (ब्रह्मसूत्र) १८०.००
मीमांसादर्शन का विद्योदय भाष्य ३५०.००
सांख्यदर्शन का इतिहास २५०.००
सांख्य सिद्धान्त २००.००
वेदान्तदर्शन का इतिहास २००.००
प्राचीन सांख्य सन्दर्भ १००.००
वीर तरंगिणी (लेखों का संग्रह) २५०.००

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

दीप्तिः ८०.००
आदि शंकराचार्य वेदान्ती नहीं थे ४०.००
सृष्टि विज्ञान और विकासवाद ४०.००
[illegible] मीमांसा प्रेस में

[illegible] गंगाप्रसाद उपाध्याय

शतपथ ब्राह्मण (तीन खण्ड) प्रेस में
सन्ध्या : क्या, क्यों, कैसे १५.००
विवाह और विवाहित जीवन १८.००
जीवात्मा ४०.००

प्रो. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

ब्रह्मचर्य सन्देश २५.००
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार १५०.००

प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु

वैदिक ज्ञान-धारा ८०.००
महात्मा हंसराज ६०.००
महात्मा हंसराज ग्रन्थावली (४ खण्ड) २४०.००
आर्य सूक्ति सुधा १२.००

प्रो. नित्यानन्द पटेल

पूर्व और पश्चिम ३५.००
सन्ध्या विनय ६.००

डॉ. भवानीलाल भारतीय

बिखरे मोती ४०.००
कल्याण मार्ग का पथिक प्रेस में
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (११ खण्डों में) ६६०.००
आर्य समाज के बीस बलिदानी १५..००
श्याम जी कृष्ण वर्मा २४.००
आर्य समाज विषयक साहित्य परिचय २५.००

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

ऋषि बोध कथा १०.००
वैदिक धर्म २५.००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार

ईश्वर का स्वरूप प्रेस में
पहेलियों की वार्ता २०.००

ले: देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय
अनु: पं. घासीराम

महर्षि दयानन्द चरित २५०.००

क्षितीश वेदालंकार

चयनिका १२५.००

पं. रामनाथ वेदालंकार

वैदिक मधुवृष्टि ६०.००

आ. प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेदोद्यान के चुने हुए फूल ५०.००

पं. चन्द्रभानु सिद्धान्ताभूषण

महाभारत सूक्ति सुधा ४०.००

डॉ. प्रशान्त वेदालंकार

धर्म का स्वरूप ५०.००

पं. विश्वनाथ विद्यालंकार

सन्ध्या रहस्य २५.००

प्रो. रामविचार एम.ए.

आर्य समाज का कायाकल्प कैसे हो ? ४.००

पं. नन्दलाल वानप्रस्थी

गीत सागर २५.००

आ. उदयवीर शास्त्री

आचार्य शंकर का काल १०.००

पं. वीरसेन वेदश्रमी

याज्ञिक आचार संहिता ४५.००

नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रेरक बोध कथाएँ १५.००

कवि कस्तूरचन्द

ओंकार गायत्री शतकम् ३.००

पं. सत्यपाल विद्यालंकार

श्रीमद्भगवद्गीता १५.००

WORKS OF SVAMI SATYA PRAKASH SARASVATI

Founders of Sciences in Ancient India (Two Vols.) 800.00
Coinage in Ancient India (Two Vols.) 600.00
Geometry in Ancient India 350.00
Brahmgupta and His Works 350.00
God and His Divine Love 5.00
The Critical, Cultural Study of Satapath Brahman In Press
Speeches, Writings and Addresses
Vol.I : VINCITVERITAS 150.00
Vol.II : ARYA SAMAJ : A RENAISSANCE 150.00
Vol.III : DAYANAND : A PHILOSOPHER 150.00
Vol. IV : THREE LIFE HAZARDS 150.00

कर्म काण्ड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका ४.००
पंचयज्ञ प्रकाशिका ८.००
वैदिक संध्या १.००
सामाजिक पद्धतियाँ (मदनजीत आर्य) १२.००
संध्या-हवन-दर्पण (उर्दू) ८.००
Vedic Prayer in press

पं. वा. विष्णुदयाल (मॉरीशस)

वेद भगवान बोले १५.००

जीवनी

महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू) १०.००
महात्मा आनन्द स्वामी (हिन्दी) २५.००

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द ५.००
गुरु विरजानन्द ५.००
स्वामी श्रद्धानन्द ५.००
धर्मवीर पं. लेखराम ५.००
मुनिवर पं. गुरुदत्त ५.००
स्वामी दर्शनानन्द ५.००

प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु

महात्मा हंसराज ४.५०
स्वामी स्वतन्त्रानन्द ४.५०
महात्मा नारायण स्वामी ५.५०
देवतास्वरूप भाई परमानन्द ५.५०

सुनील शर्मा

हमारे बालनायक ८.००
देश के दुलारे ९.००
हमारे कर्णधार ८.००
गिरती दीवारें १२.००

नीरू शर्मा

आदर्श महिलाएँ ८.००
पहली हार पहली जीत १२.००

स्वामी दर्शनानन्द

कथा पच्चीसी ९.००
बाल शिक्षा २.५०

हरिशचन्द्र विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली २५.००

ब्र. नन्दकिशोर

आचार्य गौरव ५.००

पं. नारायण स्वामी

प्राणायाम विधि २.५०

सत्यभूषण वेदालंकार एम.ए.

नैतिक शिक्षा—प्रथम २.५०

नैतिक शिक्षा—द्वितीय ३.००

नैतिक शिक्षा—तृतीय ४.५०

नैतिक शिक्षा—चतुर्थ ५.००

नैतिक शिक्षा—पंचम ५.००

नैतिक शिक्षा—षष्ठ ६.००

नैतिक शिक्षा—सप्तम ६.००

नैतिक शिक्षा—अष्टम ६.००

नैतिक शिक्षा—नवम ९.००

तिक शिक्षा—दशम ९.००

ा. मनोहर लाल

ने का सही ढंग

(प्रेरक बोध कथाएं) १२.००

चित्र

स्वामी दयानन्द १६" X २२" बहुरंगी ४.००

स्वामी दयानन्द (कुर्सी) १८" X २२" ३.००

स्वामी दयानन्द (आसन) १८" X २२" ३.००

स्वामी श्रद्धानन्द १८" X २२" एक रंग ३.००

गुरु विरजानन्द १८" X २२" एक रंग ३.००

पण्डित लेखराम १८" X २२" एक रंग ३.००

स्वामी दर्शनानन्द १८" X २२" एक रंग ३.००

गुरुदत्त विद्यार्थी १८" X २२" एक रंग ३.००

महात्मा हंसराज १८" X २२" एक रंग ३.००

कैलेण्डर १९९६

महर्षि दयानन्द का झण्डे वाला

बहुरंगी चित्र ४.००

(३००.०० रु० सैकड़ा)

जब प्रकृति की अनमोल दवाइयाँ आपको उपलब्ध हों तो पुड़िया आदि की क्या जरूरत है।

घर का वैद्य—प्याज ७.००

घर का वैद्य—लहसुन ७.००

घर का वैद्य—गन्ना ७.००

घर का वैद्य—नीम ७.००

घर का वैद्य—सिरस ७.००

घर का वैद्य—तुलसी ७.००

घर का वैद्य—आँवला ७.००

घर का वैद्य—नींबू ७.००

घर का वैद्य—पीपल ७.००

घर का वैद्य—आक ७.००

घर का वैद्य—गाजर ७.००

घर का वैद्य—मूली ७.००

घर का वैद्य—अदरक ७.००

घर का वैद्य—हल्दी ७.००

घर का वैद्य—बरगद ७.००

घर का वैद्य—दूध-घी ७.००

घर का वैद्य—दही-मट्ठा ७.००

घर का वैद्य—हींग ७.००

घर का वैद्य—नमक ७.००

घर का वैद्य—बेल ७.००

घर का वैद्य—शहद ७.००

घर का वैद्य—फिटकरी ७.००

घर का वैद्य—साग-भाजी ७.००

घर का वैद्य—अनाज ७.००

घर का वैद्य—फल-फूल ७.००

घर का वैद्य—धूप-पानी १५.०

सभी छब्बीस पुस्तकें छः आकर्षक जिल्दों में भी उपलब्ध, कीमत ४५.०० रुपये प्रत्येक

घर का वैद्य (प्याज, लहसुन, गन्ना, नीम, सिरस)

घर का वैद्य (तुलसी, आँवला, नींबू, पीपल, आक)

घर का वैद्य (गाजर, मूली अदरक, हल्दी, बरगद)

घर का वैद्य (दूध-घी, दही-मट्ठा, हींग, नमक, बेल)

घर का वैद्य (शहद, अनाज, साग-भाजी, फल-फूल, फिटकरी)

घर का वैद्य—धूप-पानी ४०.००

अन्य प्रकाशन

डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार

आर्य समाज का इतिहास (भाग १)	३२५.००
आर्य समाज का इतिहास (भाग २)	३२५.००
आर्य समाज का इतिहास (भाग ३)	३२५.००
आर्य समाज का इतिहास (भाग ४)	३२५.००
आर्य समाज का इतिहास (भाग ५)	३२५.००
आर्य समाज का इतिहास (भाग ६)	३२५.००
आर्य समाज का इतिहास (भाग ७)	३२५.००
प्राचीन भारत इतिहास का वैदिक युग	५६.००
दक्षिणी-पूर्वी और दक्षिणी एशिया में भारतीय संस्कृति	५८.००
पूर्वी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया का आधुनिक इतिहास	७७.००
प्राचीन भारत का धार्मिक सामाजिक और आर्थिक जीवन	७२.००
मध्य एशिया व चीन में भारतीय संस्कृति	५८.००
प्राचीन भारत	८०.००
भारतीय संस्कृति का विकास	७७.००
प्राचीन भारत की शासन संस्थाएँ और राजनीतिक विचार	५८.००
एशिया का आधुनिक इतिहास	१३०.००
यूरोप का इतिहास	१४०.००
समाजशास्त्र	८०.००
चाणक्य	६५.००
मौर्य साम्राज्य का इतिहास	१३५.००
भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास	५८.००
भारत का इतिहास	५५.००
विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ	१७५.००
मध्यकालीन भारत	५८.००
प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास	३२५.००
Political Thought of Swami Dayanand	150.00

डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

एकादशोपनिषद्	१२५.००
उपनिषद् प्रकाश	११०.००
श्रीमद्भगवद्गीता	१०५.००
संस्कार चन्द्रिका	१२०.००
बुढ़ापे से जवानी की ओर	९५.००
होमियोपैथिक चिकित्सा	१२५.००
होमियोपैथिक चित्रण	१२५.००
होमियोपैथी का क ख ग	१००.००
होमियोपैथी के मूल सिद्धान्त	८०.००
वैदिक संस्कृति के मूल तत्त्व	४०.००
From old age to youth through Yoga	80.00
चतुर्वेद गंगालहरी	९५.००
मेरी नानी की कहानी	३५.००
माँ और बच्चा	२५.००

चूमपति एम.ए.

योगेश्वर कृष्ण	४०.००
वैदिक स्वर्ग	३०.००
वैदिक दर्शन	१५.००
अनादि तत्त्व	२५.००
विचार वाटिका (भाग दो)	१००.००

स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती

अग्निहोत्र सर्वस्व	१०.००
उपहार सर्वस्व	५.००
मृत्युञ्जय सर्वस्व	१०.००
स्वाध्याय सर्वस्व	१२.००
उपनयन सर्वस्व	१०.००
दो पुटन के बीच	८.००
ए लविंग टोकन	५.००

पं. शिवकुमार शास्त्री

श्रुति सौरभ	६०.००

स्वामी योगेश्वरानन्द

बहिरंग योग	७०.००
आत्मविज्ञान	८०.००
ब्रह्मविज्ञान	१००.००
दिव्य ज्योति विज्ञान	६०.००
प्राण विज्ञान	५०.००
दिव्य शब्द विज्ञान	६०.००
निर्गुण ब्रह्म	३०.००
व्याख्यानमाला (५ भाग)	१५०.००
हिमालय का योगी-I+II	१५५.००
First Step to Higher Yoga	70.00
Science of Soul	80.00
Science of Divinity	100.00
Science of Divine Light	65.00
Science of Vital Force	40.00
The Essential Colourlessness of the Absolute	40.00
Science of Divine Sound	40.00
Beads of Sermons	30.00
Himalaya Ka Yogi-I+II	160.00

पं. कपिल देव द्विवेदी

सुखी जीवन	१८.००
सुखी गृहस्थ	१२.५०
सुखी परिवार	१८.००
आचार शिक्षा	१०.००
नीति शिक्षा	१०.००
वेदों में नारी	२०.००
सुखी समाज	१८.००
वैदिक मनोविज्ञान	१८.००
यजुर्वेद सुभाषितावली	२५.००
सामवेद सुभाषितावली	२५.००
अथर्ववेद सुभाषितावली	३५.००
ऋग्वेद सुभाषितावली	४०.००
वेदों में आयुर्वेद	९०.००
Vedic Samdhya & Agnihotra	30.00
The Essence of The Vedas	200.00

महर्षि दयानन्द

सत्यार्थ प्रकाश	५०.००
संस्कार विधि	१०.००
ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	४०.००
उपदेश मञ्जरी	१०.००
संस्कृत वाक्य प्रबोध	५.००
महर्षि दयानन्द (पं. लेखराम)	१००.००.
महर्षि दयानन्द के सर्वश्रेष्ठ भाषण	५०.००

पं. भगवद्दत्त

सविता देवता	५८.००
बृहस्पति देवता	६५.००

पं. रामनाथ वेदालंकार

सामवेद (पूर्व. उत्तरार्ध)	४००.००
सामवेद (संस्कृत भाष्य) (दो भाग)	७००.००
आर्य ज्योति	५०.००
वेद मञ्जरी	५०.००
वैदिक नारी	४०.००

आचार्य अभयदेव वेदालंकार

वैदिक उपदेशमाला	१०.००
वैदिक विनय	१२५.००

स्वामी समर्पणानन्द

पञ्चयज्ञप्रकाश	१५.००
श्रीमद्भगवद्गीता	२०.००

पं. सुरेन्द्र कुमार

विशुद्ध मनुस्मृति	८०.००
मनुस्मृति	१५०.००

Svami Satya Prakash Sarasvati

Rigveda (13 vols)	2700.00
Athervaveda (4 vols)	1125.00
Samveda (2 vols)	1150.00
Yajurveda (1 vol)	500.00

स्वामी जगदीश्वरानन्द

देवर्षि दयानन्द चरित	२५.००
शुक्र नीतिसार	८०.००
सामवेद भाष्य	१००.००
बाल शिक्षा	५.००

विशेषांक

'वेदप्रकाश' का 'जनवरी' अंक विशेषांक होगा। पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत 'भगवत् कथा' (उपनिषदों के आधार पर) लगभग १२५ पृष्ठों की यह पुस्तक आपको प्राप्त होगी। ग्राहकों से अनुरोध है कि यदि आप ने 'वेदप्रकाश' का वार्षिक शुल्क अभी नहीं भेजा है तो शीघ्र भेज दें जिनका शुल्क ३१।१२।९५ तक प्राप्त हो जाएगा उन्हें यह विशेषांक भेज दिया जाएगा।

हमें कुछ ग्राहकों के पत्र मिलते हैं जो 'वेदप्रकाश' प्राप्त न होने की शिकायत करते हैं। उन्हें हम विश्वास दिलाते हैं कि यह डाक की खराब व्यवस्था के कारण ही होता है। हमारे कार्यालय से पत्रिका भेजने का काम ध्यानपूर्वक होता है। अब हमने जनवरी से पत्रिका के ग्राहकों की सूची कम्प्यूटर कृत प्रणाली से बनाई है। इसीलिए सभी ग्राहकों को नई ग्राहक संख्या दी जा रही है। कृपया इसे नोट कर लें तथा भविष्य में पत्राचार करते समय इसी ग्राहक संख्या का उल्लेख करें।

'वेद मूल संहिता योजना' तथा 'दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह योजना' का कार्य शीघ्रता से समाप्ति की तरफ बढ़ रहा है। हम दोनों योजनाओं के सदस्यों का आभार प्रकट करते हैं कि आप ने धैर्य व विश्वास रखते हुए हमारा साथ दिया।

—अजय कुमार

प्रकाशक-मुद्रक अजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।
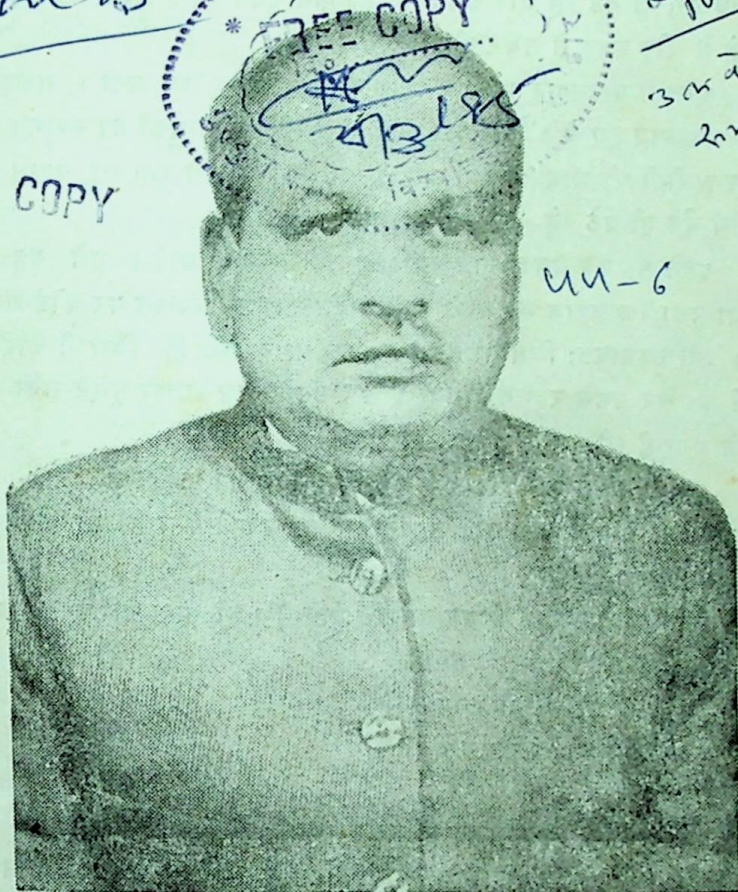
जन्म : २६-२-१९३२ स्मृतिशेष : ३०-१२-१९९१

अपने मार्गदर्शक, प्रेरणास्रोत, अभिभावक श्री विजय कुमार जी की पुण्य-स्मृति को शत-शत नमन —अजयकुमार

बोध-कथा

सच्चे स्नेह का स्रोत

एक बार स्वामी रामतीर्थ संयुक्त राज्य अमेरिका जा रहे थे। बन्दरगाह समीप आ रहा था। हर कोई अपना सामान इकट्ठा करने लगा, लेकिन स्वामी रामतीर्थ वैसे ही बैठे रहे और देखते रहे कि कैसे दूसरे लोग अपना सामान इकट्ठा कर रहे थे और इधर से उधर दौड़ रहे थे।

अन्त में बन्दरगाह आया। जहाज भूमितट पर जा लगा। सकड़ों लोग किनारे पर आए हुए थे। रिश्तेदार और मित्र लोग आगन्तुकों का स्वागत कर रहे थे। इन लोगों की भीड़ का वहाँ पर इतना हो-हल्ला हो रहा था, परन्तु स्वामी रामतीर्थ वैसे ही बैठे रहे—पूरी तरह शान्त और मौन।

इतने में एक नवजवान अमेरिकी लड़की वहाँ आई। उसे यह देखकर अचम्भा हुआ कि जहाज की सारी चहल-पहल का उस व्यक्ति पर कोई असर नहीं हुआ। उसे स्वभावतः जिज्ञासा हुई कि यह कैसा व्यक्ति है, जिसकी कोई तमन्ना नहीं? आखिर उससे रहा नहीं गया। वह उनके पास जाकर पूछने लगी— 'आप कहाँ से आए हैं और कौन हैं?"

स्वामी जी ने उत्तर दिया—"मैं हिन्दुस्तान का फकीर हूं।"

"क्या आप के पास यहाँ ठहरने के लिए जरूरी पैसा है, या आप का यहाँ किसी से परिचय है?"

"नहीं, मेरे पास कोई धन-सम्पत्ति नहीं है। हां, मेरा परिचय अवश्य है।"

"किस से?"

"आप से और थोड़ा भगवान् से।"

"फिर तो आप मेरे घर चलेंगे।"

"अवश्य चलूंगा।"

स्वामी रामतीर्थ इस भद्र महिला के यहाँ ठहर गए।

एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य और भगवान् पर ऐसा भरोसा ही सच्चे स्नेह का स्रोत बहाता है।

प्रस्तुति — **नरेन्द्र विद्यावाचस्पति**

ओ३म्

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ४४, अंक ६]   वार्षिक मूल्य : बीस रुपये   [जनवरी १९९५

सम्पा० अजयकुमार   आ० सम्पादक : **स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

स्व० श्री विजयकुमार जी के साथ एक दिन

लेखक—**डॉ० मनोहर लाल**

२०, हिमकुंज, सेक्टर १४, रोहिणी, नई दिल्ली-८५

अगस्त १९९१ आधा बीत चुका था। एक दिन मैं उनसे मिला तो बोले—"आपको मेरे साथ मथुरा-वृंदावन चलना है। वहाँ हमारे परिवार से जुड़ी एक भव्य स्मृति है—'हासानंद ट्रस्ट गोशाला'। आपको इस शाला को देख-परखकर कुछ लिखना है। इस कार्य के लिए मुझे आप उपयुक्त पात्र प्रतीत हुए हैं।"

'गोशाला' और मथुरा-वृंदावन का नाम सुनते ही मेरे भीतर का गाँव जग गया और मन-ही-मन कहा—'चलो, इस बहाने गोधन का दर्शन-लाभ भी हो जाएगा और एक विशेष यात्रा भी।' मैंने 'हाँ' कह दी और २२ अगस्त को ताज-एक्सप्रैस से जाना और लौट आना तय हो गया। मैंने मन में उठा 'यात्रा-भाव' ज्यों ही प्रकट करना चाहा—वह झट बोल उठे—"मैं समझ रहा हूँ। मैं आपको अपने काम से ले जा रहा हूँ, टिकट की व्यवस्था मैं करूँगा, आप बस नई दिल्ली स्टेशन पर पहुँच जाइए।

मैं रोहिणी से कूदता-फाँदता समय पर पहुँचा और गाड़ी नियत समय पर खिसकी। अभी दिल्ली की सीमा पार भी नहीं की थी कि उन्होंने नाश्ते का पैकट खोला और बोले—"यह नाश्ता यात्रा के लिए ही सहेज-सँभालकर मेरे हाथ थमाया गया है, इसे समाप्त करना है।" और हम दोनों ने उसे खूब छका।

मथुरा से रिक्शा लेकर हम गऊ घाट स्थित 'हासानंद ट्रस्ट गोशाला' के ट्रस्टी श्री राम बाबू जी के घर गए। उन्होंने बड़े आदर से हमें अतिथि-भाव से गले लगाया। दोपहर का भोजन कराया। स्व० श्री विजयकुमार जी ने उन्हें मेरा परिचय दिया तो उन्होंने इस बात पर विशेष आह्लाद व्यक्त किया कि मैं 'श्रीराम कॉलेज ऑफ कॉमर्स, दिल्ली' के हिंदी-विभाग में प्राध्यापक हूँ; 'हासानंद ट्रस्ट गोशाला' के बारे में एक रिपोर्ट तैयार करने के उद्देश्य से यहाँ आया हूँ।

श्री राम बाबू जी ने गोशाला-विषयक गत वर्षों के लेखे-जोखे की सारी रिपोर्टें दिखाईं और ट्रस्ट के इतिहास का भी ब्योरा दिया। उन्होंने बताया—'हासानंद ट्रस्ट गोशाला' का श्रीगणेश १९३५ ई० में हुआ था और इसके पीछे समाजसेवी गोभक्त स्व० हासानंद वर्मा का मुख्य हाथ था। इसे ट्रस्ट के रूप में महामना मदनमोहन मालवीय जी ने स्थापित किया था। वही इसके संरक्षक थे। उन्होंने १९३६ में इस गोशाला के लिए एक हज़ार एकड़ गोचर-भूमि खरीदी थी। इसमें से सौ एकड़ धौरेरा, अहल्यागंज तथा राजपुरा गाँव के काश्तकारों ने दबा ली, पर सरकारी कागजों में आज की तारीख में भी ६५० एकड़ जमीन 'गोशाला' के नाम स्पष्ट पढ़ी-देखी जा सकती है। इतनी पर ही ट्रस्ट का अधिकार है, शेष सारी-की-सारी सलामत होते हुए भी सरकारी तंत्र में शून्य हो गई है या मुकद्दमेबाजी की चपेट में है। वर्तमान में गोचर-भूमि के रूप में ५५० एकड़ भूमि सुरक्षित है जिसमें से १४० एकड़ में चारा बोया जाता है। इसमें ६० एकड़ भूमि दो-फसली भी है।

मैंने इस यात्रा में जाना और माना कि स्व० श्री विजयकुमार के पूर्वजों की स्मृति-निधि 'श्री मथुरा-वृंदावन हासानंद गोचर भूमि ट्रस्ट गोशाला' वहाँ की 'श्री पंचायती गोशाला', 'श्रीकृष्ण गऊशाला' तथा 'श्री गऊशाला बंशीवाला' प्रभृति गऊशालाओं में प्रतिनिधि है।

मुझे श्री राम बाबू ने मेरी रुचि, गति और मेरे ग्राम्य-परिवेश की जानकारी पाकर 'कल्याण' का 'गोअंक' भेंटस्वरूप दिया जो आज भी मेरी श्री विजय कुमार जी के साथ मथुरा-यात्रा का स्मरण-दस्तावेज है।

'गो अंक' के संदर्भ में स्व० श्री विजयकुमार जी ने मुझे कहा था—हमारे यहाँ हिंदी में 'गोधन' के बारे में विशेष साहित्य है नहीं और न ही विश्वविद्यालय-स्तर के विद्वानों ने इस विषय को लेकर कोई शोध-प्रबंध तैयार करवाने का काम किया है जबकि इस दिशा में शोध-कार्य किए जाने की अनंत संभावनाएँ हैं। कोई अधिक नहीं तो हिंदी काव्यधारा में प्राप्त गोधन-विषयक काव्यांशों को ही संकलित-सम्पादित कर-करवाकर प्रकाशित कर दें तो भारतीय संस्कृति का एक उज्ज्वल पक्ष प्रकट हो जाए। इस समय गाय के बारे में प्राथमिक जानकारी वाली छोटी-छोटी पुस्तकें लिखवाई-छपवाई जानी चाहिएँ ताकि नई पीढ़ी को गो-गोधन-गोरस-गोसंस्कृति का परिचय मिल सके।

मैंने उनसे सहमति प्रकट की थी और इस काम की महत्ता को समझा था, पर विजय जी इसके बाद पूरे चार महीने भी नहीं रह पाए। उनकी दिखाई एक दिशा आज भी स्मृति बनी हुई है।

सोचता हूँ—लगभग पचास साल (४९ साल) बीत गए, 'कल्याण' का गोअंक गो-संस्कृति पर शोध करनेवालों के लिए आप्त संदर्भ-ग्रंथ के रूप में सुलभ है, पर शायद इस आपाधापी और टीवी-युग में गो-संदर्भ-कोश बनाने-बनवाने की फुर्सत किसी को नहीं है।

आज की नई पीढ़ी को 'मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदा', 'वंदे भूतभव्यस्य

मातरम्', 'सर्वेषामेव भूतानां गावः शरणमुत्तमम्', 'यद्गृहे दुःखिता गावः स याति नरके नरः', तथा 'गावः पवित्रा मांगल्या गोषु लोकाः प्रतिष्ठिताः' आदि का महत्त्व कौन समझाए ?

आज हमारी गाय कष्ट में है। गो-संस्कृति संकट में है। हमारी राजनीति के पुरोधा इस संदर्भ में मष्ट की स्थिति में हैं। आज 'गोग्रास' के महत्त्व का ज्ञान भी लुप्त होता जा रहा है, गोदान की बात तो शायद ग्राम्य-परिवेश तक ही सीमित रह गई है। हम नागर, नगर-संस्कृति के कायल कंकरीट के जंगलों में घुसे-धँसे जा रहे हैं। गाय हमसे दूर छूट गई है। हिंदू-संस्कृति की इस स्थिति पर राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी आँसू बहाए टपकाए थे—

'गाय कहूँ वा तुझको माय ?
अयि आबाल-वृद्ध हम सबकी जीवन भर की धाय !
तेरा मूत्र और गोबर भी पावे, सो तर जाय,
घर ही नहीं, खेत की भी तू सबकी एक सहाय।
न्योछावर है उस पशुता पर यह नरता निरुपाय;
आ, हम दोनों आज पुकारें—कहाँ कन्हैया हाय !'

चाहूँगा कि 'वेद प्रकाश' को अपना कम-से-कम एक पृष्ठ 'गो-काव्य-संकलन' को अर्पित करके स्व० विजयकुमार जी के मनोरथ को पूरा करने की स्वस्थ परम्परा डाले।

स्व० विजयकुमार जी के साथ हर बैठक में हुआ संवाद किसी-न-किसी रूप में प्रेरक बिन्दु हुआ करता था, इन स्मृति-कणों को सँजोया जाना चाहिए। उनकी पावन स्मृति को प्रणाम !

कोई भी मतभेद नहीं

विजयकुमार जी मेरे जीवन में बहुत धीरे-धीरे आए। लगभग पन्द्रह-बीस वर्ष पूर्व वे हिंदी निदेशालय में प्रायः आया करते थे। प्रकाशकों के सहयोग से निदेशालय हिंदी पुस्तकों का प्रकाशन करता था। शायद उसी सिलसिले में विजय जी का आना होता रहता था। हमारे साथी ध्रुवदेव शर्मा से वे चावड़ी बाज़ार का निवासी होने के नाते भली-भाँति परिचित थे। पहला परिचय उन्हीं के माध्यम से हुआ था। उनमें सहज-मधुर गंभीरता थी। हम लोगों को आपस में कोई काम नहीं था। वे उधर आते तो दुआ-सलाम हो जाती और फिर महीनों मिलना नहीं होता था।

फिर मालूम हुआ कि विजय कुमार जी ने सुबोध पाकेट बुक्स के अंतर्गत बच्चों की पाकेट साइज़ पुस्तकों का प्रकाशन किया है। उस आयोजन में मेरा जाना भी हुआ। निहायत छोटी-छोटी पुस्तकें थीं, जिन्हें नन्हे-मुन्ने आसानी से पढ़ सकते थे। उन किताबों का भरपूर स्वागत हुआ और विजय जी ने उन्हें विज्ञापित भी खूब किया।

कभी-कभार होने वाली मुलाकातें, अखबारों के माध्यम से नए प्रकाशनों की सूचनाएँ उनके प्रति आकर्षण पैदा करती थीं। फिर रामकृष्णपुरम में ही एक दिन कहने लगे कि मुझे अपनी एक पुस्तक पुनर्मुद्रण के लिए भेजनी है और कि मैं उसे भाषा और प्रूफ संशोधनों की दृष्टि से देख लूँ। मेरे लिए यह प्रस्ताव सहज था। मैंने उन्हें पुस्तक पढ़कर, अपेक्षित संशोधन करके वापस लौटा दी और दक्षिणा-स्वरूप कुछ राशि भी उन्होंने मुझे दी।

ऐसी ही भेंट-मुलाकातों में विजयकुमार जी निकट आते गए। उनका फोन कभी भी आ जाता था और अनायास ही दफ्तर में मिलने भी आ जाते थे। मुझे भी उनसे बार-बार मिलना अच्छा लगने लगा। वे मेरे आत्मीय होते चले गए। एक दिन फोन आया कि मैं उनके लिए गज़लों की एक किताब संपादित कर दूँ, क्योंकि उनके छोटे बेटे अजयकुमार के अनुसार पटना पुस्तक मेले में गज़लों की बड़ी माँग थी और वे भी गज़ल-संकलन छापने को उत्सुक थे। परिणामस्वरूप मेरे संपादन में "गज़लें ही गज़लें" पुस्तक का प्रकाशन हुआ। मैंने विजय जी से संपादक के रूप में अपना नाम न देने का अनुरोध किया तो उन्होंने असहमति व्यक्त करने के बावजूद मेरी बात मान ली। मगर यह क्रम ज़्यादा नहीं चला। उनका कहना था कि संपादक का नाम न होने से समस्त प्रश्नों की बौछार प्रकाशक पर ही होती है, इसलिए ज़रूरी है कि पुस्तक पर संपादक का नाम छपना ही चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि लोग तो अपना नाम छपवाने के लिए तरसते हैं, आपमें ऐसा संकोच क्यों ? मैं नए संस्करण में आपका नाम प्रकाशित कर रहा हूँ। यह विजय जी का स्नेहपूर्ण अनुरोध था जो मुझे मानना ही पड़ा। इसके बाद

"मुक्तक और रुबाइयाँ", "नया ज़माना नई गज़लें", "गज़लें रंगारंग", "नई पाकिस्तानी गज़लें" तथा "बीरबल ही बीरबल" का प्रकाशन विजय जी ने किया। पुस्तकों का स्वागत हुआ और विजय जी से आत्मीयता प्रगाढ़ होती चली गई।

विजय जी परहेज़ी थे। खान-पान में बहुत अहतियात बरतते थे। सादा खाना खाते थे और साहित्य तथा साहित्यकारों को सम्मान एवं प्रेम की दृष्टि से देखते थे। मैंने उन्हें कभी किसी साहित्यकार की उपेक्षा करते नहीं देखा। लेखकों की रचनाएँ माँगने स्वयं उनके पास जाते थे। उन्हें अच्छा नहीं लगता था कि कोई लेखक उनके पास जाकर पांडुलिपि छापने का अनुरोध करे। वे सचमुच के प्रकाशक थे। उनके व्यक्तित्व में प्रकाश था, जो सिर्फ पुस्तकें नहीं, दूसरों का व्यक्तित्व भी प्रकाशित करते थे।

विजय कुमार जी जो पुस्तकें छापते थे, उन्हें पूरा पढ़ते थे। पढ़ते ही नहीं थे आत्मसात करते थे, रसमग्न हो जाते थे। मुज्तबा हुसैन की 'जापान चलो जापान चलो' छापने के दौरान इस पुस्तक के प्रसंगों और शैली से अभिभूत थे। कई बार बातचीत में संदर्भ दिया करते थे। डा० आनन्द अस्थाना की 'रेत पर नाम' प्रेस में थी, तब विजय जी मूलचन्द अस्पताल में दाखिल थे। मैं और विजय किशोर मानव उन्हें देखने गए तो 'माँ' कविता पढ़कर सुनाने लगे। सुनाते हुए उनके चेहरे पर गहरा संतोष था कि कितनी अच्छी कविताएँ प्रकाशित कर रहे हैं। बाद में मैं कभी हँसी में और कभी गंभीरता से मित्र मण्डली में अक्सर कहता रहा कि प्रकाशक लोग जो किताबें छापते हैं, यदि उन्हें ही ध्यान से पढ़ लिया करें तो वे बेहतर इंसान सिद्ध हो सकते हैं। विजय कुमार जी ने यह सब कर दिखाया था।

विजय कुमार जी कई प्रसंगों में अद्‌भुत थे। मेरी पुस्तक 'व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न' का दूसरा संस्करण उन्होंने 'पुस्तकायन' के अन्तर्गत छापा था। वे प्रति वर्ष नए प्रकाशनों के अवसर पर 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' और 'धर्मयुग' में पूरे पृष्ठों का विज्ञापन छपवाते थे। उन दिनों शायद 'साप्ताहिक' में विज्ञापन छपा था। रात के लगभग आठ बजे फोन आया। कहने लगे—विज्ञापन पढ़कर आगरा के एक पाठक ने पुस्तक वी०पी०पी० से तत्काल मँगवाई है।

मैंने कहा—इसका मतलब है कि विज्ञापन का प्रभाव अच्छा पड़ा है। अभी तो छपा है, भविष्य में और अधिक व्यापक असर होगा।

यह कहकर इधर-उधर की बातें करता रहा। फोन रखने लगा तो बोले—आपने यह तो पूछा ही नहीं कि आदेश किस पुस्तक का है?" मैंने कहा, "हाँ, यह पूछना तो भूल ही गया।" हँसकर बोले, "यह 'व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न' का आदेश है।" मेरा सुखी होना स्वाभाविक था। वास्तविकता यह है कि छोटे-से-छोटे सुखद प्रसंगों को भी इष्ट-मित्रों तक पहुँचाने में वे आनन्द अनुभव किया करते थे। यही उनका बड़प्पन था।

उन्होंने पशु-पक्षियों पर लिखित मेरी दो बाल पुस्तकें एक साथ छापी थीं। तय यही हुआ कि अदायगी एकमुश्त होगी। रसीद अग्रिम दे दी गई थी। एक दिन फोन आया। बोले—मैंने आपकी दोनों रसीदें फाड़ दी हैं। आपको उनके अनुसार भुगतान

नहीं मिलेगा। मैं चौंका, तो बोले—अब हम आपको इनकी रायल्टी देंगे। और उन्होंने सचमुच ही मुझे रायल्टी दी। भला, ऐसा कौन करता है, कहाँ करता है?

बहुत-सी, बहुत-बहुत प्यारी, बहुत प्रेरणादायक, जीवन में नव-स्फूर्ति भरनेवाली बातें हैं विजय जी के बारे में। कहाँ तक गिनाऊँ? सुकवि बलवीर सिंह रंग की पंक्तियाँ हैं—

सितारों में बड़ा मतभेद है इस बात को लेकर,
धरा पर रंग जैसे आदमी पाये नहीं जाते।

मगर इस बात में, इस तथ्य और कथ्य में कोई भी, कहीं भी मतभेद नहीं है कि विजय कुमार जी जैसे लोग दुनिया में कम और बहुत कम पाए जाते हैं।

जी २६१-ए, सेक्टर २२
नोएडा-२०१३०१

—शेरजंग गर्ग

वैदिक साहित्य प्रणेता श्री विजयजी

रचयिता—**डॉ० कृष्ण वल्लभ पालीवाल**
१२९ बी एम आई जी, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-२७

हा विजय !
वैदिक साहित्य प्रकाशन की
जलाकर ज्योति तुम
हो जाओगे, इतने शीघ्र
ज्योति-पुंज में विलीन
सोचा न था कभी ।
अभी तो पाठकों ने
पन्ने भी नहीं
उलट किए
तव-प्रकाशित साहित्य के ।
निश्चय विजय ! तुमने
अनेकों विद्वानों, लेखकों
वैदिक मनीषियों को खोजकर
अभिदर्शित किया, वैदिक वाङ्मय को ।
कितना वैदिक ज्ञान-विज्ञान
प्राचीन-अर्वाचीन
इतिहास-दर्शन
पड़ा था अप्रकाशित, ओझल
अँधेरी कोठरियों में
श्रद्धानन्द, दयानन्द
आनन्द, उदयवीर, आदि की
ओजस्वी लेखनी
प्रकाशित की तुमने
उठाकर जोखिम ।
ज्ञान-गंगा बहा दी
नैतिक साहित्य की
तुलनात्मक धर्म की
'वेद प्रकाश' से
प्रकाशित की
वेद की गुत्थियाँ
अविरत संघर्ष कर
अपनों-परायों से,
डटे रहे अकेले फिर भी ।
लेखन-प्रकाशन की
तुम्हारी यह साधना
चलती रहेगी, अविरल, अविराम,
दिलाते आश्वासन हम
यही हैं हमारे
श्रद्धा-सुमन !

"वेद प्रकाश"

कवि—**प्रणव शास्त्री, एम० ए०, महोपदेशक**
'शास्त्रीसदन', रामनगर (कटरा), आगरा

परमप्रिय पावन 'वेद प्रकाश'
विश्व में छा जावे अविराम
धारकर शुद्धाचरण समस्त
लोक हो उज्ज्वलचरित ललाम ॥ १ ॥

न होवे ईर्ष्या-वैर-विरोध, क्रोध का होवे अन्त नितान्त।
सभी हों प्रेम परस्पर पूर्ण, चूर्ण हों विद्वेषी सिद्धान्त
न होवें ऊँच-नीच के भाव, सजें समता के अविकल धाम ॥ २ ॥

सभी की निष्ठा होवे सत्य, भगें मत-मिथ्याओं के भूत
नयी ही जगे चेतना चित्त, कर्म से हो जावें परिपूत।
धरा के प्राङ्गण में जाब नित्य कृत्य का होवे नृत्य निकाम ॥ ३ ॥

प्रतिष्ठित हो जावे विज्ञान, तर्क के उमड़ें सुन्दर स्रोत
रूढ़ियाँ होवें ध्वस्त समस्त, पीढ़ियाँ बल से ओतःप्रोत।
जगे वर विक्रम पौरुष पुण्य, नागरिक बन जावें धृति-धाम ॥ ४ ॥

दयानन्द ऋषि का जागे बोध, मचे फिर शास्त्रार्थों की धूम
पराजित होवे पाप प्रकाण्ड, आर्यजन चलें विजय मे झूम।
सत्य का करने को दिग्विजय, उठे हों जैसे गोविन्दराम ॥ ५ ॥

न होवे रोदन हाहाकार, दिशाओं में हो 'हासानन्द'
प्रसन्नता जनता में प्रकटे, निरन्तर नैतिकता के छन्द।
करे बस वसुधा एक कुटुम्ब, धर्मतरु-छाया में विश्राम ॥ ६ ॥

सजे इस धरती पर ही स्वर्ग, न होवे कोई भी जन क्लान्त
न हो आतङ्कवाद का रोग, न होवे कोई प्रान्त अशान्त।
कर्म की केसर फूले सत्य, सत्य सब बन जावें निष्काम ॥ ७ ॥

'अजय' हो राष्ट्र-शक्ति का रूप, भजें सब मन से ही जगदीश
सफल यों होगा वेद-प्रचार, जागरण भर दें मान्य मुनीश।
'प्रणव' तब धरती गाए गीत, प्रीति से गूँजेंगे स्वर साम ॥ ८ ॥

पिछले अंक में हमने आर्य जगत् के उज्ज्वल रत्न सर्वस्व त्यागी सचमुच वीतराग स्वामी श्री सर्वदानन्द जी की एक दुर्लभ प्रति ''ईश्वर-भक्ति'' प्रकाशित की थी।

अब प्रस्तुत है इस ग्रन्थ-रत्न का शेषभाग-

ईश्वर-भक्ति में रुकावटें

जिस मनुष्य को अहंकार ने घेरा है, जिसके दिल में स्वार्थ का बखेड़ा है, वह रोगी है और जब तक बीमारी दूर होकर वह स्वस्थ नहीं हो जाता तब तक प्रभु के दर्शन कठिन हैं। उसे पाने के जितने भी उपाय हैं उन सबमें स्वार्थ लेशमात्र भी नहीं होना चाहिए। स्वार्थ एक प्रकार की ज़हरीली धातु है जो मनुष्य की आत्मिक शक्ति को नष्ट करके भले कामों के मार्ग में रुकावट डाल देती है। स्वार्थ भक्त को श्रद्धा-रहित बना देता है और यह हर एक को सत्य-मार्ग से हटा देता है। इसने ही बाक़ायदा को बेकायदा बना दिया है। इसने ही सेवा के उत्तम नियम को निकृष्ट बना दिया है। स्वार्थ ही प्रेम को वैर में बदल देता है। जब मनुष्य बुरे कामों में पड़ जाता है फिर वह किसी की शिक्षा की बात भी नहीं सुनता, इसलिए खुदी (स्वार्थ) और खुदा (प्रभु) का वैर है और ऐसी दशा में ईश्वर को पाना बहुत कठिन है। जिसने अपने पुरुषार्थ और शुभ विचारों से स्वार्थ को मिटा दिया उसने अज्ञानरूपी परदे को, जो उसने अपनी मन्द-बुद्धि से खड़ा कर लिया था, उठा दिया। जो प्रभु को जानता है वह न निर्धन है न धनवान् है, वह न किसी से डरता है न किसी को डराता है। उसके पास प्रकाश है जिससे अश्रद्धा और अन्धविश्वास दूर ही रहता है। वह प्रभु के समीप है और बुराई से दूर है। उसने सत्य-ज्ञान के विश्वास से उच्च सीढ़ी को प्राप्त किया है। उसने अपनी बुद्धिमता से भलाई और बुराई की पहचान करली है। सांसारिक लोभ माया में पड़कर मनुष्य की दृष्टि कुछ बदल जाती है, फिर उसका मन दूसरों के सुख की परवाह नहीं करता और बुरे मनुष्यों की सङ्गत करने लग जाता है। यह सत्य है कि माया अच्छे भले को अन्धा बना देती है और फिर उसको समझाना निष्फल होता है और उसका सत्य मार्ग पर आना असम्भव है।

लोभ ने ही संसार को झूठ बोलने की आदत डाली है। लोभ मनुष्य के मन को इस प्रकार जाल में फँसाता है जैसे मक्खी शहद पर बैठते ही

पँख मारकर फँस जाती है और फिर उसको स्वतन्त्र होने की कोई सूरत नज़र नहीं आती। इसी प्रकार लोभ के बढ़ जाने से संसार दु:खों का घर बन जाता है। **महाभारत के युद्ध में यही एक बात थी। उस समय के विद्वानों, नीतिज्ञों और बहादुरों की सब शक्ति लोभ में ही उलझी हुई थी।**

सन्तोष को बढ़ाकर लोभ से पीछा छुड़ाकर मनुष्य उच्च श्रेणी को प्राप्त करता है। बुद्धिमान् इसके लिए प्रयत्न करते हैं। इस जीवन के तत्त्व को समझकर फिर वह बार-बार कहाँ मरते हैं? दुनिया का लोभ मनुष्य को हेर-फेर के साथ सांसारिक बन्धनों में ही लाता है और जो बुद्धिमान् इसको छोड़ देता है और इसको बुरा जानकर इससे सम्बन्ध तोड़ देता है उसको मोक्ष प्राप्त होता है।

लोभ हर प्रकार के बुरे कामों का केन्द्र है। **भले काम में रुकावट पैदा करना लोभी के बाएँ हाथ का खेल है।** वह दूसरों को सुख-सम्पन्न देखकर दु:खी हो जाता है और दु:ख में देखकर प्रसन्न होता है। वही मनुष्य बुद्धिमान् है जो इस बुरे स्वभाव से स्वतन्त्र है, उसका कभी भी कहीं नाश अथवा बाल बाँका नहीं होता।

हिरस[1] को तू छोड़कर दिलशाद[2] हो,
तोड़ इस जञ्जीर को आज़ाद हो।

ओं भद्रं नो अपि वातय मनः ॥ —ऋग्वेद १०।२०

परमात्म-विचार

ईश्वर का भारत जो होता पुजारी।
न भूखों से मरता न बनता भिखारी॥
विद्या के प्रकाश में जाग जाता।
अविद्या से अपना पीछा छुड़ाता॥
ईश्वर के नियमों को उसने भुलाया।
फिर अज्ञान ने उसको आकर सताया॥
चला उल्टे रास्ते सीधे को छोड़कर।
बना सारा फिर देश दु:खों का घर॥
कभी ऐसी हालत न होती हमारी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी॥ १॥
दुर्बल हो या कोई बलवान् होवे।
निर्गुण हो कोई या गुणवान् होवे॥
धनी कोई होवे या धन-हीन होवे।
मूर्ख या विद्या में प्रवीण होवे॥

---

१. लोभ। २. ख़ुश।

सकल विश्व का है यही एक स्वामी।
सभी नामों में है वही नेक नामी॥
वही एक ईश्वर है सब नारी-नर का।
इसी को पता सबके घर-बार दर का॥
दुःखों से होता न हरगिज़ दुःखारी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी॥ २॥
उसी ने यह संसार सारा बनाया।
वेदों ने इसकी ही महिमा को गाया॥
जिधर देखोगे तुम उठाकर नज़र।
कोई §ज़र्रा हो या शमसो कमर ¤॥
इशारा उसी का यह करते सदा।
बिना उसके सकता न कोई बना॥
हर इक चीज़ में राज़ उसका छुपा।
ज़रा गौर से देख होता अयाँ †॥
उसकी है हर रंगत में चमत्कारी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी॥ ३॥
भूला हुआ भटकता फिर रहा।
कष्टों से रोता है आँसू बहा॥
मुसीबत दिनों दिन बढ़ी जा रही है।
करे क्या जब हो उल्टी मती॥
बुरे कर्मों का जब मिलता है फल।
समझ उल्टी हो यह है नियम अटल॥
उल्टे को सदा वह सीधा है मानता।
सीधी को उल्टा सदा जानता॥
न दुःखों से करता कभी आहोज़ारी¶।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी॥ ४॥
जो अपने ही हाथों से बरबाद है।
उसे कौन कर सकता आबाद है॥
अधूरे लिये अपने मारग बना।
चला जल्दी जल्दी कदम को बढ़ा॥
हुई दूर मंज़िल गिरा हार कर।
हिम्मत गई उसको लाचार‡ कर॥
सिर को पकड़ फिर वह रोने लगा।
आँसू बहा मुख को धोने लगा॥

---

§ कण। ¤ सूर्य-चन्द्र। † प्रकट। ¶ रोना-धोना। ‡ विवश।

बिगड़ी हुई बात बन जाती सारी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी॥५॥
कहाँ ईश का होता अवतार है।
अकल की कमी का यह इज़्हार¶ है॥
बनाता है जो सारे संसार को।
कहो कैसे फिर उसका अवतार हो॥
सकल विश्व में रम रहा सबका प्यारा।
विचित्र है फिर भी रहे सबसे न्यारा॥
जो अवतार का करता इक़रार है।
सचाई से साफ उसका इन्कार है॥
न आती कभी देश पर विपदा भारी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी॥६॥
कई किस्म की मूर्त्ति को बनाया।
फिर मन्दिरों में जा उनको बिठाया॥
लगे लोगों को उसकी महिमा सुनाने।
मुफ़्त माल उड़ाने के सीखे बहाने॥
फँसा फिर अविद्या के यह जाल में।
तड़पता है यह देखो बद हाल में॥
नहीं भेद सच-झूठ में उसने जाना।
करी भूल उसने जो पूज्य उसको माना॥
ऐसा कभी यह न बनता अनाड़ी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी॥७॥
खड़ा जल के आगे कोई हाथ जोड़।
सचाई से लिया नाता अपना ही तोड़॥
कोई वृक्ष के आगे कुछ कह रहा।
फिर बैठकर देता सिर को झुका॥
बेसमझी के सब काम करने लगा।
दिन-रात आपस में लड़ने लगा॥
मुश्किल है अब इससे पीछा छुड़ाना।
है मुश्किल अब आज़ादी का हाथ आना॥
न होती कभी दूर आज़ादी प्यारी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी॥८॥
नहीं क़ौम जाति में है सँभलने की शक्ति।
जिनके प्रभु हों बड़ और पीपल॥
न उस जाति में है सँभलने की शक्ति।
करती फिरे जो है मुर्दों की भक्ति॥

¶ प्रदर्शन।

बुरी रस्मों ने होवे जिसको दबाया।
झगड़ों ने हो अपने बल को बढ़ाया॥
बुरी रीत यह एक सबसे बड़ी।
मुसीबत को लाती हैं सिर पर कड़ी॥
न बन्धन में फिर आता यह बारी सारी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी॥ ९ ॥
वेदों में ईश्वर को ऐसा बताया।
वह भरपूर सब जगत में समाया॥
कहा सर्वदेशी को इक देश में।
व्यापक को इन्सान के देश में॥
बना ऐसी बातें जगत को हँसाया।
इन्साँ के दर्जे से खुद को गिराया॥
अविद्या से हरदम यह डरने लगा।
जो कुछ सूझा उसको वह करने लगा॥
न फिर देश भारत की होती खवारी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी॥ १० ॥
जन्म जिसका होवे वह मर जाता है।
न्याय यही सबको सिखलाता है॥
अगर अकल है तब इसे मान लो।
किये वेदों के इसमें प्रमाण लो॥
वह है विश्वकर्मा अजन्मा सदा।
पवित्र है निर्मल है वह सर्वदा॥
वही सृष्टि सारी का आधार है।
उसी की ही रचना यह संसार है॥
बढ़ती न फ़िर देश में यह बेकारी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी॥ ११ ॥
हिरण्यगर्भ उसको कहीं है बताया।
उसी में यह ब्रह्माण्ड सारा समाया॥
यही नियम न्याय है उसका अटल।
करे जैसा कोई मिले वैसा फल॥
निराधार वह सबका आधार है।
विचित्र, पवित्र, निराकार है॥
वह माता पिता सबका भ्राता वही।
वही पूज्य है सबका त्राता वही॥
अविद्या न आती फिर इसके अगाड़ी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी॥ १२ ॥

उसे सच्चिदानन्द कहते हैं वेद।
करो पूजा उसकी होवें दूर खेद॥
अद्‌भुत विचित्र अनोखी है जीज़।
वही समझें उसको जो हों बातमीज़॥
सूक्ष्म से सूक्ष्म महान् से महान्।
पूर्ण है निर्दोषी उसका ज्ञान॥
जब इसके लिए नहीं उसकी तलाश।
फिर इसके मिलने की हो कैसे आश॥
बिगड़ने की भारत न करता तैयारी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी॥ १३॥
वही सबका आदि वही अन्त है।
समझे वही सच्चा जो सन्त है॥
सीने से कीने ‡ को जो करे दूर।
वही देखेगा दिल में अपने ज़हूर § ॥
दुनिया के उल्फ़त में जो गिर रहा।
नहीं मिलता उसको यह सच है कहा॥
वह नज़दीक तू ढूँढता उसको दूर।
पड़ा अक़्ल तेरी में यह है फ़ितूर॥
पराधीनता से न होती लाचारी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी॥ १४॥
वह है शुद्ध निर्मल है, वह सर्वदा।
पवित्र कहें वेद उसको सदा॥
वह है रम रहा सबमें भरपूर होकर।
वह नज़दीक है देखे तू दूर होकर॥
तू ढूँढे जिसे बैठा वह तेरे घर में।
है भूला भटकता है तू दरबदर † में॥
प्रभु सङ्ग प्रीति तू दिल से लगा ले।
तो घर बैठे ही तू उसको हृदय में पा ले॥
न फूलों की फिर सूखती यह क्यारी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी॥ १५॥
असल की भी होती है लेकिन।
नकल जिसकी होवे नहीं वह असल॥
बहुत किस्म £ की मूर्त्ति को बनाया।
फिर भी न भारत को सन्तोष आया॥

‡ ईर्ष्या-द्वेष। § प्रकाश। † घर-घर। £ प्रकार।

क़बरों का भी बन गया यह पुजारी।
मिली मिट्टी में आबरू इसकी सारी॥
आ जावे जिसकी अक़ल में खलल।
नहीं रास्ती में फिर उसका दलल॥
नहीं बात यह इसने मन में विचारी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी॥ १६॥
जिसने है ईश्वर को मन से भुलाया।
दु:खों ने फिर उसको आकर सताया॥
प्रभु-पूजा में जो हैं करते यतन।
करें प्रेम वे सबसे होकर मगन॥
यह सन्देश देता है संसार सारा।
वही सबका मित्र वही सबका प्यारा॥
इसे भूलकर किसने है सुख उठाया।
वह वेदों के उपदेश ने है बताया॥
मानों उसी को है कल्याणकारी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी॥ १७॥
ऋषी-मुनियों की बात को जान लो।
यह है सत्य मारग इसे मान लो॥
तेरे मन में उसको सदा है निवास।
फ़िरे ढूँढता जिसको वह तेरे पास॥
खबरदार हो इससे तू बेखबर।
इससे भटकता फिरे दरबदर॥
वह हर दम तुम्हें कर रहा है इशारा।
इधर आ, क्यों फिरता है मारा-मारा॥
पूर्व पुरुषों की रीति है इसने विसारी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी॥ १८॥

इस अद्‌भुत अपार संसार को देखकर परमात्मा की महान् महिमा का ज्ञान मन में स्वयं उत्पन्न होता है। वह इस सर्व संसार का आधार है, उसके ही प्रभाव से प्रत्येक वस्तु में प्यार है और उसको भूलकर मनुष्य हर प्रकार से दु:खी होता है। जीवन के लिए सामग्री की ज़रूरत थी उसने अपनी कृपा से प्रत्येक को उसका दान दिया और साथ ही यह भी बता दिया कि मुझे भूलकर अपना जीवन न बिताना। भक्ति वह शुभ कर्म है कि संसार का कोई भी काम इसकी बराबरी नहीं कर सकता। सांसारिक वस्तुओं के सेवन से जो फल प्राप्त होता है उसका सम्बन्ध संसार के साथ ही है। वह ज़्यादा

देर तक नहीं रहता, वह तो नाशवान् है, और जो परमात्मा की याद से फल निकलता है वह सदैव स्थिर है और उसके बराबर का कोई नहीं है, परन्तु मनुष्य उसको भूल जाता है। परमेश्वर की याद मनुष्य को प्रसन्न कर देती है। यह इसे शुभ-कर्म करने के लिए आगे बढ़ाती और बुरे कर्म से पीछे हटाती है। उपकार भुला देनेवाले का संसार में नाम नहीं होता। वह इससे स्वयं सताया जाता है और अन्त में पश्चात्ताप करता है, परन्तु फिर भी कुछ बन नहीं पाता है। कोई मनुष्य किसी का उपकार करता है और कोई किसी के साथ सहानुभूति करता है, कोई किसी को ज़रूरत के समय आराम पहुँचाता है और कोई गिरते हुए को हाथ का सहारा देकर उठाता है। किसी ने किसी को कोई सहायता दी और किसी ने दूसरे को नेक राय दी। ऐसा देखने में आता है और संसार का कार्यक्रम इससे अच्छा चलता है। कोई एक मनुष्य न सबसे सहायता ले ही सकता है और न कोई सबको सहायता दे ही सकता है। यह बात कठिन है और न सब मिलकर सबसे सहायता ले सकते हैं और न दे ही सकते हैं। परस्पर सहायता से ही संसार चल रहा है।

परन्तु एक परमात्मा सबका अन्तरात्मा, प्राणिमात्र का सहारा, सब में व्यापक और सबसे न्यारा है। कोई भी चीज़ ऐसी नहीं है जो बिना इसकी सहायता के अपनी हस्ती (व्यक्तित्व) को स्थिर रख सके। फिर ऐसे दाता के दान को भूल जाना, ऐसे प्रभु को ध्यान में न लाना स्वयं ही अपने को प्रमाद में फँसाना है। यह बुद्धिमानों का काम नहीं, यह विद्वानों का सन्देश नहीं। यह काम तो सहज था पर ग़लती से अपने विचार को इधर से हटा लिया, जिससे शुभ काम में सुस्ती और बुरे काम में चुस्ती होना ज़रूरी था। समय हाथ से जाता रहा और इस प्रकार मित्रों को रुठाकर वैरियों को हँसाता रहा।

सत्य है, भूल से जो कार्य किया जाता है उसका फल कब सामने आता है, यह मनुष्य नहीं जानता। यह भी सत्य है कि सांसारिक लोभ सबको इस संसाररूपी जाल में फँसाता है—अपनी चतुरता से सबको सत्य-पथ से हटाकर कुमार्ग पर ले-जाता है। यह सांसारिक लोभ हर समय मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं। मनुष्य जानता हुआ भी इनके फेर में पड़ा रहता है। यह लोभ हर समय मनुष्य को धोखा देते हैं। यह मनुष्य के लिए मित्र के भेष में शत्रु हैं। जब पहले-पहल मनुष्य इसके चक्कर में फँसता है तो आस्तिकता को छोड़कर नास्तिकता की ओर बढ़ता है, पाप-पुण्य में भेद नहीं कर सकता। तृष्णा देखने में अमृत, परन्तु असल में विष से भी बुरी है।

विद्वान् पुरुष सच बोलते हैं। उनको सत्य से प्रेम होता है। प्रभु को सत्य से प्रेम है इसलिए वे परमात्मा के समीप होते हैं। उनका कथन है

कि जब सांसारिक लोभों की वासना जाती रहती है, तो मनुष्य के भीतर ज्ञान की वृद्धि हो जाती है। फिर उसे प्रत्येक वस्तु अपने वास्तविक रूप में दृष्टिगोचर होती है। अन्तरात्मा की शुद्धता आत्मा को परमात्मा से जा मिलाती है। मनुष्य का वास्तविक रूप यही था। यहाँ पर ही मनुष्य का कार्य समाप्त हो जाता है, परन्तु इस कार्य के लिए जितना परिश्रम करना चाहिए, यह इसका इतना प्रेमी नहीं। जितनी चाह से इस ओर बढ़ना चाहिए, यह इसके लिए तैयार नहीं। इस समस्या को हल करने के लिए केवल आत्मा की शुद्धि चाहिए। इसके बिना हर परिश्रम निष्फल है। यह मूल्य की वस्तु नहीं, यह बाहरी योजना नहीं। वह तो मनुष्य के अन्तरात्मा की आवाज़ है, जो इसको फलदायक बना देती है। ईश्वर आस्तिकों के लिए न तो कहीं से आता और न नास्तिकों से परे हटकर कहीं जाता है। वह तो सर्वव्यापक है, हर स्थान पर, हर समय उपस्थित है। मनुष्य! तू उसको पाने के लिए कहाँ ढूँढ रहा है? वास्तव में वह तो तेरे भीतर ही है, परन्तु तू उससे असावधान है, वह तो तेरे घर में है, परन्तु तू उसे ढूँढने के लिए बाहर घूम रहा है, वह तो हर समय चेतन है, परन्तु तू उससे अचेत है। तू संसार में छुपा है, परन्तु वह विद्या में प्रकट है। वह परमपिता परमात्मा हर समय एकरस में ही रहता है, परन्तु तू अपने झूठे विचारों के कारण उसे नहीं पा सकता।

यह सब भूमण्डल उसी से उत्पन्न और उसी में समाप्त हो जाता है, परन्तु वह इन दोनों अवस्थाओं से विरक्त है।

वह एक है, क्योंकि दूसरा कोई उस-जैसा नहीं है। वह दूर-से-दूर और समीप-से-समीप है। बड़े-से-बड़ा और छोटे-से-छोटा है। यही कारण है कि जो सूक्ष्म दृष्टिवाले हैं वे उसे देख सकते हैं, परन्तु जो स्थूल दृष्टिवाले हैं वे इससे दूर भागते हैं। जो इसका इच्छुक है, वह साहसवाला है, क्योंकि आलस्य परमात्मा को नापसन्द है। विद्या, सन्तोष और नम्रता साहस को बढ़ाते हैं, ईर्ष्या, द्वेष आदि साहस को घटाते हैं। इसलिए मनुष्य को शुभ कर्मों में मन लगाना और दुष्कर्मों से मन हटाना चाहिए। मनुष्य को ऐश्वर्य, धन, सुख-सम्पत्ति भोगते हुए परमात्मा को धन्यवाद देना चाहिए और दुःखित अवस्था में भी सन्तोष को कभी हाथ से नहीं छोड़ना चाहिए। इस प्रकार रहने से हृदय-दर्पण शुद्ध और मन साफ रहता है। अहंकारी और लोभी पुरुष यह सुनते ही डरता है। लोभ एक प्रकार का व्यसन है, जिससे भला-चंगा मनुष्य भी व्यसनी होकर उल्टे मार्ग पर चल पड़ता है। व्यसनी पुरुष की तृष्णा बहुत बढ़ जाती है। वह दूसरों को सुख में देखकर ईर्ष्या वश होकर घबराता है। जैसे भिखारी का पात्र कभी नहीं भरता, वैसे ही लोभी पुरुष को कभी सन्तोष नहीं होता। ऐसी अवस्था में परमात्मा का मिलाप कहाँ? तृष्णा, लोभ एक प्रकार का फन्दा है जिसमें एकबार फँसकर फिर उससे छुटकारा असम्भव है। सन्तोषी पुरुष को इसका ज्ञान है। प्रभु-भक्तों

के लिए वह हर स्थान पर है। वह एकदेशी नहीं, परन्तु हर देश व हर वस्तु में हर समय रम रहा है। परमात्मा सत्य है, वह प्रेम है, तुम भी इससे प्रेम करो। सँभलने का समय है, सँभलो और अपना उद्धार करो। वह एक-रस रहनेवाला है, कभी बदलता नहीं। इधर-उधर, जिधर चाहो ढूँढो, परन्तु जब तक अन्तरात्मा की शुद्धि नहीं होती तब तक उससे मिलाप नहीं हो सकता। जो जिज्ञासु उसको पवित्र मन तथा सच्चे मन से चाहता है, जिसका हृदय शुद्ध तथा मन-अन्तरात्मा इन सांसारिक प्रलोभनों से दूर है, जो मनुष्य उसके प्रेम में हर समय मग्न है—वह उसे अपने अन्तरात्मा के भीतर ही देख लेता है।

ऐसा शक्तिशाली व्यक्ति जो हर प्रकार से सम्पूर्ण है, जिसमें कोई त्रुटि नहीं—उसका पता सबसे पहले हमें वेदों ने दिया। वेदों ने हमें बताया कि यही इष्ट है, यही पूज्य है इसीकी उपासना करनी चाहिए, इसी को पाने का यत्न करो। वह एक है। वह सांसारिक तथा जाति आदि के बन्धनों से स्वतन्त्र है। ईश्वर की सामर्थ्य में यह बात मामूली है कि उसने सर्व संसार को रचा, परन्तु स्वयं रचना में न आया। उसका एक सर्वश्रेष्ठ नियम है—सृष्टि की उत्पत्ति के समय भले-बुरे का ज्ञान कराना और बाद में कर्मानुसार जैसा किसी का कर्म हो, न्यायपूर्वक दण्ड या फल देना उसका ही कर्त्तव्य है। वह अपने श्रेष्ठ गुणों के कारण सदा श्रेष्ठ है, परन्तु मनुष्य को भूल सताती है और उसे पथभ्रष्ट कर देती है। परमेश्वर के असली स्वरूप को न जानने के कारण प्रकृति तथा जड़ पदार्थों की पूजा आरम्भ हुई। जो मनुष्य असली तत्त्व को न मानते हुए गुणों को ही अपना उपास्य देव मानना कर्त्तव्य समझते हैं वे बार-बार इसी संसार में चक्कर लगाते रहते हैं। सत्य है जो मनुष्य सत्य-मार्ग को छोड़कर कुमार्ग को अपनाता है, उसको कभी भी निर्दिष्ट पथ प्राप्त नहीं होता। जो मनुष्य सत्य और असत्य के भेद को जानकर सत्य को अपनाता है उससे कभी दुष्कर्म नहीं होने पाता, क्योंकि उसे ज्ञान है कि अमुक कार्य प्रकृति के नियम के विपरीत है, इसलिए ज्ञानप्रकाश मनुष्य को ऊपर उठाता और अज्ञानरूपी अन्धकार मनुष्य को नीचे गिराता है।

दृढ़ता, साहस तथा स्फूर्ति ज्ञान का परिणाम है, दुष्कर्म, कायरता और आलस्य अज्ञान से उत्पन्न होते हैं। इसी कारण ज्ञान से प्रेम और अज्ञान से घृणा पैदा होती है।

भारतवर्ष वेदों का ज्ञान रखता हुआ भी इस समय मार्ग को ऐसा भूला कि अज्ञान में उसे जो कुछ भी सूझा उसी को पूरा करना वह कर्त्तव्य समझ बैठा। इससे धीरे-धीरे भेद बढ़ने लगा। किसी ने एक प्रकार की मूर्त्ति बनाई तो दूसरे ने उसको दूसरे ही ढङ्ग में बना लिया। इस अन्धपरम्परा ने बढ़कर देश को बहुत हानि पहुँचाई, देश को हर प्रकार के कष्टों से भर दिया। कोई शिव-पूजन में कल्याण मानता है तो कोई विष्णु के दर्शन से मोक्ष मानता

है, एक गणेश के आगे शीस झुकाता है तो दूसरा देवी की चौखट पर मस्तक रगड़ता है, कोई हनुमान् को अपना इष्ट मानता है तो दूसरा गङ्गा स्नान में ही मुक्ति ढूँढता है। भारतवर्ष की इस बेढंगी चाल का कोई पता नहीं चलता। कुछ सन्तोष होता, यदि देशभर में एक प्रकार की मूर्त्ति का ही निर्माण होता। एक ही प्रकार से पूजन होता तो भी कुछ अंश तक एकता बनी रहती। आर्यसमाज तो मूर्त्तिपूजन के विरुद्ध है। इसकी दृष्टि में वह असत्य है। भारत के मनुष्यों ने करोड़ों रुपये के व्यय से मन्दिर बनाये, परन्तु आपस में द्वेष बढ़ने के अतिरिक्त हाथ कुछ न आया। यह सबको ज्ञात है कि इस समय देश की क्या अवस्था है। न धन है, न बल और न बुद्धि। अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। दुर्बलता के कारण अब इसका सँभलना कठिन है। वह अपने यथार्थ स्थान पर कैसे आ सकता है जबकि कुछ ही समय के पश्चात् कोई-न-कोई सम्प्रदाय खड़ा हो जाता है और सहस्त्रों नर-नारी बिना सोचे-समझे उसके पीछे लग जाते हैं। ईश्वर-प्राप्ति और इस संसार से छुटकारा पाना ही सबकी इच्छा होती है। अज्ञानी होने के कारण न तो कोई पूछता है और न इसपर विचार ही करता है कि यदि जिस पथ को उसने अब अपनाया है, सत्य है, तो वह पहले ग़लत पथ का ही परित्याग कर दे, परन्तु ऐसा नहीं होता। यह पहले पथ का भी परित्याग नहीं करता और जीवन से भी चिमटा रहता है। आर्यजाति में यह एक अद्भुत बखेड़ा है जिसका निर्णय होना कठिन है।

विचारने से पता चलता है कि जिस प्रकार घुड़-दौड़ में जब घोड़े को खाइयाँ या टट्टी पार करनी होती है उस समय घोड़ा अपना पूर्ण बल और वेग लगाता है। ठीक उसी प्रकार से चिरकाल से आर्यजाति के साथ अज्ञान लगा हुआ है। अज्ञान के हाथ अब समय आया है और समय को पाकर यह अपना सब बल इस जाति को नष्ट करने में लगा रहा है। आप विचार करके देखें कि हिन्दू, आर्यजाति के नाम लेवा दिन प्रतिदिन कैसे दुर्बल होते जा रहे हैं।

हे मित्र! यदि इस अज्ञान से आप अपना छुटकारा चाहते हैं तो एक ईश्वर के पुजारी बनो। वह दुःखहर्त्ता और कष्ट-मोचक है।

अपने भक्तों के कष्टों को शीघ्र दूर कर देता है, यदि वे सच्चे और पूरे भक्त हों तो। यह वेदों का उपदेश बड़ा हितकारी है। इस देश या जाति में अज्ञान का बल कितना बढ़ा हुआ है, इसे आप विचार-दृष्टि से देखें।

(१) जो सब ब्रह्माण्ड का स्वामी और सबको अपने बस में रखता है, उसका नाम गणेश या गणपति है। यह तो ठीक है, परन्तु जब यह पूछा जाए कि मन्दिर में एक मूर्त्ति को दिखाकर यह कहना कि बस, यह मूर्त्ति ही अनन्त शक्ति है, इसी की पूजा करने से कल्याण होता है। यह एक ऐसी कल्पना है जिसे कोई भी बुद्धिमान् पुरुष मानने से इन्कार करेगा।

(२) शिव या महादेव उसे कहते हैं जो कल्याण का स्वरूप हो और व्यापक हो, जिसका स्मरण मङ्गल-करण और अमङ्गल-हरण हो। इस विषय में वेद-शास्त्रों की तो यही सम्मति है, परन्तु आजकल लोग एक पाषाण-पिण्ड को मन्दिर में धर कर उसे ही महादेव कहकर पूजते हैं। देखिए, कैसा उल्टा ज्ञान है!

(३) विष्णु सर्वव्यापक परमात्मा का नाम है। वह सर्वजगत् का आधार, निराकार और निर्विकार है। उसका ध्यान करना मनुष्य के लिए कल्याणकारी है, यह सब बिलकुल सत्य है, परन्तु एक मन्दिर में सुन्दर चतुर्भुज मूर्त्ति को विष्णु बनाकर पूजना कैसी मूर्खता है। इसी प्रकार और भी कई बातों में आजकल उल्टी गङ्गा बह रही है।

तीर्थस्थानों की भी ऐसी ही अवस्था है। वहाँ अन्धविश्वास ने राज्य जमाया हुआ है। लोग तो दूर-दूर से बड़ी श्रद्धा से सैकड़ों कोस चलकर, धन खर्च कर तीर्थ पर पुण्य सञ्चय करने जाते हैं, परन्तु उन्हें बुरी तरह निराशा होती है। पुराणों की मिथ्या बातें सुनने से वैदिक ज्ञान भी उनके हाथों से जाता रहता है। इसी का दुष्परिणाम आज हम देख रहे हैं। पहले का समय आर्यजाति के लिए कितना सुखमय था। अब तो उसका ध्यान में आना ही दूर की बात है। आर्यों की उन्नति के निम्नलिखित कारण थे—

(१) सब संसार का रचयिता, सर्वप्रकाशक, सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक परमेश्वर ही आर्यों का उपास्य देव था। उनका यह अटल विश्वास था कि ईश्वर शरीर-रहित और अद्वितीय है। संसार की उत्पत्ति, स्थापना और नाश उसी के हाथ में है। न्यायपूर्वक सब प्राणियों को कर्मानुसार फल देना उसका स्वभाव है। इसलिए उसकी आज्ञा का पालन करना मनुष्यमात्र के लिए कल्याणकारी है। इसी कारण उस प्रभु की प्राप्ति के लिए यत्न करना वे कर्त्तव्य मानते थे और उन पाप-कर्मों से दूर ही रहते थे जो प्रभु-प्राप्ति के मार्ग में बाधक सिद्ध हों—

स एष एक एकवृदेक एव॥ —अ० १३। ४(१)१२

यह मन्त्र भी उपर्युक्त बात का सूचक है।

(२) आर्य सत्यवादी और सत्यकारी थे। राग-द्वेष से झूठ बोलना इनका स्वभाव न था। इसी कारण प्रतिज्ञा पालन करना उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय था। निम्नलिखित मन्त्र इसी बात का बोधक है—

इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि॥ —यजु:० १।५

(३) कर्त्तव्य-पालन तो उनके लिए नित्य का स्वभाव हो गया था। संसार की कोई भी वस्तु उन्हें उनके उद्देश्य से नहीं हटा सकती थी। इसका कारण यह था कि वे कार्य करने से पहले उसके परिणाम को अवश्य ध्यान में रख लेते थे और उस वचन को मुँह से निकालते ही न थे, जिसे पूरा

करने में वे समर्थ न हों। निम्न मन्त्र इसी बात का ज्ञापक है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि ।। —यजु:० ४०।२

(४) मनुष्यसमाज में रहकर उनके द्वारा किसी को अन्याय से कष्ट न पहुँचे, उन्हें इस बात का सदा विचार रहता था। उनके अन्त:करण पवित्र थे, उनकी भावना उच्च थी। वे परोपकार को कर्त्तव्य और उपकार न करने को पाप समझते थे। कहा भी है—

आयुर्यज्ञेन कल्पन्ताम् ।। —यजु:० ९।२१

(५) वे स्वयं न्याय का अनुसरण करते थे और अन्यों को कराते थे। उनका यह अटल विश्वास था कि जहाँ न्याय का प्रकाश है वहीं प्रभु का निवास है, इसलिए अन्यायमूलक पक्षपात से दूर रहना वे मनुष्य-जीवन का फल मानते थे।

अग्ने नय सुपथा ।। —यजु:० ४०।१६

(६) दुराचार के दूर करने और सदाचार के बढ़ाने में आलस्य को त्यागकर यत्न करना उनका स्वभाव था। उनका यह विश्वास था कि दुराचार में पड़कर मनुष्य-समाज पराधीन हो जाता है, और सदाचार से उत्त्थान और निरन्तर उन्नति करके स्वाधीन हो जाता है, अत: सदाचार से जिस प्रकार उन्हें प्यार था, उसी तरह दुराचार से वैर था—

तन्मे मन: शिवसङ्कल्पमस्तु ।। —यजु:० ३४।१

(७) आर्यों ने निरन्तर वेदादि शास्त्रों के अभ्यास से स्वास्थ्य के सर्वोत्तम नियमों पर आचरण करना अपना धर्म मान रखा था और इसीलिए वे नीरोग, सुन्दर और सुडौल बने रहते थे और कभी बीमार हो जाने पर साधारण दवाई अथवा थोड़े परहेज़ से ही उनकी तबियत ठीक हो जाती थी। उनका यह पूर्ण विश्वास था कि दुर्बलता ही सब दु:खों और पापों का कारण है। इसलिए स्वास्थ्य को बिगाड़नेवाली बातों का कभी साथ नहीं देते थे। इसका प्रमाण यह है—

बलमसि बलं मयि धेहि ।। —यजु:० १९।९

(८) उदारता आर्यों के स्वभाव में उनके नियमों से प्रकट होती है। कोई भी पुरुष अपने पुरुषार्थ से जैसे गुण-कर्म-स्वभाव बना लेता था, समाज में उसे वैसा ही स्थान दिया जाता था। इस प्रकार प्रत्येक को उन्नति करने का अधिकार था और वर्णव्यवस्था की मर्यादा का मार्ग बड़ा ही सरल था। यदि भूल अथवा प्रमाद से उनमें कोई दोष आ भी जाता था तो वे बड़ी सावधानी से अपना पीछा छुड़ा लेते थे।

(९) आर्यपुरुष कभी भी प्रभु-उपासना में किसी सांसारिक वस्तु की याचना नहीं करते थे। उन्हें निश्चय था कि जो वस्तु अपने पुरुषार्थ से प्राप्त हो सकती है उसे परमेश्वर से माँगना भूल है, अत: प्रात:-सायं वे ऐसे वचन

मुख से निकालते थे कि हे प्रभो! आपका वियोग हमें बार-बार संसारचक्र में फँसाता है। आपका संयोग मोक्ष में ले-जाकर सदा हँसाता है, इसलिए हमें आपके दर्शनों की बड़ी अभिलाषा है।

यस्तन्नवेद किमृचा करिष्यति॥ —ऋ० १।१६४।३९

(१०) आर्यों ने वैदिक ज्ञान से आश्रमों के नियमों को इतना सरल बना दिया था कि जिनके पालन करने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति में सबको प्रेम था, इसलिए संसार सुखी और शान्तिप्रिय भी था। मृत्यु से पूर्व ही वे सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो शरीर-त्यागना अपना सौभाग्य समझते थे और सांसारिक मोह में पड़कर रोते हुए शरीर-त्यागना बन्धन का कारण जानते थे। संन्यास आश्रम इस नियम का प्रकाशक है—

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति॥ —अ० १९।४३।८

ईश्वर के साक्षात्कार के साधन

निर्लोभता

वेदों में मनुष्य जीवन के सुधार के लिए अनेक प्रकार के आदेश किये हुए हैं। कारण यह है कि यदि मनुष्य-जीवन सुधर जाए तो संसार समस्त प्राणियों को आराम पहुँचाता है। यदि मनुष्य का जीवन विकृत हो जाए तो उसके जीवन का प्रभाव प्राणिमात्र पर बुरा पड़ता है। बुद्धिमान् मनुष्यों ने एक-साथ मिलकर, एक-साथ बैठकर हानि और लाभ का विचार कर रक्खा है। जैसे देखो—

एक मनुष्य ने अच्छा मकान बनवाया। उसके दिल में ख्याल आया कि इसके कमरो में हरिण के सींगों की खूँटियाँ लगवाएँ। इस तरह का मूज़ी[1] ख्याल उसके दिल में आ गया। अब यदि वह शिकारी है और उसके पास बन्दूक है तो जङ्गल में जाकर हरिणों को मारना शुरू कर देगा। यदि खुद शिकार नहीं कर सकता तो दूसरे शिकारी लोगों से कहेगा कि यदि तुम मुझे हरिण के सींग लाकर दोगे तो मैं तुमको एक-एक सींग का एक-एक रुपया दूँगा। अब आप ही विचार कीजिए, सींगों के लिए बेचारे निरपराध हरिण योंही मारे जाएँगे। कमरे में खूँटियाँ तो चन्दन की भी लगाई जा सकती थीं जिनके अन्दर से खुशबू आती है अथवा किसी दूसरी लकड़ी वा किसी धातुविशेष की खूँटियों से भी उसके कमरे की शान बढ़ सकती थी, क्योंकि उसको खूँटियों पर कपड़े ही तो टाँगने थे, लेकिन उसके दिल में यह ख्याल पैदा हो गया कि नहीं, कमरे की सजावट तो हरिण के सींगों से ही हो सकती

---

१. दुष्ट।

है। उसके दिल में तो ऐसी भावना पैदा हुई, पर बेचारे जानवरों के ऊपर मुसीबत आ गई। मनुष्य-भावना का कैसा बुरा प्रभाव पड़ा है। आजकल तो मनुष्य का जीवन बहुत ही कटु हो रहा है। उसकी कटुता का बुरा प्रभाव मनुष्य पर भी है और बेचारे दूसरे पशुओं पर भी। अगर उसको सींगों की जरूरत रहती है तो वह सींग उखाड़ लेता है। अगर उसको चमड़े की जरूरत है तो वह फौरन चमड़ा खिंचवा लेता है और अगर उसको मांस खाने की आदत है तो वह बेचारे निरपराध हज़ारों पशुओं को मार डालता है। अब आप देख लीजिए कि सृष्टि परमेश्वर की है। उसने मनुष्य और पशुओं को बनाया है। पशुओं पर मनुष्य कितने अत्याचार कर रहे हैं। पशुओं ने कोई ज़मीन भी नहीं बाँटनी। उनको और किसी बात की भी जरूरत नहीं। उनके लिए तो जङ्गल के अन्दर ही खाना मौजूद है, परन्तु बाँटना है तो मनुष्यों को, धन की इच्छा है तो मनुष्य को। यदि कभी लड़ाई होती है तो मनुष्यों-मनुष्यों की आपस में होती है, परन्तु उनकी लड़ाई में बेचारे निरपराध पशु ही मारे जाते हैं। मनुष्यों ने ही दूसरों के धन के हरण करने की इच्छा से गैस, तोपें, बन्दूकें, बम आदि बनाये हैं। इनकी आपस की लड़ाई से हज़ारों निरपराध पशु मारे जाते हैं। इसलिए वेदों में उपदेश दिया गया है और आज भी उपदेश का सिलसिला जारी है। इस उपदेश का मतलब यही है कि किसी भी तरह से मनुष्यों की भावनाओं का सुधार हो। मनुष्यों की भावनाओं के सुधार में समस्त विश्व के प्राणियों का कल्याण है और उसके बिगाड़ में प्राणिमात्र को कष्ट-ही-कष्ट है। ये दुःख इतने क्यों होते हैं? आज दुनिया में स्वार्थ का बाज़ार बहुत गर्म है। स्वार्थ दुनिया में बहुत ही बढ़ा हुआ है। स्वार्थ ने बढ़कर इन्सान की विचार-शक्ति को मलिन और विकृत कर दिया है। हर एक इन्सान को लोभ और लालच ने इतना नीचा गिरा दिया है कि कहने की कोई बात ही नहीं। यह कम्बख्त लोभ की भावना कबतक बढ़ती जाएगी? आज हर एक मनुष्य में वेश्यवृत्ति काम करने लग गई है। लोग कहते हैं कि यह ब्राह्मण है पर वह ब्राह्मण कहाँ! वह कभी ब्राह्मण नहीं हो सकता जिसके अन्दर वैश्यवृत्ति हो, जो धन के लालच में पड़ा हुआ है। लोग कहते हैं कि यह राजपूत है, परन्तु वह राजपूत है कहाँ? वह कभी राजपूत नहीं हो सकता जिसके अन्दर वैश्यवृत्ति काम कर रही है। ब्राह्मण में वैश्यवृत्ति, क्षत्रिय में भी वैश्यवृत्ति हो गई है, वैश्य में तो वैश्यवृत्ति चाहिए ही थी। धन में लोभ होना ही वैश्यवृत्ति है। वैश्य का तो काम ही धन कमाना है, परन्तु आजकल तो शूद्रों में भी वैश्यवृत्ति हो गई है। अब यदि विचार करके देखो तो धन कोई बुरी चीज़ नहीं है, लेकिन अच्छी चीज़ होने पर भी यह तीसरे दर्जे की चीज़ है। यह तीसरे दर्जे पर ही अच्छी लगती है, पहले, दूसरे या चौथे दर्जे पर नहीं। जैसे—

एक बालक है, उसका काम है विद्या पढ़ना और शारीरिक शक्ति

बढ़ाना। जब शारीरिक शक्ति खूब बढ़ जाए और बालक जवान हो जाए तब उसकी शादी की जाती है। शादी कुछ बुरी चीज़ नहीं है, परन्तु वह जवानी में ही अच्छी रहती है। यदि जवानी आने से पहले बालकपन में ही शादी करदी जाए तो वह बहुत ही नुक़सान देनेवाली है। पीछे की चीज़ को पहले और पहले की चीज़ को पीछे करने से ही बुराइयाँ और तकलीफें होती हैं।

एक लड़का है, उसको पाठशाला में चार चीजें पढ़ाई जाती हैं। पहले जोड़ फिर घटा, तत्पश्चात् गुणा और फिर भाग करना। लड़के को पहले जोड़ सिखाने के बाद में ही घटा, गुणा और भाग करना सिखलाया जा-सकता है। अगर जोड़ के पहले ही बालक को भाग करना सिखाएँगे तो वह सङ्कट में पड़ जाएगा। क़ायदे के मुताबिक पहले लड़के को जोड़ का नियम ही सिखाते हैं, अर्थात् पहले उसको गिनती सिखाते हैं १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, तक। संख्या तो एक ही है उससे ९ तक बनी है। परमात्मा भी एक है। वेद-मन्त्रों में भी यही बताया है।

न द्वितियो न तृतीयो न चतुर्थो न पञ्चमः, इत्यादि

जोड़ सिखाने में पहले एक से सिखाना पड़ता है। सौ के आदि में भी एक है, मध्य में भी एक है और अन्त में भी एक है। परमात्मा भी एक है। असल संख्या तो एक ही है। एक सबमें मौजूद है, तीन में दो मौजूद है, लेकिन २ में ३ मौजूद नहीं है। ऐसी कोई भी संख्य नहीं है, जिसके अन्दर एक न हो। तीन, चार और नौ इन सब में एक-एक मौजूद है। यह समझ लीजिए कि एक और एक दो होंगे। वास्तव में तो एक ही एक है। अब देखें कि आगे चलकर संख्या ९ तक ही है। आप पूछेंगे क्यों? तो इसका उत्तर है नौ जो संख्या है यह पूर्ण संख्या है। एक जो संख्या है यह सर्वतन्त्र स्वतन्त्र संख्या है, क्योंकि यह ८ में, ९ में, ३ में ७ में सबमें ही पाई जाती है, क्योंकि ८-९ आदि संख्याओं की व्यावहारिक सत्ता है, परमार्थ में तो एक-ही-एक नज़र आता है। एक बात तो यह हुई। अब दूसरी बात यह है कि यह सर्वतन्त्र और स्वतन्त्र क्यों है? जो संख्या आदि, अन्त और मध्य में तथा सब जगह रहेगी वह सर्वतन्त्र और स्वतन्त्र संख्या कही जाएगी। ९ को पूर्ण संख्या क्यों कहते हैं? पूर्ण संख्या वही है जो अपने में न्यूनता न आने देवे। अफ्रीक़ी लोग जो सीमा पर रहते हैं उनके एक बच्चे से किसी ने पूछा कि—

तुम यह बताओ कि तुम अपनी क़ौम की कभी अपने स्वार्थ के लिए हानि करते हो या नहीं? तो उस बच्चे ने जवाब दिया कि हमारी कौम अगर सौ वर्ष तक किसी की गुलामी में रह जाएगी तभी हममें ये ख्याल पैदा होंगे। जो स्वतन्त्र आदमी है वह कभी परतन्त्र हो सकता है? वह हर तरह

से अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करेगा।

हम लोग वेद को माननेवाले हैं। हम अपने को ऋषि-मुनियों की सन्तान कहते हैं, ओम् का जप करते हैं, परन्तु जब तक हमारा व्यवहार न सुधरेगा, ओम् हमको ऊँचा नहीं उठा सकता। अगर हमारा व्यवहार ऊँचा उठ जाएगा तो हम भी ऊँचे उठ जाएँगें। अगर हमारा व्यवहार नीचे गिर जाएगा तो हम भी नीचे गिर जाएँगें। आप कहेंगे कि व्यवहार तो सैकड़ों प्रकार के हैं। हम किन-किन को शुद्ध करें? तो मैं आप लोगों से कहता हूँ कि आप तीन बातों को शुद्ध कर लें तो आपके सब व्यवहार सही हो जाएँगें। जो छोटे अर्थात् बच्चे हैं उनपर आप दया रक्खें और जो जवान आदमी, अर्थात् बराबरवाले हैं उनसे प्रेम रक्खें और जो बूढ़े लोग हैं उनकी इज़्ज़त करें। इन तीनों बातों पर जब आप अच्छी तरह अमल करेंगे तब फिर आप देखिए कि कौन-सा बुरा काम कर सकते हैं। अब जो आपसे बड़े होंगे उनकी तो आप इज़्ज़त करेंगे इसलिए उनके साथ कोई भी बुराई नहीं कर सकते और जो आपकी बराबरी के हैं उनके साथ आप प्रेम करते हैं इसलिए उनके साथ भी आप छल-कपट नहीं कर सकते, क्योंकि मुहब्बत के साथ कपट कैसा और आपसे जो छोटे हैं उनपर आप दया रक्खेंगे। कोई भी चीज़ आपके पास आई तो आप उसे पहले बच्चे को दिये बिना नहीं खा सकते हैं। इन तीन नियमों पर चलें तो संसार बन सकता है और काम, क्रोध और लोभ इन तीनों को त्याग देवें तो संसार बन सकता है।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।

श्रीकृष्णजी ने गीता में कह दिया है कि काम, क्रोध और लोभ इन तीनों को त्याग देने से मनुष्य सुखी हो सकता है, परन्तु आज प्रत्येक इन्सान में लोभ बढ़ गया है। पैसा होगा तो मोटर लूँगा, सिनेमा देख आऊँगा, आनन्द से रहूँगा, मौज करूँगा आदि-आदि। आज पैसे की इतनी कदर बढ़ गई है और परमेश्वर को संसार पीछे डाल रहा है इसी से इतने दुःख बढ़े हुए हैं, इसलिए ज्ञान ही का सबसे पहला दर्जा है। पैसा दुनिया के लिए अच्छी चीज़ है। पैसा लेन-देन व्यवहार के लिए बना है। आप मेरे पास से लेलें, मैं आपके पास से ले लूँ, परन्तु जो पैसा है—वह ज्ञान के साथ आता है। मनुष्य को यदि ज्ञान पैदा होगा तो पैसा अपने-आप आ जाएगा। फिर वह किसी के रोकने से नहीं रुक सकता।

यदि ज्ञान नहीं तब वह ईश्वर को नहीं देख सकता। देखो! एक सेठ है और उसके दो मुनीम हैं। एक की आयु करीब २४-२५ वर्ष की है और दूसरे की करीब २०-२१ वर्ष की। दोनों ही होशियार हैं, लेकिन सेठ एक को ४५) रु० और दूसरे को २५) रु० मासिक देता है। एक दिन २५ रु० पानेवाले मुनीम ने कहा—सेठ साहब! मुझे आप २५) रु० देते हैं और उसको

४५) रु० इसका क्या मतलब! देखो, हम दोनों बराबर हैं। दस्तख़त देख लीजिए दोनों बराबर हैं। जितनी देर यह काम करता है उतनी देर मैं भी काम करता हूँ। हम दोनों ही आपके नौकर हैं। जैसा यह शरीर से पुष्ट है वैसा ही मैं भी हूँ, तब यह भेद क्यों? सेठ ने कहा—इसके पास जो चीज़ है वह तेरे पास नहीं है। उसने कहा—क्या? सेठ ने उत्तर दिया—यह तेरे से बुद्धिमान् ज़्यादा है। मुनीम ने कहा--आप इस बात का इम्तिहान कर लीजिए। सेठ ने कहा—अच्छा, फिर नाराज़ तो नहीं होगे? 'नहीं' तो ठीक है, मौका आने पर कर लेंगे। थोड़े दिन के बाद जायफल लदे ऊँट आये। सेठ ने उस मुनीम को कहा कि जाकर पूछो कि ऊँट पर क्या चीज़ आई है और बेचना है या नहीं? मुनीम उसके पास गया और बोला—तुम्हारे पास क्या चीज़ है। उसने कहा—जायफल हैं। बेचेगा? हाँ, बेच लेंगे, बस इतना पूछकर वह चला आया और सेठ से बोला—जायफल हैं और बेचने को कहता है। अब सेठ ने दूसरे मुनीम को कहा—तुम जाकर पूछो। दूसरा उठा और बाजार में भाव पूछता गया कि जायफल क्या भाव है? एक ने कहा—डेढ़ सेर प्रति रुपया। मुनीन ने फिर पूछा-क्या तुम जायफल डेढ़ सेर के भाव से मोल ले-लोगे। उन्होंने कहा—नहीं। आखिर छटाँक ऊपर डेढ़ सेर पर तय हुआ। पचास रु०. का उस व्यापारी का आर्डर नोट किया। फिर दूसरे को पूछा, तीसरे को पूछा इस प्रकार सबका भाव लिख लिया। तब मुनीम उसको जाकर पूछा—क्या जायफल हैं? उसने कहा—हैं। बेचेगा? हाँ। कैस भाव बेचेगा? जैसे भाव बन जावेगा, बेच देंगे। अच्छा, दो सेर दोगे? नहीं, इतना नहीं देंगे। अन्त में एक छटाँक कम दो सेर तय हुआ। अब वह उन सब दुकानदारों को बुला लाया और सबों को जितना-जितना कहा था, तोल दिया और उनके पास से रुपया लेकर ऊँटवाले को दे दिया। छह-छह छटाँक का उसे नफा रहा। उसको लेकर उसने बेच दिया तो इस तरह दो सौ रुपये का नफ़ा उसे हुआ। वह दो सौ रुपये दुकान पर लाकर रख दिये। अब सेठ ने पूछा—ये कैसे रुपये हैं। उसने कहा कि मैं जब गया तो सब दुकानदारों से भाव पूछ लिया और पूछकर इसका व्यापार किया जिसमें छह-छह छटाँक का नफ़ा रहा, उसको बेचकर यह रुपया लाया हूँ। तब उसने दूसरे मुनीम से कहा कि सुनो तुम भी गये थे और यह भी गया, परन्तु इसने भाव भी पूछ लिया, बेच भी दिया और बाहर का बाहर ही रुपया भी चुका दिया और उल्टा दो दौ रुपया नफ़ा का ज़्यादा लेकर आया। यही कारण है, जिससे इसको ४५) रु० मिलते हैं। वह शर्मिन्दा हो गया। यह तो एक मामूली बात मैंने आपको बताई। जिस वक्त ज्ञान विमल हो जावेगा आपको हर एक चीज़ असलियत में नज़र आवेगी। व्यवहार में आपका ज्ञान बिलकुल अन्धा है। वह ज्ञान जिस दृष्टि से निकलता है वह परमात्मा को नहीं देख सकता। हम रोज़ पढ़ते हैं कि भाई-भाई को प्रेम के साथ रहना

चाहिए पर दिनभर प्रेम करें और शाम को रोज़ लड़ लेवें इसका तो कोई ठिकाना नहीं। उपदेश लाभकारी तो सिद्ध है मगर उसके ऊपर अमल किया जावे तो तुम्हारा जीवन परमेश्वरमय बन जावे। क्या लड़ना अच्छा है? ज्ञान से सोचो। कांग्रेस आज देश में काम कर रही है। कांग्रेस का काम कुछ बढ़ा, वह मुश्किल में पड़ी और उसका सामना भी किया, परन्तु यह तो इतना ही है जैसे—एक आदमी को सचेत करके कह दिया, यह मञ्जिल नहीं है इस मञ्जिल से आओ, अब तुम ठीक मञ्जिल के सामने खड़े हो पर मञ्जिल तय करना तो बाकी है। अगर आप भी यह समझ लो कि यह उपदेश हमारे हित के लिए कर रहे हैं। उसपर चलने लग जाओ तो कितना लाभ हो जावे, लेकिन जो बोले सो कुण्डा खोले, जो कहे सो करे हमसे तो नहीं होता। भाई! यह बात नहीं बनती। सुनो, ज्ञान का तकाज़ा है जिस दिन तुम ज्ञानमय उपदेश पर चलने में कामयाब हो जाओगे तो तुम्हारी ताकत रुक नहीं सकती।

[ईश्वर के साक्षात्कार के साधन]

पवित्रता

दो चीज़ों के साथ दो-दो चीज़ें बँधी हुई हैं। जब तुम उन दो चीजे को हाथ में लोगे तो स्वयभेव ही असली दो चीजें प्राप्त हो जाएँगी सफाई और सादगी। जिस समय ये दोनों तुम्हारे कब्ज़े में हुईं उस समय इसका पारितोषिक क्या मिलेगा? तन्दुरस्ती और सादगी, जोकि इनके साथ अपने आप आ जाएँगी। सफाई क्या है? एक तो सफाई कपड़े की, चाहे कपड़ा कीमती न भी हो पर साफ़ होना चाहिए। चाहे वह दो आने गज का ही क्यों ने हो, यहाँ तो सफाई चाहिए। खाने में तुमको दाल-रोटी चाहिए। पर दाल अच्छी हो और रोटी अच्छी सिकी हुई हो। प्राचीन समझदार माताएँ इस क़ायदे से भोजन बनाना जानती थीं कि वे आदमी को स्वस्थ रखने में रुपए में दस आने कारण होती थीं। उनको पता था कि फाल्गुन और चैत्र में किस चीज़ का उपयोग करना चाहिए, ज्येष्ठ-आषाढ़ में किस चीज़ का और श्रावण में किस चीज़ का, यह भी वे जानती थीं। वे आजकल की तरह आदमियों से यह कभी नहीं पूछती थीं कि आज क्या बनाऊँ? यह वे स्वयमेव ही जानती थीं। प्रकृति ने दुनिया की रचना इतनी अच्छी की है कि मनुष्य बीमार नहीं हो सकता। जिस मौसम में आम होता है, ज़्यादा खा जाने से अजीर्ण हो जाता है। आम के साथ यदि दस-पाँच जामुन खा लें आम का दोष दूर हो जाएगा। फाल्गुन में फोड़े-फुँसी हो जाते हैं, बस उसी के साथ बेर होते हैं, जो फोड़े-फुँसी को दूर करते हैं। माताओं को

इन बातों को जानना चाहिए। इस प्रकार यदि ये बातें व्यवहार में लाई जाएँ तो रोग रुपये में १० आने कम हो जाएँ। सफाई क्या है? साफ रहने को सफाई कहते हैं।

मैं एक बार पंजाब में बहाउद्दीन मण्डी गया। उस जगह सफाई नहीं थी। वहाँ सब होटलों में रोटी खाते हैं, साथ में मांस भी होता है। वहाँ कोई ऐसा बावरचीखाना नहीं, जहाँ मांस न हो। समाज के पास एक दुकान थी, वहाँ एक नौजवान लड़का बैठा हुआ मांस खा रहा था। उसके नज़दीक ही एक आदमी जूती पहने बरतन माँज रहा था और जूते मँजे हुए पात्रों से लग रहे थे। उस नौजवान ने कहा—अरे भाई! तू करता क्या है। कटोरे और गिलासों से तेरे जूते लग रहे हैं। इतने में एक दूसरा आदमी उस नौजवान से बोला—तू क्या खा रहा है? इसको तो सिर्फ बाहर का चमड़ा लगता है, पर जो तू खा रहा है वह तो भीतर का है। इतने में उनसे कहा-सुनी हो गई, फिर तो बस लट्ठ चल गये। सो बात क्या है? दुनिया का नियम है कि खाने में सफ़ाई होवे। घर में सफ़ाई होनी चाहिए। यह तो हुई सफ़ाई बाहिर की। अब मन की भी सफ़ाई होनी चाहिए। दिल के दोषों को साफ़ करो। फिर परमात्मा का साक्षात्कार हो जावेगा। दिल जिसका मलिन है उसका क्या ठिकाना? दिल साफ होना चाहिए। लेन-देन में सफाई होनी चाहिए। पहली सफाई और दूसरी सादगी से क्या मतलब। जो इन्सान तबियत का सादा होता है वह गुणग्राही होता है यह नियम है। दिल भी सादा होना चाहिए, कपड़ा भी सादा होना चाहिए, जैसे सादे काग़ज पर जो लिखते हैं वह पढ़ लिया जाता है। पर यदि लिखे कागज़ पर फिर लिख दिया जावे तो पहले का लिखा हुआ भी गया और दूसरा भी गया। जिसकी तबियत में सादगी होती है वह गुणग्राही होता है। हम गुणग्राही हैं? नहीं। यूरोप देश में जिस तरह के कपड़े बनते हैं वैसे हम भी बनाने लगे। वे हैट लगाते थे, हमने भी हैट लगा लिया। वे टाई लगाते थे, हमने भी लगा ली। सब-कुछ किया, पर क्या उनके गुण भी हमारे में आये। जैसे वे समय के पाबन्द हैं वैसे हम नहीं हैं। जैसे उनको देश का प्रेम है वैसा हममें नहीं। जिस प्रकार वे कपड़े आदि से साफ़ रहते हैं क्या हम वैसे हैं? नहीं। क्यों नहीं, हम गुणों को ग्रहण नहीं करते। हमारे में सादगी नहीं। अगर सादगी होती तो वे गुण आ जाते। गुण-ग्रहण करना तो बहुत अच्छी बात है भाई! परमेश्वर ने उनमें गुण नहीं डाल दिये हैं। उसने सिर्फ जैसे हम हैं वैसा ही उनको बनाया है, परन्तु देखो आज हम कैसे हैं—

जो यूरोप करेगा वही हम करेंगे।
जिधर वह चलेगा उधर हम चलेंगे॥
वह पढ़ेगा हम भी पढ़ेंगे।
वह लड़ाएगा हम लड़ेंगे॥

गुरु गोविन्दसिंहजी ने सिक्खों को कच्छा (जांघिया), कड़ा, केश, कंघा और कृपाण—ये पाँच चीजें दी थीं, पर किसी ने उन्हें नहीं अपनाया, लेकिन जब यही निक्कर यूरोपवाले पहनने लगे तो हम भी पहनने लग गये। अमेरिका में लड़ाई हुई, वहाँ पतलून पहनते थे। इससे उठने में बड़ी मुश्किल होती थी। जब सिपाही लड़ाई में गिर जाते तो पतलून के कारण उनसे जल्दी नहीं उठा जाता था। एक बार कप्तान ने एक सिपाही के गिर जाने पर उसकी पतलून को घुटने के नीचे-नीचे से काट डाला। तब वह उठा। तबसे नीचे तक का तो हो गया मोज़ा और ऊपर का हो गया निक्कर। अब इसको सब पहनने लग पड़े। हम सादी तबियत के नहीं हैं। आन्तरिक गुण जो हमारे हैं, वे कुछ मैले हैं। इनको साफ करनेवाली सादगी है। इसलिए यह गुण है।

'साफ कर दिल को तू अपने, सिकन्दर हो ज़माने का'

अक़्लमन्द आदमी बच्चे के भी सच्चे उपदेश को ग्रहण कर लेता है। हमें गुणग्राही होना चाहिए। जिस समय सफाई और सादगी हमारे पास होगी, उस समय हममें तन्दुरुस्ती और सादगी अपने आप आ जावेगी। यही ज्ञान का तकाज़ा है। तुम सादे मत रहो सफ़ाई से मत रहो तो तुम्हारी तन्दुरुस्ती अवश्य बिगड़ जावेगी। इस वास्ते मेरे भाई! ज्ञान का तकाज़ा है कि जिसके पास सादगी है उसको अज़ादी लेने में बड़ा जोर नहीं लगाना पड़ेगा। थोड़ी ही हिम्मत है तो आ जावेगी।

ज्ञान के पीछे ताकत—बल है। बल कई किस्म का है। एक है जिस्मानी (शारीरिक) ताकत। जिस इन्सान की जिस्मानी ताकत ठीक है, वह इन्सान बीमारियों से बचता है। जिसकी जिस्मानी ताकत ठीक नहीं है वह बार-बार बीमार होगा।

दूसरी है आत्मिक शक्ति और तीसरी है सामाजिक ताकत। ऋषि दयानन्दजी ने कहा था कि आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य संसार के प्राणिमात्र का उपकार करना है। ऐ आर्यो! इस बात को जान लो कि संसार का उपकार करना तुम्हारा उद्देश्य है। कितना बोझा आर्यों के कन्धों पर रख दिया है। इससे ऊँचा कोई उद्देश्य, इन्सान नहीं बना सकता। कोई अपने मुल्क की भलाई करेगा, कोई मनुष्य जाति की। पर संसार का उपकार करना आर्यों का मुख्य उद्देश्य बताया। इस उद्देश्य में हम कामयाब तब होंगे जब हम अपनी शारीरिक उन्नति करलें। फिर आत्मिक उन्नति करो। पीछे से सामाजिक उन्नति करना। कौन पुरुष व समाज, संसार का उपकार करने में समर्थ होगा? वही पुरुष और समाज जो अपनी जिस्मानी ताक़त को पैदा करेगा। जिसकी जिस्मानी ताक़त ठीक होगी उसकी आत्मिक अवस्था ठीक होगी। तीसरा, आत्मिक बल और जिस्मानी ताक़त मिलाकर उससे जो समाज बनेगा, वही संसार का काम करेगा। जो आपस में ही लड़ते हैं, वे

क्या संसार का उपकार करेंगे। इसलिए इन ताक़तों को हमें संगठित करना चाहिए।

सेवाभाव

पहिले ज्ञान, फिर बल और फिर धन आये

धन से मतलब पैसे-रुपये और चाँदी से नहीं है, किन्तु वास्तव में गेहूँ का नाम धन है, चावलों का नाम धन है, अन्न वस्त्रादि सारी चीजों का नाम धन है। इसलिए मेरे भाई! अब बताओ कि आपके यहाँ कोई चीज़ अच्छी भी मिलती है "आयुर्वै घृतम्" जो घृत है वही जीवन है, पर क्या आज कहीं अच्छा घी मिलता है? नहीं, जिस दुकान से लोगे वेजीटेबल ही मिलेगा, अच्छा घी मिलता ही नहीं। लोग कहते हैं कि गाँवों से अच्छा घी आता है पर गाँववाले लोग क्या करते हैं। यहाँ से वेजिटेबल घी ले-जाते हैं और सेर दूध पीछे पाव भर वेजिटेबल घी डाल कर जमाते हैं और उसको बिलो कर यहाँ ले-आते हैं जिससे उनको तीन चार आने का फ़ायदा पड़ जाता है। खाद्य पदार्थ जिससे दिमाग़ तेज़ होता है और शरीर में फुर्तीलापन आता है वह शुद्ध मिलता नहीं, लेकिन दूसरे मुल्कवालों ने मक्खन आधी छ्टाँक और दूध डेढ़ पाव की औसत प्रत्येक आदमी के लिए रख छोड़ी है, पर इस मुल्क में वनस्पति से घी बनता है। अब तो शायद आटा, दाल, चावल आदि भी बनावटी बनने लगेगा। इसके लिए किसको दोष दें, कहा है—

भाग्यहीना न जानन्ते रत्नगर्भां वसुन्धराम्।

जिस इन्सान के कर्म में फर्क आ जाता है वह नहीं जान सकता कि यह भूमि रत्नगर्भा है, सब-कुछ देनेवाली है, इसमें अनन्त रत्न भरे पड़े हैं। यह बातें वह नहीं जान सकता जिसमें कर्म करने की अक्ल नहीं है और भी एक बात सुनिए—अंगूर की फसल में अंगूर लगते हैं। मगर कौवा इनको नहीं खाता। तो लोगों ने कहा कि भाई! ऐसी चीज जिसमें बीज़ नहीं है तू क्यों नहीं खाता। कहा है—

जब द्राक्षा पाकन लगे काग कंठ हो रोग।
भाग्यहीन को ना मिले भली वस्तु का भोग॥

जिस समय अंगूर पकने लगते हैं तो उस समय कौवे के गले में गाँठ हो जाती है। इस प्रकार जो भाग्यहीन होता है उसको अच्छी वस्तु नहीं मिल सकती।

अब आगे आप को धन पैदा कर लेना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मेहनत करने पर ही धन मिलेगा।

तुम्हारे पास धन आवेगा, पहले तुम अपना बल बढ़ाओ। अगर

आर्यसमाज दूसरों के पास माँगने जाता है तो ठीक नहीं। कायदा तो यह है कि "हाथ मत पसार"। यह एक भारी ऐब है। अब तुमको ऐसी बात नहीं करनी चाहिए। अगर आर्यसमाजी व्यापारी हाथरस के, जयपुर के, कोई जालन्धर और कोई अमृतसर, बनारस के व्यापार को अपने हाथ में लेते और इधर-उधर को भेजते तो आज सैकड़ों आर्य लखपती होते। किसी की मदद की ज़रूरत नहीं होती, मगर व्यापार चले तब न! अगर अक़्लमन्द आकर काम करेंगे तो काम चलेगा। इस तरह माँगते हुए कहाँ तक काम करें? इस तरह माँग कर, चन्दा करके, इन संस्थाओं के चलाने में करोड़ों रुपये खर्च हो चुके हैं पर फ़ायदा क्या हुआ? कुछ नहीं। अगर ऋषि दयानन्द के बताये हुए डेरी फार्म के अनुसार आजकल हम काम करते तो इतना फ़ायदा होता कि कहा नहीं जाता, पर इस तरफ ध्यान कौन देवे? अक़्ल को कौन लगावे? इसलिए अब मेल-जोल से सामाजिक बल को बढ़ाओ। अब कहते हैं—खिदमत "सेवाभाव"। दूसरों की सेवा करना। सेवाभाव इस दुनिया में बहुत कठिन है। इसके लिए कहा है—

सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।

एक बार पाण्डुओं ने दरबार किया। उस समय किसी ने कुछ और किसी ने कुछ काम लिया, पर श्रीकृष्णचन्द्रजी ने कहा कि मैं तो द्वार पर वालण्टियर होकर काम करूँगा। जो आवेंगे उनका अतिथि-सत्कार करूँगा। हाथ-पाँव धुलाऊँगा और जब काम करना होगा काम करूँगा।

वेदों में कहा है कि पुरुष वह है जिसने दूसरों की सेवा की। देश में ऐसे सेवाभाव के विचार बिगड़े हुए हैं। देश में विद्या मौजूद है, हिमालय मौजूद है, नदियाँ मौजूद हैं, जीवशक्ति मौजूद है, लेकिन हमारे आन्तरिक व्यापार जब सुधरेंगे तो हम परमेश्वर के दर्शन कर सकते हैं। वेदों ने कहा है—

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।

दुनिया की जो दौलत है वह परमपद है, जिसके लिए हम मारे-मारे फिरते हैं। अमरपद कौन है? परमेश्वर। परमेश्वर-पद की प्राप्ति के लिए अमरपद में से होकर गति करनी होगी। यदि हमारे भाव शुद्ध और सरल बन जावें और अमरपद को छोड़ दें तो अपने आप परमपद की प्राप्ति हो जाती है, लेकिन उसको कौन देखता है? ज्ञानी सूरि नाम किसका है 'सृ गतौ' से सूरि बनता है गति, ज्ञान, गमन और प्राप्ति।

जिसका ज्ञान ठीक होगा वह उसके अनुसार आचरण करेगा और जिसके ज्ञान का प्रकाश निर्मल है वही परमात्मा को देखता है—कैसे देखता है? जिस प्रकार सूर्य की किरणें दुनिया को देखती हैं। उसके बीच में कोई भी रुकावट नहीं आती। इसी तरह आत्मज्ञान के द्वारा परमेश्वर का अपने

में साक्षात्कार करता है और वह "सेंधवधनवत्" समुद्र में कहीं भी चला जावे पानी आपको खारा-ही-खारा मिलेगा। इसी प्रकार ईश्वर का साक्षात्कार सबको एक ही प्रकार का होता है भिन-भिन्न या कम-ज्यादा नहीं। इसमें कोई फर्क नहीं। अन्तःकरण परमेश्वर को कब देखेगा? जब उसमें सफ़ाई होगी। इसके लिए मेरे कहने की क्या ज़रूरत? मैं अच्छा हूँ या नहीं मुझे मालूम नहीं। जो अपने अन्तःकरण को शुद्ध कर लेता है वह इस अधिकार को प्राप्त कर लेता है, 'कृतकृत्योऽस्मि' वह कृतकृत्य हो जाता है। जो करना था उसने कर लिया।

प्राप्तं प्राप्तव्यम्—जो प्राप्त करनेवाली बात थी प्राप्त कर ली।

दृष्टं द्रष्टव्यम्—जो देखने योग्य वस्तुएँ थीं सो देख लीं।

कृतं कर्त्तव्यम्—जो करना था सो कर लिया।

यद्रि तुम अपने अन्तःकरण को सफल बनाओगे तो तुम परमेश्वर को जानने लगोगे।

ये तीन बातें मैंने बताई थीं कि छोटे से प्यार करना, बराबरवाले से मुहब्बत करना और बड़ों की इज्ज़त करना। ये काम हो गये तो हम-आप बन गये। इसलिए सुनना सब-कुछ ठीक है, परन्तु इसके आगे आप सुने हुए पर मनन करेंगे तो देश का भी उत्थान होगा और अपना भी कल्याण आप कर सकोगे। यदि ऐसा करोगे तो आनन्द मिल जावेगा। इस समय जैसा कर रहे हैं वैसा फल मिल रहा है। आगे जैसा करोगे वैसा फल पावोगे।

ओ३म् शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

साहित्य समीक्षा

याज्ञिक आचार संहिता, लेखक—**स्व० पं० वीरसेन वेदश्रमी,**
प्रकाशक विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली, **मूल्य** ४५ रु.

वैदिक कर्मकाण्ड तथा गृह्य कृत्यों के पुनरुद्धारक ऋषि दयानन्द ने पारस्कर, आश्वलायन, गोभिल आदि प्राचीन गृह्यसूत्रों का आधार लेकर युगानुकूल ग्रन्थ 'संस्कार-विधि' की रचना की थी तथा नित्य, नैमित्तिक एवं विशिष्ट यज्ञों के करने के लिए एक आदर्श सामान्य यज्ञ-प्रकरण का निर्माण किया था। कालान्तर में आर्यसमाज ने जिस कर्मकाण्ड का प्रचार किया वह ऋषि दयानन्द के उपर्युक्त विधान का आश्रय लेकर ही चला था। तथापि यह देखा गया कि याज्ञिक विधान के सम्यक् सम्पादन में कर्म-कर्ता को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, अनेक प्रकार की शंकायें उत्पन्न होती हैं तथा बहुत-कुछ स्पष्ट होने पर भी याज्ञिक विधियों के पौर्वापर्य का निर्धारण सामान्य जनों के लिए कठिन हो जाता है।

आर्यसमाज में वैदिक कर्मकाण्ड के मर्मज्ञ विद्वानों की संख्या न्यून ही रही है। स्वामी दयानन्द के आद्य शिष्य पं० भीमसेन शर्मा ने श्रौत यज्ञों की विधियों को परिश्रमपूर्वक सीखा था। कालान्तर में सूत्र-ग्रन्थों को पढ़ने तथा तदनुसार कर्म कराने की पद्धति आर्यसमाज में प्रचलित ही नहीं हुई। तथापि आचार्य विश्वश्रवा, पं० युधिष्ठिर मीमांसक तथा पं० वीरसेन वेदश्रमी आदि कुछ विद्वानों ने कर्मकाण्ड के ग्रन्थों पर परिश्रम किया था तथा एतद्विषयक ऊहापोह किया था। पं० वेदश्रमी जी लिखित 'याज्ञिक आचार संहिता' इसी श्रेणी का एक श्रेष्ठ ग्रन्थ है जो आर्यसामाजिक कर्मकाण्ड के अनुष्ठानकर्ता यजमानों और यज्ञ-कार्य सम्पन्न करानेवाले पुरोहितों, ऋत्विकों तथा याज्ञिकों के लिए आदर्श गाइड का काम करता है।

यज्ञ के अधिकारी, यज्ञ-वेदी के निर्माण, पात्र, अग्न्याधान, हव्य द्रव्य, यज्ञ में प्रयुक्त मंत्र, स्विष्टकृत आहुति, मौनाहुति, पूर्णाहुति, दक्षिणा, यज्ञशेष, बलिवैश्व की आहुतियाँ, यज्ञान्त कर्म, यज्ञ में प्रवचन आदि विभिन्न समस्याओं और विषयों पर वेदश्रमी जी ने जो साधिकार लिखा है, वह यज्ञ-प्रेमियों के लिए अत्यन्त उपयोगी और लाभदायक है। यज्ञकर्म-सम्पादन में जो पदे-पदे कठिनाइयाँ आती हैं, अनेक शंकायें उत्पन्न होती हैं, उनका यथाशक्य समाधान वेदश्रमी जी की यह पुस्तक करती है। आवश्यकता इस बात की है कि यज्ञ की पवित्र मर्यादा को ध्यान में रखते हुए न तो उसका अनावश्यक सरलीकरण किया जाए और न इसे अनावश्यक रूप से जटिल तथा अव्यावहारिक बनाया जाए। याज्ञिक विधियों में पुराकाल में भी विविधता रही है जो देश-काल के अनुसार परिवर्तन की सूचक है। तथापि भूमण्डल के समस्त आर्य यज्ञ-विधियों में एकता लाएँ यह भी आवश्यक है। यह पुस्तक इसी दृष्टि से लिखी गई है।

—डॉ० भवानी लाल भारतीय

आचार्य उदयवीर शास्त्री ग्रन्थावली

न्यायदर्शनम् भाष्य जो शास्त्र हमें तर्क-वितर्क का ज्ञान देता है, हमारे भीतर की बन्द आँखों को खोलकर हमें तर्क करने का ज्ञान और साइंस प्रदान करता है, उसी का नाम न्यायशास्त्र है और वही न्यायदर्शन है। रूखे व दुरूह कहे जानेवाले इस विषय को लेखक ने अत्यन्त सुबोध शैली में प्रस्तुत किया है। **मूल्य : रु० १५०-००**

वैशेषिकदर्शनम् भाष्य सृष्टि-रचना में जो सूक्ष्म मूल तत्त्व हैं उनका विज्ञानपरक विवेचन इस दर्शन में किया गया है। इसमें पदार्थों के धर्म की व्याख्या है। यह ज्ञान भी सभी के लिए उपयोगी और अनिवार्य है।

मूल्य : रु० १२५-००

सांख्यदर्शनम् भाष्य लम्बे समय तक यह कुतर्क चलता रहा है कि 'सांख्यदर्शन' अनीश्वरवादी है। इस भ्रान्ति का उन्मूलन करने के लिए आचार्य उदयवीर जी को तत्सम्बन्धी विपुल साहित्य, इतिहास, वाग्जाल और विविध भाष्यों का अध्ययन-चिन्तन-मनन करके इस सत्य को उघाड़ना पड़ा है कि सांख्यदर्शन अन्य दर्शनशास्त्रों का ही पूरक है। विषय गूढ़ है, किन्तु सरलता से समझा जा सकता है। **मूल्य : रु० १००-००**

योगदर्शनम् भाष्य योग का सर्वोच्च लक्ष्य है मोक्षरूप परमानन्द की प्राप्ति। मानव-जीवन की समस्त क्रियाओं का लक्ष्य भी 'ब्रह्म का साक्षात्कार' है। 'योगदर्शन' इसी लक्ष्य-प्राप्ति का साधन है। योग-सूत्रों की सर्वाङ्ग एवं सम्पूर्ण व्याख्या जिस रोचक शैली में आचार्य उदयवीर जी ने की है, उसे विद्वज्जनों और जनसाधारण ने मुक्तकण्ठ से सराहा है। **मूल्य : रु० १००.००**

वेदान्तदर्शनम् भाष्य (ब्रह्मसूत्र) महर्षि वेदव्यास बादरायण ने ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को प्रमाणित करने के लिए ब्रह्मसूत्रों की रचना की थी। लेखक ने ब्रह्मसूत्र पर अपना निष्पक्ष व निर्भ्रान्त विद्योदयभाष्य प्रस्तुत करके हमारे वैदिक ज्ञान-विज्ञान को पुनः सार्वभौम और सार्वशिरोमणि कर दिखाया। **मूल्य : रु० १८०-००**

मीमांसादर्शनम् भाष्य मध्यकाल में कुछ ऐसी विडम्बना हुई कि विरोधी मतों की देखादेखी वैदिक वाक्यों के अर्थों में भी अनर्थ होने लगा। यज्ञों में भी पशु और नर बलि मान्य हो गई। आचार्य उदयवीर जी अन्य दर्शनों के भाष्य के बाद, जीवन के अंतिम वर्षों में मीमांसा-दर्शन के तीन ही अध्यायों का भाष्य करके दिवंगत हो गए। इस भाष्य की विशेषता यह है कि विद्वानों की दृष्टि में यह शास्त्र-सम्मत भी है और विज्ञानपरक भी। यज्ञों में पशु हिंसा की शंकाओं का सहज समाधान करके विद्वान् भाष्यकार ने पाठकों और शोधकर्ताओं का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। **मूल्य : रु० ३५०-००**

सांख्यदर्शन का इतिहास सांख्यदर्शन के इतिहास पर व्याप्त भ्रान्तियों को मिटाने के लिए लेखक ने इसके इतिहास का मन्थन व मनन किया। इतिहास और दर्शन का यह अनूठा संगम है। कई पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया। **मूल्य : रु० २५०-००**

सांख्यसिद्धान्त सांख्यसिद्धान्त में दो प्रकार के मूल तत्त्वों का विवेचन है। एक है 'पुरुष' और दूसरा 'प्रकृति'। लेखक ने वर्षों के गहन अनुशीलन व शोध के पश्चात् तटस्थ और निष्पक्ष भाव से विभिन्न मन्तव्यों का तुलनात्मक विवेचन करके इस ग्रन्थ की रचना की है। **मूल्य : रु० २००-००**

वेदान्तदर्शन का इतिहास इतिहास चाहे राजा-महाराजाओं का हो अथवा दार्शनिक साहित्य का, उसकी उपयोगिता इसी में है कि वह सत्य का बोध कराए। कुछ वर्ष पहले तक यह कहना कठिन था कि ब्रह्मसूत्रों के रचयिता व्यास और बादरायण एक ही व्यक्ति थे या दो भिन्न-भिन्न इसी प्रकार अचार्य शंकर के काल को कोई सुनिश्चित नहीं कर पाया था। इस सन्दर्भ में आचार्य उदयवीर शास्त्री जी ने जिस सहजता से भ्रान्तियों का उन्मूलन किया है, उसकी विद्वान पाठकों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। **मूल्य : रु० २००-००**

प्राचीन सांख्य-सन्दर्भ सांख्यशास्त्र की अनेक आचार्यों ने विवेचना की। सैकड़ों वर्षों के अन्तराल में किन-किन आचार्यों ने इसके भाष्य किये, यह सब अंधकार के गर्त में रहा। लेखक ने यत्र-तत्र बिखरे इतिहास की कड़ियाँ जोड़ीं तथा सांख्यशास्त्र के व्याख्यापरक ग्रन्थों को समझने और ऐतिहासिक दृष्टि से इस 'दर्शन' के क्रमिक विकास को जानने के लिए उपयोगी बनाया। **मूल्य : रु० १००-००**

वीर तरङ्गिणी श्री उदयवीर शास्त्री को पाठक प्रायः योग, वेदान्त, सांख्य आदि दर्शनों के प्रकाण्ड पंडित के रूप में ही जानते हैं। वे कवि और कथाकार भी थे, आलोचक और पुरा-मर्मज्ञ भी—यह पता चलता है इस विविधा से। **मूल्य : रु० २५०-००**

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-प्रदायिनी

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती की
सरल-सुबोध आध्यात्मिक पुस्तकें

आनन्द गायत्री कथा	१२-००
एक ही रास्ता	१२-००
शंकर और दयानन्द	८-००
मानव जीवन-गाथा	१३-००
सत्यनारायण व्रत कथा	५-००
भक्त और भगवान	१२-००
उपनिषदों का सन्देश	१६-००
घोर घने जंगल में	२०-००
मानव और मानवता	३०-००
प्रभु मिलन की राह	२०-००
यह धन किसका है ?	३०-००
बोध-कथाएँ	१६-००
दो रास्ते	१५-००
दुनिया में रहना किस तरह ?	१५-००
तत्वज्ञान	२०-००
प्रभु-दर्शन	१५-००
प्रभु-भक्ति	१२-००
महामन्त्र	१२-००
सुखी गृहस्थ	६-००
त्यागमयी देवियाँ	८-००

अंग्रेजी पुस्तकें

Anand Gayatry Katha	30-00
The Only Way	30-00
Bodh Kathayen	40-00
How To Lead Life?	30-00

जीवनी

महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)	१०-००
महात्मा आनन्द स्वामी (हिन्दी)	२५-००

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती कृत
विद्वत्तापूर्ण पुस्तकें

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००-००
वाल्मीकि रामायण	१७५-००
षड्दर्शनम्	१५०-००
चाणक्यनीति दर्पण	६०-००
विदुरनीतिः	४०-००
ब्रह्मचर्य गौरव	९-००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	९-००
दिव्य दयानन्द	१२-००
कुछ करो कुछ बनो	१२-००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१२-००
आदर्श परिवार	१५-००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	१५-००
वेद सौरभ	१२-००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५-००
वैदिक विवाह पद्धति	८-००
ऋग्वेद सूक्ति सुधा	२५-००
यजुर्वेद सूक्ति सुधा	१२-००
अथर्ववेद सूक्ति सुधा	१५-००
सामवेद सूक्ति सुधा	१२-००
ऋग्वेद शतकम्	८-००
यजुर्वेद शतकम्	८-००
सामवेद शतकम्	८-००
अथर्ववेद शतकम्	८-००
भक्ति संगीत शतकम्	६-००
चमत्कारी ओषधियाँ	१२-००
घरेलू ओषधियाँ	१२-००
चतुर्वेद शतकम् (सजिल्द)	५०-००
स्वर्ण पथ	१२-००
प्रार्थना लोक	प्रेस में

हमारे महत्वपूर्ण प्रकाशन

पुस्तक	लेखक	मूल्य
आदि शंकराचार्य वेदान्ती नहीं थे	स्वामी विद्यानन्द सरस्वती	४०-००
वेद-मीमांसा	स्वामी विद्यानन्द सरस्वती	५०-००
सृष्टि विज्ञान और विकासवाद	स्वामी विद्यानन्द सरस्वती	४०-००
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	१५०-००
दयानन्द जीवन चरित	लेखक : देवेन्द्र मुखोपाध्याय अनु० : पं० घासीराम	२५०-००
शतपथब्राह्मण (तीन खण्ड)	अनु० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	१८००-००
महात्मा हंसराज (जीवनी)	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	६०-००
महात्मा हंसराज ग्रन्थावली (चार खण्ड)	लेखक-सम्पादक प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	२४०-००
आर्य सूक्ति सुधा	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	१२-००
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (ग्यारह खण्ड)	ले० स० डॉ० भवानीलाल भारतीय तथा प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु	६६०-००
चयनिका	क्षितीश वेदालंकार	१२५-००
वैदिक मधुवृष्टि	पं० रामनाथ वेदालंकार	६०-००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	आ० प्रियव्रत वेदवाचस्पति	५०-००
महाभारत सूक्तिसुधा	पं० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण	४०-००
श्यामजी कृष्ण वर्मा	डॉ० भवानीलाल भारतीय	२४-००
आर्यसमाज विषयक साहित्य परिचय	डॉ० भवानीलाल भारतीय	२५-००
कल्याणमार्ग का पथिक (स्वामी श्रद्धानन्द की जीवनी)	डॉ० भवानीलाल भारतीय	प्रेस में
आर्यसमाज के बीस बलिदानी	डॉ० भवानीलाल भारतीय	१५-००
धर्म का स्वरूप	डॉ० प्रशान्त वेदालंकार	५०-००
ऋषि बोध कथा	स्वामी वेदानन्द सरस्वती	१०-००
वैदिक धर्म	स्वामी वेदानन्द सरस्वती	२५-००
ईश्वर का स्वरूप	सुरेशचन्द्र वेदालंकार	प्रेस में
सहेलियों की वार्ता	सुरेशचन्द्र वेदालंकार	२०-००
सन्ध्या रहस्य	पं० विश्वनाथ विद्यालंकार	२५-००
आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो ?	प्रो० रामविचार एम० ए०	४-००
वैदिक धर्म का संक्षिप्त परिचय	ओम्प्रकाश त्यागी	६-००
पूर्व और पश्चिम	नित्यानन्द पटेल	३५-००
सन्ध्या विनय	नित्यानन्द पटेल	६-००
गीत सागर	पं० नन्दलाल वानप्रस्थी	२५-००
वेद भगवान बोले	पं० वा० विष्णुदयाल (मारीशस)	१५-००
हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष	पं० नरेन्द्र	१५-००
आचार्य शंकर का काल	आ० उदयवीर शास्त्री	१०-००

याज्ञिक आचार-संहिता	पं० वीरसेन वेदश्रमी	४५-००
प्राणायाम विधि	महात्मा नारायण स्वामी	२-००
प्रेरक बोध कथाएँ	नरेन्द्र विद्यावाचस्पति	१५-००
ओंकार गायत्री शतकम्	कवि कस्तूरचन्द	३-००
जीवात्मा	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	प्रेस में
सन्ध्या : क्या, क्यों, कैसे	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	प्रेस में
विवाह और विवाहित जीवन	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	१८-००
जीवन गीत	धर्मजित् जिज्ञासु	१२-००
पंचमहायज्ञविधि	महर्षि दयानन्द	३-००
व्यवहारभानु	महर्षि दयानन्द	४-००
आर्योद्देश्यरत्नमाला	महर्षि दयानन्द	१-५०
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	महर्षि दयानन्द	१-५०
ब्रह्मचर्यसन्देश	सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	२५-००
श्रीमद्भगवद्गीता	पं० सत्यपाल विद्यालंकार	१५-००

WORKS OF SVAMI SATYAPRAKASH SARASVATI

Founders of Sciences in Ancient India (Two Vols.)	500-00
Coinage in Ancient India (Two Vols.)	600-00
Geometry in Ancient India	350-00
Brahmgupta and His Works	350-00
God and His Divine Love	5-00
The Critical and Cultural Study of Satapath Brahman	In Press
Speeches, Writings & Addresses Vol.I : VINCITVERITAS	150-00
Speeches Writings & Addresses Vol.II : ARYA SAMAJ; A RENAISSANCE	150-00
Speeches, Writings & Addresses Vol. III : DAYANAND ; A PHILOSOPHER	150-00
Speeches, Writings & Addresses Vol. IV THREE LIFE HAZARDS	150-00

कर्म काण्ड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका	३-००	संध्या-हवन-दर्पण (उर्दू)	८-००
पंचयज्ञ प्रकाशिका	८-००	सत्संग मंजरी	६-००
वैदिक संध्या	१-००	Vedic Prayer	3-00
सामाजिक पद्धतियाँ (मदनजीत आर्य)	१२-००		

घर का वैद्य

जब प्रकृति की अनमोल दवाइयाँ आपको आसानी से उपलब्ध हों तो गोली, पुड़िया, कैप्सूल या इन्जेक्शन की क्या जरूरत है ?

घर का वैद्य—प्याज	७-००	घर का वैद्य—हल्दी	७-००
घर का वैद्य—लहसुन	७-००	घर का वैद्य—बरगद	७-००
घर का वैद्य—गन्ना	७-००	घर का वैद्य—दूध-घी	७-००
घर का वैद्य—नीम	७-००	घर का वैद्य—दही-मट्ठा	७-००
घर का वैद्य—सिरस	७-००	घर का वैद्य—हींग	७-००
घर का वैद्य—तुलसी	७-००	घर का वैद्य—नमक	७-००
घर का वैद्य—आँवला	७-००	घर का वैद्य—बेल	७-००
घर का वैद्य—नींबू	७-००	घर का वैद्य—शहद	७-००
घर का वैद्य—पीपल	७-००	घर का वैद्य—फिटकरी	७-००
घर का वैद्य—आक	७-००	घर का वैद्य—साग-भाजी	७-००
घर का वैद्य—गाजर	७-००	घर का वैद्य—अनाज	७-००
घर का वैद्य—मूली	७-००	घर का वैद्य—फल-फूल	७-००
घर का वैद्य—अदरक	७-००	घर का वैद्य—धूप-पानी	१५-००

सभी छब्बीस पुस्तकें छः आकर्षक जिल्दों में भी उपलब्ध

घर का वैद्य-१ (प्याज, लहसुन, गन्ना, नीम, सिरस)	४५-००
घर का वैद्य-२ (तुलसी, आँवला, नींबू, पीपल, आक)	४५-००
घर का वैद्य-३ (गाजर, मूली, अदरक, हल्दी, बरगद)	४५-००
घर का वैद्य-४ (दूध-घी, दही-मट्ठा, हींग, नमक, बेल)	४५-००
घर का वैद्य-५ (शहद, अनाज, फिटकरी, साग-भाजी, फल-फूल)	४५-००
घर का वैद्य—धूप-पानी	४०-००

चित्र

स्वामी दयानन्द (झण्डेवाला)	१६" × २२" बहुरंगी	६-००
स्वामी दयानन्द (कुर्सी)	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी दयानन्द (आसन)	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी श्रद्धानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
गुरु विरजानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
पण्डित लेखराम	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी दर्शनानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
पं० गुरुदत विद्यार्थी	१८" × २२" एक रंग	३-००
महात्मा हंसराज	१८" × २२" एक रंग	३-००

बाल साहित्य

आर्य नेताओं की बालोपयोगी जीवनियाँ

महर्षि दयानन्द	*त्रिलोकचन्द विशारद*	४-५०
गुरु विरजानन्द	*त्रिलोकचन्द विशारद*	४-५०
स्वामी श्रद्धानन्द	*त्रिलोकचन्द विशारद*	४-५०
धर्मवीर पं० लेखराम	*त्रिलोकचन्द विशारद*	३-००
मुनिवर पं० गुरुदत्त	*त्रिलोकचन्द विशारद*	३-००
स्वामी दर्शनानन्द	*सत्यभूषण वेदालंकार*	३-००
महात्मा हंसराज	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	४-५०
वीतराग सेनानी स्वामी स्वतन्त्रानन्द	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	४-५०
तपोधन महात्मा नारायण स्वामी	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	५-५०
देवतास्वरूप भाई परमानन्द	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	५-५०
नैतिक शिक्षा—प्रथम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	२.५०
नैतिक शिक्षा—द्वितीय	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	२.५०
नैतिक शिक्षा—तृतीय	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	३.५०
नैतिक शिक्षा—चतुर्थ	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	४-५०
नैतिक शिक्षा—पंचम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	४.५०
नैतिक शिक्षा—षष्ठ	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	५.५०
नैतिक शिक्षा—सप्तम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	५.५
नैतिक शिक्षा—अष्टम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	५.
नैतिक शिक्षा—नवम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	८.
नैतिक शिक्षा—दशम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	८०
ब्रह्मचर्य गौरव	*स्वामी जगदीश्वरानन्द*	९००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	*स्वामी जगदीश्वरानन्द*	९००
स्वर्ण पथ	*स्वामी जगीदश्वरानन्द*	१२००
आचार्य गौरव	*ब्र० नन्दकिशोर*	५००
त्यागमयी देवियाँ	*महात्मा आनन्द स्वामी*	८००
हमारे बालनायक	*सुनील शर्मा*	८००
देश के दुलारे	*सुनील शर्मा*	८००
हमारे कर्णधार	*सुनील शर्मा*	८००
आदर्श महिलाएँ	*नीरू शर्मा*	८००
कथा पच्चीसी	*स्वामी दर्शनानन्द*	८००
बाल शिक्षा	*स्वामी दर्शनानन्द*	२.५०
वैदिक शिष्टाचार	*हरिश्चन्द्र विद्यालंकार*	३००
दयानन्द चित्रावली	*पं० रामगोपाल विद्यालंकार*	२५००
आर्य सूक्ति सुधा	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	१२-००

वेद प्रकाशन के सम्बन्ध में

हमारी हार्दिक इच्छा थी कि दिसम्बर में हम चारों वेद [मूलमात्र] पाठकों के हाथों में पहुँचा दें, परन्तु इस इच्छा की पूर्ति में समय लगेगा। वेद का कम्पोजिङ्ग ही कठिन काम है, फिर उसमें स्वर लगाना और भी कठिन है। दो व्यक्ति एक दिन में आठ पृष्ठों पर स्वर लगा पाते हैं। काम वैसे ही बहुत कठिन था, एक और उत्तरदायित्व सिर पर ले लिया। पहले केवल स्वामीजी (श्री स्वामी जगदीश्वरानन्दजी) ही प्रूफ पढ़ते थे, परन्तु अब चार अन्य विद्वानों से पढ़वाने का भी निर्णय ले लिया है। वेद-जैसा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ बार-बार नहीं छपता है। मेरी भी और स्वामीजी की भी यह इच्छा है कि अब तक जितने संस्करण छपे हैं, यह उन सभी से उत्कृष्ट, भव्य और दिव्य हो। पाठक भी देखकर भाव-विभोर हो उठें। विद्वान् भी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करें।

हमारा पूरा प्रयत्न होगा कि ग्रन्थ में आदि से अन्त तक एक भी अशुद्धि न हो। मुद्रण भी नयनाभिराम हो, अतः पाठक कुछ प्रतीक्षा करें। ऋग्वेद और यजुर्वेद कम्पोज हो चुके हैं। स्वर लग रहे हैं। दिसम्बर तक चारों वेदों के कम्पोज हो जाने की आशा है। प्रूफ रीडिंग हो रही है। एक-एक विद्वान् दो-दो मास तो लगा ही देगा। प्रूफ की दो-दो, तीन-तीन प्रतियाँ निकालकर विद्वानों की सेवा में एक साथ भेजी जाएँगी, जिससे कार्य शीघ्र सम्पन्न हो सके।

आशा है, पाठक धैर्य रक्खेंगे।

आपको 'वेदप्रकाश' के माध्यम से प्रगति की निरन्तर सूचना मिलती रहेगी।

—अजय कुमार

हमारा १९९५ का बृहद् विशेषाङ्क :

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह

यह ग्रन्थ 'दयानन्द चरित' आकार में २०×३०/८ लगभग ६०० पृष्ठ का सजिल्द होगा।

स्वामी दर्शनानन्द जी ट्रैक्ट लिखने की मशीन थे। जीवन में बहुत ट्रैक्ट लिखे। सब उर्दू में लिखे। अनेक विद्वानों ने उनका हिन्दी अनुवाद किया।

इस ग्रन्थ-संग्रह में हम दर्शनानन्द जी के ६४ ट्रैक्ट दे रहे हैं। ईश्वर विचार, ईश्वरप्राप्ति, वेद, मुक्ति, जीव का अनादित्व, गुरुकुल, भोला यात्री, द्वैतवाद आदि अनेक विषयों पर अत्यन्त खोजपूर्ण सामग्री इस ग्रन्थ में पाठकों को मिलेगी।

इस ग्रन्थ का सम्पादन करेंगे आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान् **स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती।**

जिन मन्त्रों, सूत्रों और श्लोकों के पते नहीं हैं, उन्हें खोजकर देने का स्वामी जी का भरसक प्रयत्न रहेगा। आधुनिक साज-सज्जा से सुभूषित कलापूर्ण मुद्रण होगा। बढ़िया कागज होगा। इस ग्रन्थरत्न का मूल्य २५० रुपये होगा। परन्तु वेद-प्रकाश के सदस्यों को केवल १५० में मिलेगा। इसमें एक वर्ष तक वेदप्रकाश भी निःशुल्क मिलता रहेगा। विशेषाङ्क को भेजने का खर्च भी हम स्वयं वहन करेंगे।

ऐसा भव्य और दिव्य ग्रन्थ पहली बार छप रहा है। हम स्वामी दर्शनानन्द जी का सच्चा श्राद्ध कर रहे हैं। आर्य साहित्य में यह एक ठोस वृद्धि होगी।

हमारा 'वेदप्रकाश' के सदस्यों और पाठकों से निवेदद है कि वे स्वयं ग्राहक बनें और अन्यों को बनायें।

शीघ्रता करें। ग्रन्थ सीमित संख्या में ही छपेगा।

यदि पाठकों ने उत्साह दिखाया तो इसका दूसरा भाग भी देने का प्रयत्न करेंगे। यह मार्च ९५ में पाठकों को मिलेगा।

'वेद की मूल संहिताओं' के प्रकाशन योजना के लिए कई आर्यसमाजों ने हमारा उत्साह बढ़ाया है और इस योजना के लिए भी आर्यसमाज आगे आयें तो बृहद् विशेषांक प्रकाशित करने की योजना को बल मिलेगा तथा भविष्य में और अधिक ठोस योजनाओं पर कार्य करने की शक्ति मिलेगी।

प्रकाशक-मुद्रक अजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेद प्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

जीवन-यज्ञ

यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः॥

(अथर्व० २।३५।५)

शब्दार्थ—(**यज्ञस्य**) मानवजीवन-रूपी यज्ञ के (**प्रभृति.**) भरण-पोषण का साधन (**चक्षुः**) दर्शनशक्ति है (**मुखं च**) और मुख भी है। (**वाचा श्रोत्रेण मनसा**) वाणी से, कान से और मन से (**जुहोमि**) मैं हवन ही करता हूं। (**इमं यज्ञं**) यह मेरा जीवन-यज्ञ (**विश्वकर्मणा**) जगत्-रचयिता प्रभु ने (**विततं**) विस्तृत किया है, इसमें (**देवाः**) सब देव, दिव्यभाव (**सुमनस्यमानाः**) प्रसन्नतापूर्वक (**आयन्तु**) आवें, समाविष्ट हों।

व्याख्या—वेद में प्रभु को यज्ञ नाम से पुकारा है। उसका बनाया हुआ यह संसार भी यज्ञरूप ही है। उसके इस विशाल संसार में मेरा जीवनरूपी यज्ञ भी उसी ने रचा है जो सौ वर्ष तक चलनेवाला है। मेरी योग्यता इसमें है कि मैं इस शरीर से कोई अयज्ञिय कार्य न होने दूं। यज्ञ दैव्य कर्म है और वेद की भाषा में **"अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या"**—यह आठ चक्र और नौ द्वारों वाली मेरी शरीररूपी देवपुरी है। अतः इस मन्त्र में मुख्य रूप से दो ही उपदेश हैं—पहला यह कि हम अपनी सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से जो जानें और करें वह यज्ञ-रूप में हो, वह व्यक्ति और समाज की भलाई के लिए हो। दूसरी बात यह कि उत्तम विचार और आचार के हम इतने अभ्यस्त हो जावें कि सम्पूर्ण दिव्यभाव अपने निवास के लिए हमारी इस शरीरपुरी को प्रसन्नता और उत्सुकतापूर्वक अपने निवास के लिए चुनें।

बोध-कथा

आचरण ही श्रेष्ठ आभूषण

अपने समय की सर्वश्रेष्ठ नृत्यांगना नगर सुन्दरी वासवदत्ता भिक्षु उपगुप्त के पास पहुंची। भिक्षु के चरणों में प्रणति करने के बाद आदर के साथ पूछा—"भन्ते, व्यक्ति का सब से बहुमूल्य आभूषण क्या है? साथ ही यह भी बतलाइए देव, नारी का श्रेष्ठ आभूषण क्या है?"

"व्यक्ति का चरित्र-आचरण ही उसका श्रेष्ठ आभूषण है।" भिक्षु उपगुप्त का उत्तर था। आभूषणों से लदी, सौन्दर्य से परिपूर्ण नगर की प्रसिद्ध नर्तकी की की भृकुटि तन गई। उसकी भंगिमा पुकार-पुकार कर जैसे कह रही थी—मेरे ये सहस्रों लक्ष से अधिक मूल्य के हीरे, मोती-माणिक्य से अमूल्य आभूषण, रत्नहार का क्या कोई मूल्य नहीं, फिर पुरुष मात्र ही नहीं, योगियों और तपस्वियों की साधना और तपस्या को भरमाने वाला यह अप्रतिम सौन्दर्य क्या मोल नहीं रखता? उसने कुछ नजर टेढ़ी-तिरछी कर थोड़े व्यंग्य से इतराते हुए स्वर में कहा—"कुछ समझ में नहीं आया, कुछ समझाकर स्पष्ट बतलाइए।"

भिक्षु उपगुप्त ने कहा—"नारी-स्त्री का श्रेष्ठ आभूषण वह तत्त्व है, जो उस के स्वाभाविक सौन्दर्य में अभिवृद्धि करे।" सर्वाङ्ग सुन्दरी-आभूषणों से लदी नर्तकी ने कुतूहल से भरकर कहा—"कुछ समझ में नहीं आया, यह कैसे हो सकता है?"

भिक्षु ने कहा—"अपनी जिज्ञासा का समाधान चाहती हो तो अपने ये सारे कीमती आभूषण उतार दो।" नर्तकी ने बिना संकोच के सारे आभूषण तुरन्त उतार दिए। नर्तकी की आँखें और वाणी जैसे कह रही हो—"इससे मेरी जिज्ञासा का तो कोई समाधान नहीं हुआ।"

भिक्षु उपगुप्त ने कहा—"सुन्दरि, अपने वस्त्र भी उतार दो।"

नर्तकी एक क्षण हिचकिचाई, परन्तु भिक्षु की आँखों में किसी भी प्रकार की चाह, आकर्षण न देख उसने भिक्षु के उस आदेश का भी पालन कर दिया। हाँ, उसका समस्त मुखमण्डल ही नहीं, सारा शरीर भी लज्जा से अभिभूत हो उठा। भिक्षु ने आदेश दिया—"देवि, कृपा कर अब कुछ मेरी ओर निहारो।"

किन्तु लज्जा से लाल मुख और शर्म से नीची दृष्टि किए राज्य की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी नर्तकी भिक्षु के प्रति अगाध विश्वास भरकर भी इस आदेश का पालन नहीं कर सकी।

भिक्षु उपगुप्त अपने आसन से खड़े हो गए और संयमित तीव्र वाणी से बोल उठे—"देवि, नारी के सौन्दर्य का सर्वश्रेष्ठ आभूषण उसकी यह प्रकृति से दी हुई लज्जा ही है। इस लज्जा से ही नारी के वास्तविक चरित्र-आचरण की परख होती है।"

प्रस्तुति—**नरेन्द्र विद्यावाचस्पति**

ओ३म्

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ४४, अंक ७ वार्षिक मूल्य : बीस रुपये फरवरी १९९५

सम्पा॰ **अजयकुमार** आ॰ सम्पादक : **स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

सामान्य जिज्ञासु के लिए उपनिषदों की देन—३

श्रेय का चुनाव करो, प्रेय का नहीं : कठोपनिषद् की सीख

एक बार महर्षि वाजश्रवा अरुण के पुत्र उद्दालक ने विश्वजित् यज्ञ किया। उन्होंने अपने इस यज्ञ में अपना सारा धन दान में दे दिया। इस समय उसके छोटे से पुत्र नचिकेता ने देखा कि उसके पिता बूढ़ी, दूध न देने वाली ऐसी ठूंठ गौएँ दान में दे रहे हैं जो अपने जीवन का अन्तिम जल पी चुकी हैं, जिनका घास खाना समाप्त हो गया है, जिनकी हड्डियां काम करना छोड़ चुकी हैं, जिनका दूध भी अन्तिम बार दुहा जा चुका है, ऐसी गायों के दान से उन्हें यज्ञ का फल कैसे मिलेगा। उस के मन में अनुभूति हुई विश्वजित् होने की आकांक्षा से किए गए इस यज्ञ में व्यर्थ की चीजों के दान से आनन्द लोक में जाने की अपेक्षा आनन्द शून्य लोक में जाना पड़ेगा। इसलिए उसने अपने पिता से कहा "पिता जी, आप मुझे किसे दे रहे हैं ?" पिता चुप रहे, परन्तु पुत्र नचिकेता ने अपना प्रश्न तीन बार दोहराया। अन्त में पिता ने नाराज होकर कहा—"तुझे देता हूं यमराज को।"

पिता की बात व्यर्थ न चली जाए, यह सोच नचिकेता ऐसे यमाचार्य गुरु के पास पहुंचा जो साक्षात् यम था। वेदों में गुरु को आचार्य कहा गया है और आचार्य को मृत्यु कहा गया है—

आचार्यो वै मृत्युः यम अथवा यमाचार्य घर पर नहीं थे। तीन दिन बाद वह घर लौटे। तब तक नचिकेता, उनके ही द्वार पर बिना खाए-पीए उनका रास्ता देखता रहा। यमाचार्य ने जब देखा कि बालक अपने निश्चय पर पक्का है— तब उसने नचिकेता से कहा "हे अतिथिदेव, मुझे क्षमा करो, तुम तीन दिन मेरे निवास स्थान पर मेरे घर पर रहे हो—

इसलिए एक-एक रात्रि के बदले मुझ से अपने अभीष्ट पदार्थ तीन वर मांग लो।''

नचिकेता ने पहला वर मांगा-''मेरे पिता का क्रोध शान्त हो जाए । जब मैं घर लौट कर जाऊं तब वह प्रसन्नता से मेरा स्वागत करें। यमराज ने वर दिया-''तेरे पिता पहले की तरह क्रोध रहित हो जाएंगे, अब दूसरा वर मांगो।''

नचिकेता ने कहा-''मेरे पिता विश्वजित् यज्ञ से भय, भूख, बुढ़ापे, भूख-प्यास, शोक से शून्य आनन्द से परिपूर्ण स्वर्ग लोक जाना चाहते हैं, उस स्वर्ग लोक को जिस यज्ञाग्नि से प्राप्त किया जा सकता है, उस यज्ञाग्नि-अग्नि-विद्या का दान दें । नचिकेता का अनुरोध था-

स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति।
उभे तीर्त्वाशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके॥
स त्वमग्निःस्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि त्वःश्रद्दधानाय मह्यम्।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण॥

यमराज ने नचिकेता को वह यज्ञाग्नि, अग्नि विद्या समझाई । उन्होंने बतलाया कि यज्ञाग्नि से अभिप्राय इस भौतिक अग्नि से नहीं है, भौतिक यज्ञाग्नि 'ब्रह्मयज्ञ' का प्रतीक है । असली यज्ञ ब्रह्मयज्ञ है, उसमें ईंटें नहीं चुनी जातीं, त्रिकर्म करना पड़ता है । त्रिसन्धि जीवन के तीन मोड़ों में से गुजरना पड़ता है । उल्लेखनीय है-वैदिक संस्कृति में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास चार आश्रम हैं । परन्तु उनकी सन्धियां तीन हैं, ब्रह्मचर्य से गृहस्थ में प्रवेश करने की पहली सन्धि, गृहस्थ से वानप्रस्थ में प्रवेश की दूसरी सन्धि और वानप्रस्थ से संन्यास में प्रवेश करने की तीसरी सन्धि । सम्भवत: इन तीनों सन्धियों को लक्ष्य कर यमाचार्य ने समझाया कि तीन सन्धियों एवं तीन कर्मों को कर । अपने लिए नहीं, प्रत्युत समाज के लिए यज्ञमय जीवन व्यतीत कर पूर्ण कर सकता है, यही ब्रह्मयज्ञ है, यमाचार्य ने इस अग्नि को 'स्वर्ग्य अग्नि' या 'नाचिकेत अग्नि' का नाम भी दिया है ।

दो वर देने के बाद यमाचार्य ने नचिकेता से तीसरा वर मांगने के लिए कहा तो नचिकेता ने कहा-''यमाचार्य, यह बतलाइए कि मृत्यु के बाद क्या होता है?'' यमाचार्य ने कहा-''यह सूक्ष्म बात सरलता से समझ में नहीं आती, इसका हठ छोड़ दे।'' इतना ही नहीं, यम ने कहा ''मनुष्य-लोक में जो-जो दुर्लभ भोग हैं, वे सब तू मांग ले । वाहनों और घोड़ों सहित इन स्वर्ग की सुन्दरियों से भी अपनी सेवा करा ले, परन्तु मृत्यु के रहस्य के विषय में मत पूछ।''

ये ये कामाः दुर्लभाः मर्त्यलोके,
सर्वान् कामान् छन्दतः प्रार्थयस्व ।
इमाः रामाः सरथाः सतूर्याः,
न हि ईदृशाः लम्भनीयाः मनुष्यैः ।।
आभिः मत्ताभिः परिचारयस्व,
नचिकेतो मरणं मा अनुप्राक्षीः ।१।१।२५

नचिकेता ने यमाचार्य से जिज्ञासा की–क्या ये सांसारिक सुख सदा बने रहेंगे, ये सांसारिक सुख-भोग कल नहीं रहेंगे । श्वोभावा, दूसरे ये इन्द्रियों का तेज समाप्त कर देते हैं– **जरयन्ति तेजः**, और तीसरे धन–सम्पत्ति से किसी की तृप्ति नहीं हो सकती **'न वित्तेन तर्पणीयः मनुष्यः'** और यह सारा जीवन अल्प-अवधि के लिए है, ये नृत्य गीत आपको ही शोभा दें । मैं उस आनन्द की खोज में हूँ, जिस में जीवन भर भटकना न पड़े । मृत्यु के रहस्य को जानने के अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं चाहिए ।

श्वोभावाः मर्त्यस्य यत् अन्तक एतत् सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितं अल्पम् एव तव एव वाहाः तव नृत्यगीते।।
१।१।२६

न वित्तेन तर्पणीयः मनुष्यः लप्स्यामहे वित्तम् अद्राक्ष्यम् चेत् त्वा।
जीविष्यामः यावत् ईशिष्यसि त्वं, वरः तु मे वरणीयः स एव।।
१।१।२७

नचिकेता अपनी बात पर दृढ़ रहा । यमाचार्य के नाना प्रलोभन उसे लुभा नहीं सके। इस प्रकार शिष्य की परीक्षा और उस में विद्या ग्रहण की योग्यता अनुभव कर उसे सीख दी–''सुख दो प्रकार के होते हैं–पहला है प्रेय और दूसरा है श्रेय । जो सुख शुरू में सुख की अनुभूति देता है, परन्तु परिणाम में दु:ख देता है, वह प्रेय है (अविद्या है)। और जो प्रारम्भ में दु:ख देता है और अन्त में सुख देता है, उसे श्रेय नि:श्रेयस् कहते हैं। जो व्यक्ति श्रेय ग्रहण करता है, उसका कल्याण होता है और जो लक्ष्य आदर्श से पतित हो जाता है । वह पुरुषार्थ से गिर जाता है।

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः ।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते।।१।२।१

संसार की यात्रा प्रारम्भ करते समय हर व्यक्ति के सामने दो रास्ते खुले होते हैं–पहला रास्ता श्रेय का है और दूसरा रास्ता प्रेय का। इन दोनों रास्तों को यमाचार्य ने विद्या और अविद्या भी कहा है । भौतिक अभ्युदय चाहने वाला प्रेय को चुनता है । और अमृतत्व का इच्छुक व्यक्ति श्रेय की ओर प्रवृत्त होता है । परस्पर एक दूसरे से मिले हुए श्रेय और

प्रेय व्यक्ति के पास आते हैं, बुद्धिमान् व्यक्ति भली भांति सोच कर उन्हें पृथक्-पृथक् करता है । इन दोनों के रास्ते एक दूसरे से उल्टे हैं-विपरीते । इन दोनों में से पहला विद्या या अध्यात्म मार्ग का रास्ता है और दूसरा सांसारिक या जीवन मार्ग–अविद्या का रास्ता। विवेकी व्यक्ति श्रेय का मार्ग चुनता है, प्रेय का नहीं । नचिकेता विद्या मार्ग-श्रेय मार्ग का पथिक था, फलतः उसे संसार के विभिन्न प्रलोभन लुभा नहीं सके– **न त्वा कामाः बहवः अलोलुपन्** । सामान्यतया जो ज्ञान विद्या कहलाता है–संसार का सम्पूर्ण भौतिक ज्ञान-विज्ञान कहलाता है, उपनिषत् की परिभाषा में वह अविद्या है। सामान्य मूर्ख व्यक्ति, भौतिक योगक्षेम के निमित्त प्रेय चुनता है । कठ उपनिषत् के पहले अध्याय की दूसरी वल्ली का दूसरा मन्त्र यही सन्देश देता है:

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।।
१।२।२

यमाचार्य ने स्वीकार किया– हे नचिकेता, तुमने श्रेय का वरण किया, प्रेय के आकर्षण में नहीं पड़े । इसलिए तुम आत्मज्ञान के सच्चे अधिकारी हो, इसलिए आत्मज्ञान सिखलाया ।

अध्यात्म का स्वरूप : सच्चा आत्मज्ञान

सारे वेद शास्त्र जिस पद का वर्णन करते हैं, सब प्रकार की तपस्याएं जिसका बखान करती हैं और जिसके जानने की इच्छा से ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, संक्षेप से वह पद ओ३म् है । ओ३म् द्वारा स्मरण किया जाने वाला-कभी नष्ट न होने वाला अविनाशी आत्मतत्त्व ही ब्रह्म है । इस ओ३म् को जान कर ही अध्यात्म में गति हो सकती है, इसी का सहारा लेकर मानव ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित हो जाता है।

वैदिक संस्कृति में ओ३म् शब्द की बड़ी महत्ता है । माण्डूक्य उपनिषद् में ओ३म् की ही चर्चा है । इस उपनिषत् के ऋषि की मान्यता है कि वर्त्तमान भूत और भविष्यत् सब ओंकार की ही व्याख्या हैं– **ओंकारम् इत्येतद् अक्षरम् इदं सर्वं तस्य उपव्याख्यानम् भूतं भवत् भविष्यत् इति** । ओङ्कार चतुष्पाद कहा जाता है अकार, उकार मकार तथा अमात्र । अकार जाग्रत अवस्था, उकार स्वप्नावस्था, मकार सुषुप्ति अवस्था का सूचक है । ये तीनों समान रूप से मनुष्य के भौतिक स्वरूप के प्रतिनिधि हैं, केवल अमात्र उसके आध्यात्मिक स्वरूप का बोध कराता है । इस प्रकार चतुष्पाद ओङ्कार सम्पूर्ण मनुष्य के शरीर और आत्मा का प्रतीक है ।

सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥२।१५

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥२।१६

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥२।१७

आत्मा को जानो

जो व्यक्ति यह समझ लेता है कि इस भौतिक शरीर में यह देहहीन आत्मा निवास करता है– **'अशरीरं शरीरेषु,** यह महान् आत्मा और विभु परमात्मा को जान कर शरीर के नाश को और इस संसार के उपद्रवों को देख कर धीरज नहीं खोता, वह शोक-सागर में नहीं डूबता। **महान्तं विभुम् आत्मानं मत्वा धीरः न शोचति ।'** इस प्रकार यह आत्मा न तो कभी पैदा होता है और न ही कभी मरता है । न तो वह किसी में से हुआ है और न इस में से कुछ हुआ । इसका जन्म नहीं होता, वह सदा बना रहता है, नित्य है, शाश्वत है । शरीर के मर जाने पर भी यह नहीं मरता।

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥
१।२।१८

वर्णन किया गया है कि यह आत्मा अणु से भी छोटा है और महान् से भी महान् । यह प्रत्येक वाणी के अन्दर छिपा है, जिस आदमी में किसी तरह की इच्छा शेष नहीं है, उसे अपने मन और इन्द्रियों की शक्ति से इसके दर्शन होते हैं, उसके सभी तरह के दुःख मिट जाते हैं।

अणोरणीयान्महतो महीयान् आत्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः॥
१।२।२०

स्वभावतः जिज्ञासा होती है कि फिर यह आत्मज्ञान कैसे, अगले मन्त्र में स्पष्ट कहा गया है– यह आत्मा का ज्ञान उपदेश सुनने मात्र से प्राप्त नहीं होता, न बुद्धि से और न बहुत ज्ञान प्राप्त करने से, यह आत्मा का ज्ञान केवल उसी को मिलता है जिसका वह वरण करता है । अर्थात् जिसे वह प्रभु स्वयं स्वीकार करता है । ऐसे व्यक्ति को उसी के आत्मा के दर्शन प्राप्त होते हैं । मन्त्र इस प्रकार है–

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥
१।२।२३

आत्मा का साक्षात्कार तो हो जाता है, परन्तु जो व्यक्ति **न अविरतः दुश्चरितान्** जो व्यक्ति दुश्चरित्र से हटा नहीं है, जो अशान्त है, जिसका मन और इन्द्रियां वश में नहीं हैं– ऐसे व्यक्ति को आत्मा-परमात्मा के दर्शन नहीं होते ।

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ।।२४

शरीर से पृथक् आत्मा के अस्तित्व की प्रतीति तथा भगवान् का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए आध्यात्मिक जीवन कैसा होना चाहिए, इसकी चर्चा करते हुए यमाचार्य ने नचिकेता का पथ-प्रदर्शन किया । उन्होंने बतलाया कि आत्मा को रथ में बैठा रथी मानो, शरीर को उसका रथ मानो और मन को लगाम । यहां इन्द्रियों को घोड़े कहा गया है और इन्द्रियों के विषयों को सड़कें । इस प्रकार जब शरीर, इन्द्रियों और मन के साथ आत्मा की पटरी बैठती है, तभी सच्चा सुख मिलता है । प्रासंगिक मन्त्र इस प्रकार है–

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ।।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।।१।३।३,४

यमाचार्य ने नचिकेता को सीख दी–जो व्यक्ति विवेकयुक्त बुद्धि रूपी सारथी से सम्पन्न हो, मन रूपी लगाम जिसके वश में हो, वह संसार मार्ग को पार कर सर्वव्यापक परमात्मा के सच्चे मोक्षधाम को प्राप्त करता है । मन्त्र इस प्रकार है–

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान् नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ।।९।

उक्त मन्त्रों में एक सुन्दर रूपक है, इसमें आत्मा के लक्ष्य और उसकी प्राप्ति के कुछ साधनों का उल्लेख है । इन मन्त्रों में बतलाया गया है कि इस संसार रूपी यात्रा में जीवात्मा को दुर्लभ मनुष्य रूपी शरीर रथ के रूप में मिला हुआ है। आत्मा रथी है, बुद्धि सारथी है जो मन रूपी लगाम को पकड़े हुए रथ के इन्द्रिय रूपी घोड़ों को प्रयुक्त कर रहा है । वेद की उक्ति **'उद्यानं ते पुरुष नावयानम्'** में निर्दिष्ट नित्य ऊपर उठते हुए परमानन्द के स्रोत के लक्ष्य तक जीवात्मा को पहुंचना है और यह लक्ष्य उसी स्थिति में पूर्ण हो सकता है, जब रथी, रथ और रथ में प्रयुक्त इन्द्रियां रूपी घोड़े सभी सावधानी से अपना-अपना कार्य करने में सक्षम और समर्थ हों । यदि रथी रोगी हो जाए, रथ के कील-कांटों, पहियों और पुर्जों में कोई खोट आ जाए अथवा सारथी

ही घोड़ों या इन्द्रियों का नियन्त्रण न करे तो लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होगी, परन्तु सब को व्यवस्थित सुसंचालित कर ही यह संसार-यात्रा सफल हो सकती है ।

आचार्य का उद्बोधन

आचार्य से मांगे तीनों वर पहले पिता, स्वस्थचित्त हो जाएं, दूसरे भौतिक सुखों के स्थान पर आध्यात्मिक सुख को स्वर्ग को पिता प्राप्त कर सकते हैं– वह स्वर्ग्य अग्नि की उपासना कर सकते हैं और तीसरे मृत्यु शरीर की होती है, आत्मा की नहीं । आत्मा-परमात्मा अमर हैं, न उत्पन्न होते हैं, न मरते हैं। मानव-जीवन का लक्ष्य आत्मा-परमात्मा का तादात्म्य स्थापित करना है । यह लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अध्यात्म मार्ग का पथिक आगे बढ़ता है । उस में शरीर रथ है, आत्मा रथी है, शरीर साधन है, आत्मा इस साधन का उपयोग करने वाला है, शरीर भोग्य है, आत्मा भोक्ता है । परन्तु इन्द्रियों का नियन्त्रण भी सम्भव है। विषयों के प्रति प्रतिकूल दौड़ ही श्रेय मार्ग है । अध्यात्म का चिन्तन करने वाले श्रेय मार्ग के पथिक के लिए विषयों से इन्द्रियां दूर रह सकती हैं–'**इन्द्रियेभ्यः परा हि अर्थाः।** अर्थ–अर्थात् संसार के विषयों से मन दूर रह सकता है। **अर्थेभ्यश्च परं मनः**–मन की चपलता से मन दूर रह सकता है–**मनसस्तु परा बुद्धिः।** बुद्धि से आत्मा बहुत दूर हो सकता है। **बुद्धेः आत्मा महान् परः** । बाहर की यात्रा से संसार की उपलब्धियाँ मिलती हैं । यह प्रेय मार्ग है । अन्दर की यात्रा में भगवान् मिलते हैं । यही श्रेय मार्ग है । अध्यात्म मार्ग के पथिक अपनी इन्द्रियां मन के अधीन, अपना मन बुद्धि के अधीन और अपनी बुद्धि आत्मा के अधीन और आत्मा को परमात्मा के अधीन छोड़ दें ।

मानव जाति का नचिकेता के माध्यम से उद्बोधन करते हुए यमाचार्य कहते हैं–''अध्यात्म का मार्ग ही सच्चा मार्ग है, परन्तु यह मार्ग सही होता हुआ भी कठिन है, यह मार्ग छुरे की तेज धार पर चलने के समान है । वह प्रेरणा देते हुए कहते हैं–''उठो, जागो, श्रेष्ठ जनों की संगति कर उद्बुद्ध हो जाओ। प्रेरणा का यह मन्त्र इस प्रकार है–

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥

१।३।१४।–६८

इस मार्ग पर चल कर ही व्यक्ति शब्दरहित, स्पर्शरहित, रूपरहित, अविनाशी, रसहीन, गन्धहीन, अनादि, अनन्त, महत्तत्त्व से परे

सत्यस्वरूप परमात्मा को सच्चे आत्मतत्त्व को जान कर मृत्यु के मुख से छूट जाता है । प्रासंगिक मन्त्र इस प्रकार है–

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात् प्रमुच्यते ॥

१।३।१५–६९

बुद्धिमान् व्यक्ति यमाचार्य द्वारा प्रस्तुत नाचिकेत उपाख्यान को ब्रह्मलोक एवम् उसे चाहने वाले ब्रह्मज्ञानियों के विषय को भली प्रकार समझ सकता है ।

यह आत्मदर्शन कैसे हो सकता है ?

यमाचार्य नचिकेता को समझाते हैं–भगवान् ने मानव की इन्द्रियां बहिर्मुखी बनाई हैं, फलतः वह बाहर की ओर देखता है, अन्तरात्मा की ओर नहीं देखता । अमर पद की आकांक्षा करने वाला धीर व्यक्ति ही अपनी आखें बाह्य विषयों से हटा कर अन्तर्यामी आत्मा को देख पाता है । बाल बुद्धि मानव बाह्य सांसारिक भोगों में फंसे रहते हैं, फलतः वे सर्वत्र फैले हुए मृत्यु के बन्धन के शिकार हो जाते हैं, किन्तु धीर पुरुष, नित्य अमर पद को जान कर इस संसार के अनित्य भोगों में नहीं फंसते । (**धीराः अमृतत्वं विदित्वा अध्रुवेषु ध्रुवं न प्रार्थयन्ते।**) हमारी बाह्य इन्द्रियां हमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा स्त्री प्रसंग जन्य भोगों की ओर खींचती हैं, (**रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शान् च मैथुनान्।**) परन्तु ये तो बाहरी खोल मात्र हैं, उनके भीतर से झांकने वाला तत्त्व न हो तो कौन देखे, कौन सुने, कौन सूंघे, हमारी इन्द्रियों के पीछे जो बैठा है, अन्त में वही देखता, सुनता और सूंघता है, वही सब ज्ञान ग्रहण करता है । (**एतद् एव विजानाति**) वह यह भी जानता है कि इस संसार में कुछ नहीं रखा । (**किम् अत्र परिशिष्यते।**) यमाचार्य कहते हैं–हे नचिकेता, तुमने पूछा था कि मृत्यु के बाद क्या शेष रह जाता है? (**या इयं प्रेते विचिकित्सा**) उसका यही उत्तर दिया जा सकता है कि जिससे आंखें देखती हैं, जिसके बिना नहीं देख सकतीं, जिससे कान सुनते हैं, जिसके बिना कान सुन नहीं सकते हैं, वही मृत्यु के बाद शेष रह जाता है। इतना ही नहीं हम रात को सपने देखते हैं, दिन को जागते हुए बहुत कुछ देखते हैं–स्वप्न के जागने के अन्त में–न स्वप्न बचता है और न जागरण शेष रहता है । दोनों अवस्थाओं के दृश्य आत्मा देखता है, वही स्वप्न और जागरण असत्य हो जाते हैं, परन्तु इन दोनों के मध्य रहने वाला आत्मा ही सत्य बना रहता है।

(**स्वप्नान्तं जागरितान्तं च उभौ येन अनुपश्यति ।**) इस विभु आत्मा को जानकर धीर मानव शरीर का वियोग होने पर दु:खी नहीं होता, मृत्यु उसे दु:खदायी नहीं होती । (**महान्तं विभुम् आत्मानं मत्वा धीरः न शोचति।**)

जो मानव इस कर्मफलभोक्ता और प्राणादि को धारण करने वाले आत्मा को उसके समीप रहने वाले आत्मा को उसके समीपता से जानता है, उससे यह छुपा नहीं रहता कि यह तत्त्व वही है, जिसके बारे में तुमने पूछा था । यमाचार्य बतलाते हैं कि जो मोक्ष चाहने वाला अपने पहले तप से उत्पन्न हुए हिरण्यगर्भ एवं जल आदि पांच महाभूतों से पहले अवस्थित सब प्राणियों की हृदय रूपी गुफा में अवस्थित परमात्मा को देखता है, वही उस ब्रह्म को देखता है, निश्चय से वही ब्रह्म है। यमाचार्य कहते हैं—वह देवतामयी परमात्मशक्ति मातृतुल्या है । वह कभी खण्डित नहीं हो सकती, नष्ट नहीं हो सकती, वह नित्य है । सब जीवों में व्यक्त और अन्त:करण में अवस्थित वह शक्ति अदिति है । उसे प्राणायाम से अनुभव किया जा सकता है । वह बुद्धि रूपी गुफा में प्रविष्ट होकर निवास करती है । और उसे पंच महाभूतों से ही जाना जा सकता है । वही है, वह परमात्म शक्ति जिसके विषय में तुमने जिज्ञासा प्रकट की थी ।

आचार्य नचिकेता को आगे कहते हैं 'जिस प्रकार अरणियों में अग्नि छिपी होती है, दीखती नहीं, उसे प्राप्त करने के लिए अरणियों का रगड़ना जरूरी है, इसी प्रकार जैसे शिशु के जन्म पूर्व गर्भिणी स्त्री को बड़ी सावधानता से अपने गर्भ की रक्षा करनी होती है, इसी प्रकार परम तत्त्वों का साधक गहन चिन्तन और मनन रूपी मन्थन-आलोडन से परम तत्त्व को प्राप्त कर सकता है ।' आचार्य समझाते हैं कि भगवान् के दर्शन करने हों तो इन शारीरिक आंखों से नहीं प्रत्युत मन से उसके दर्शन हो सकते हैं (**मनसा एव इदम् आप्तव्यम्**) सृष्टि में परमात्मा के दर्शन उसी समय हो सकते हैं, जब नानात्व अनेकता की जगह एकता के दर्शन हों ।

मानव हृदय में प्रतिष्ठित परमात्मा

योगदर्शन में परमात्मा को पुरुष विशेष कहा गया है—**क्लेश-कर्म-विपाक आशयैः अपरामृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः।** यमाचार्य ने नचिकेता को समझाया—"वह अङ्गुष्ठ मात्र परमात्मा-भूत तथा भविष्य का नियामक है, संसार के हर पदार्थ एवं हर वस्तु का

वह स्वामी है, उसे भली प्रकार जानकर कोई किसी से घृणा नहीं कर सकता । यह वही परम तत्त्व है, जिसके बारे में तू ने जिज्ञासा प्रकट की थी।'' यमाचार्य ने स्पष्ट कर कहा–''आत्मा में विद्यमान अङ्गुष्ठ मात्र पुरुष ऐसी दिव्य ज्योति है, जिस में धूएं का लेश मात्र भी नहीं। वह भूत-भविष्य का स्वामी है, वही आज है, वही कल होगा, वह सनातन है। हे नचिकेता, यही वह ब्रह्म है, जिसके बारे में तू ने पूछा था । सम्बद्ध दोनों मन्त्र इस प्रकार हैं–

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।
ईशानो भूत-भव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ।। एतद्वै तत्।
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः ।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः ।। एतद्वै तत्।

२।४।१३।८३,८४

यमाचार्य शिष्य को सत्यपरामर्श देते हैं जिस प्रकार ऊंचे नीचे विषम स्थलों में बरसा हुआ जल निम्न पर्वतों की नाना दिशाओं में बह जाता है, जिस प्रकार शुद्ध जल शुद्ध जल में मिला दिया जाये तो शुद्ध जल बना रहता है और अशुद्ध जल में मिला दिया जाए तो अशुद्ध हो जाता है । इसी प्रकार ज्ञानवान् मुनि की आत्मा ब्रह्म से मिल कर उसी प्रकार पवित्र और ज्ञान स्वरूप हो जाती है ।

ब्रह्मतत्त्व की खोज

ब्रह्म या परमात्मतत्त्व दुर्बोध है, फलतः अन्य प्रकार से उसका विवेचन करते हुए यमाचार्य वर्णन करते हैं–हमारा शरीर ग्यारह दरवाजों वाला एक नगर है । हे नचिकेता–ये ग्यारह मार्ग ये हैं–दो आंखें, दो कान, दो नासिकाएं, एक मुख, एक तालु, एक नाभि, दो निम्न बाह्य द्वार और एक सिर में प्रतिष्ठित गुप्त द्वार-ब्रह्मरन्ध्र कुल ग्यारह द्वार हैं। नित्य विज्ञान स्वरूप अजन्मा आत्मा का पुर या नगर ग्यारह द्वार वाला है । उस आत्मा का ध्यान-अनुष्ठान करने पर मनुष्य कभी शोक से ग्रस्त नहीं होता, फलतः वह शरीर के रहते हुए भी सब प्रकार के कर्म-बन्धनों से मुक्त हो जाता है । यह वही परमतत्त्व है जिसके विषय में तूने पूछा था । मन्त्र इस प्रकार है–

पुरम् एकादशद्वारम् अजस्यावक्रचेतसः ।
अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते ।। एतद्वै तत्।

२।२।१।८७

यमाचार्य कहते हैं–''यह आत्मा केवल एक ही शरीर रूपी पुर में रहने वाला नहीं है, प्रत्युत अनेक पुरों में रहता है, यह जीवात्मा

हंस है, वसु है, होता है, अतिथि है । शुद्ध, पवित्र, धवल हंस रूप जीव शुद्ध ब्रह्म में निवास करता है । (**हंसः शुचिषद्**) अन्तरिक्ष में निवास करने वाले वसु के समान वसु रूप जीव हृदय रूपी अन्तरिक्ष में निवास करता है । (**वसुः अन्तरिक्षसद्**) यज्ञ की वेदी पर बैठे हुए होता के समान होता रूप यह जीव तीनों अग्नियों को अपने अन्दर प्रदीप्त करता है । (**होता वेदिषद्**) अतिथि जिस प्रकार गृहस्थी के घर दुरोण को अपना मानकर नहीं बैठता । जीवन की यात्रा का क्रम हंस, वसु, होता और अतिथि का है । हंस सरलता, शुद्धता और शुचि का प्रतिनिधि है इसीलिए उसे शुचिषद् कहा । जीवन की प्रथम अवस्था ब्रह्मचर्य आश्रम की सूचना देती है, उस समय बालक हंस की तरह सरल, शुद्ध और शुचि होता है, यमाचार्य इस अवस्था को नृषद् कहते हैं, उसमें मानव नर बनने की प्रक्रिया में होता है । जीवन-यात्रा का दूसरा पड़ाव वसु का है । वसु का अर्थ बसना या बसाना होता है । पच्चीस वर्ष का ब्रह्मचारी भी वसु कहलाता है । बसना या बसाना गृहस्थाश्रम में सम्भव है, उसे 'वसु' इसलिए कहते हैं, वह स्वयं बसता है, दूसरों को बसाता है । जीवन-यात्रा की तीसरी स्थिति होता की है, उस स्थिति में अपेक्षा है कि मानव समाज के लिए स्वयं को होम कर दे । यही जीवन का 'यज्ञमय' होना है । वस्तुतः वह जीवन का वानप्रस्थ आश्रम है । जीवन-यात्रा की चौथी स्थिति अतिथि के तुल्य है । उस स्थिति में मानव अतिथि के समान हो जाता है, वस्तुतः वह संन्यास आश्रम में संसार में अतिथि के समान हो जाता है । जीवन के इन चार आश्रमों को यमाचार्य नर-देह, वर-देह, ऋत-देह और व्योम-देह की संज्ञा देते हैं । इस प्रकार मानव ज्ञानात्मा से महानात्मा और शान्तात्मा हो जाता है । सम्बन्धित मन्त्र इस प्रकार है—

हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद् होता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद् वरसदृतसद् व्योमसद् अब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥

२।२।२।८८

आचार्य बतलाते हैं आत्मा अङ्गुष्ठ मात्र है, वह शरीर के मध्य भाग में अवस्थित रह कर प्राण वायु को ऊपर की ओर ले जाता है, मध्य भाग के नीचे विद्यमान अपान वायु को नीचे की ओर ढकेलता है, हृदय-पुण्डरीक की चक्षु आदि सभी इन्द्रियां उपासना करती हैं, मानव-जीवन प्राण शक्ति और अपान शक्ति से बंधा हुआ है । इन दोनों शक्तियों के संचय-अपचय से मानवीय जीवन शक्ति बनी रहती है, सभी इन्द्रियों में यह प्रक्रिया प्रचलित रहती है इन दोनों का संचालन अङ्गुष्ठमात्र पुरुष करता है ।

यमाचार्य बतलाते हैं जब शरीर से देही जीवात्मा निकलने लगता है, तब इस शरीर में स्थित स्वामी आत्मा के बन्धन से छूट जाने पर इस शरीर में क्या रह जाता है? अर्थात् कुछ शेष नहीं रहता । जीवात्मा के निकल जाने पर यह शरीर मिट्टी हो जाता है । कोई भी मानव न तो प्राण से जीवित रहता है और न अपान से, बल्कि वे तो दोनों ही जिस में ये दोनों आश्रित रहते हैं, ऐसे किसी अन्य से ही जीवित रहते हैं ।

यमाचार्य ने पहले वचन दिया था कि मैं तुझे अत्यन्त गुप्त रहस्य से परिपूर्ण-ब्रह्म के बारे में मृत्यु के बाद आत्मा की क्या गति होती है-उस रहस्य के बारे में अब बतला दूंगा । आचार्य गुह्य ब्रह्मोपदेश देते हुए कहते हैं–प्राणादि के सो जाने पर प्रलय काल में सारी सृष्टि के सो जाने पर जो यह पुरुष, जो वस्तु जैसी होनी चाहिए । उसका वैसा ही निर्माण करता रहता है, वही शुद्ध स्वरूप वही ब्रह्म अमृत कहा जाता है, उसमें सम्पूर्ण लोक आश्रित हैं कोई भी उसका उल्लंघन नहीं कर सकता । हे नचिकेता, वही वह ब्रह्म परमेश्वर है, जिसके बारे में तुमने पूछा था । यह मन्त्र इस प्रकार है–

य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन ॥
एतद्वै तत्।२।२।८।–१४

अग्नि और वायु के दृष्टान्त से परमेश्वर की व्यापकता का वर्णन करते हुए कहा गया है । जैसे एक ही अग्नि समस्त भूतों में प्रविष्ट होकर उनके समान प्रतीत होता है, उसी प्रकार यह अन्तर्यामी भिन्न-भिन्न प्राणियों में उनके अनुरूप नाना रूपों में दीखता हुआ उनसे बाहर भी है । जैसे सारे विश्व में एक वायु नाना रूपों में प्रकट होता है। उसी प्रकार वह अन्तर्यामी नाना रूपों में उन्हीं के रूप वाला दीखता हुआ उनसे बाहर भी है । आचार्य आगे बतलाते हैं जैसे सूर्य सम्पूर्ण लोक का चक्षु होते हुए भी नेत्र सम्बन्धी बाह्य दोषों से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा-परमेश्वर जगत् के दुःखों से लिप्त नहीं होता, क्योंकि वह सब में रहता हुआ भी सब से पृथक् है।

आचार्य शिष्य को सीख देते हैं-सब को अपने अधीन रखने वाला सब भूतों का अन्तरात्मा अद्वितीय, एक प्रकृति से नाना रूपों का निर्माण करने वाला, उस अपनी आत्मा में अवस्थित परमात्मा को जो धीर पुरुष निरन्तर देखते हैं । उन्हीं को अटल परम सुख मिलता है, दूसरों को नहीं । इसी प्रकार सुख-शान्ति के परम साधन परमात्मा का वर्णन करते हुए कहा गया है । वह अनित्य पदार्थों में नित्य और चेतनों

का चेतन है, वह अकेला ही अनेक की कामनाएं पूर्ण करता है, अपनी आत्मा में अवस्थित परमात्मा को जो देखते हैं । ऐसे विवेकी धीर पुरुषों को अटल शान्ति सुख की प्राप्ति होती है, दूसरों को नहीं ।

ज्ञानी पुरुष उस परम सुखस्वरूप परमात्मा को अनिर्वाच्य-अनिर्वचनीय समझते हैं । जिज्ञासा है कि क्या उसका स्वरूप जाना जा सकता है, क्या उसका साक्षात्कार सम्भव है? यमाचार्य इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए बतलाते हैं–वह भासता है और विशेष रूप से दिखाई देता है । उस सर्वप्रकाश का अप्रकाश्य रूप वर्णन करते हुए आचार्य कहते हैं । उस आत्मलोक में सूर्य प्रकाशित नहीं होता, चन्द्रमा और तारे भी नहीं चमकते, न यह विद्युत् ही जगमगाती है, फिर उस भौतिक अग्नि की तो बात ही क्या है । उसके प्रकाश से ही ये सब (सूर्यादि) प्रकाशित होते हैं और उसी की ज्योति से यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित हो रहा है । **(त एवं भान्तम् अनुभाति सर्वमः, तस्य भासा सर्वम् इदं विभाति।)**

नचिकेता सोचता है– सृष्टि में परमात्मा नहीं दीखता न अनुभव में आता है ? इस पर यमाचार्य समझाते हैं । यह संसार उल्टा है, इसलिए परमात्मा नहीं दीखता, अनुभव में नहीं आता । जिसका मूल ऊपर की ओर तथा शाखाएं नीचे की ओर हैं– ऐसा यह सनातन अनादि अश्वत्थ वृक्ष है । आचार्य कहते हैं सृष्टि का मूल तत्त्व भगवान् है, परमेश्वर है, वह ही शुद्धतम है, वही ब्रह्म है, वही अमृत है । इस चराचर जगत के सब लोक-लोकान्तर उसी के सहारे टिके हुए हैं। उसी पर उसका अस्तित्व अवलम्बित है, उसे कोई पार नहीं कर सकता, वही अज है, उसके आगे कुछ नहीं । हे नचिकेता यही परमेश्वर है, जिसके विषय में तुमने पूछा था । प्रासंगिक मन्त्र इस प्रकार है–

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।
तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन ॥

एतद्वै तत्।२।३।१।१०२

आचार्य बतलाते हैं– 'यह जो कुछ सारा जगत् है, वह प्राण ब्रह्म में उदित होकर उसी से चेष्टा कर रहा है । **(प्राणे एजति निःसतृम्)** यही प्राणशक्ति जगत् को जीवन प्रदान कर रही है। यह उसी प्रकार है जैसे कोई सामने वज्र लेकर खड़ा हो, थोड़ा भी रुके तो वज्रपात हुआ, मानो वज्रपात के भय से संसार में गति बनी रहती है **(महद् भयं वज्रमुद्यतम्)**। जो उसे जानते हैं, वे निर्भय हो जाते हैं **(ये एतद् विदुः अमृताः ते भवन्ति)** । उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता, क्योंकि

कष्ट तो तब हो जब वे भगवान् के विधान का उल्लंघन करें । इसी प्रकार उसके नियन्त्रण के भय से अग्नि तपती है (**भयाद् अग्निः तपति**) उसी के भय से सूर्य तपता है (**भयात् तपति सूर्यः**)। अग्नि, सूर्य, इन्द्र और वायु के अतिरिक्त पांचवाँ–मृत्यु भी उसी के भय से भागा फिरता है ।

जन्म-जन्मान्तर का चक्कर कैसे छूटे ?

आचार्य बतलाते हैं–अगर तू इस भगवान् को यहां इस जन्म में जानने में सफल हो गया तो फिर इस सृष्टि के रहते तेरा जन्म नहीं होगा और यदि नहीं जान पाया तो इस जन्म-मरणशील लोकों में शरीर धारण करता रहेगा । (**इह चेत् अशकत् बोद्धुं प्राक् शरीरस्य विस्त्रसः। ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ।।**)

विषय को अधिक स्पष्ट करते हुए आचार्य कहते हैं जिस प्रकार दर्पण या आईने में चेहरा स्पष्ट दिखाई देता है, उसी प्रकार निर्मल बुद्धि में आत्मा की स्पष्ट अनुभूति-दर्शन होते हैं। (**यथा आदर्शे तथा आत्मनि**) भगवान् के दर्शन का दूसरा ठिकाना पितृलोक, पितृलोक का तात्पर्य बड़े-बूढ़ों और बुजुर्गों की दृष्टि अपनाना है । समाज के प्रौढ़-बुजुर्ग अपने अनुभव से परमात्मा की चर्चा करते हैं, उनकी चर्चा सुन कर भगवान् के विषय में आस्था सुदृढ़ होती है, परन्तु वह लगभग वैसी ही होती है, जैसे कोई स्वप्न में देखी बात की चर्चा करे । (**यथा स्वप्ने तथा पितृलोके**) भगवान् के दर्शन का तीसरा स्थान गन्धर्व लोक है, जैसे जल में छवि थोड़ी देर तक दिखाई देती है वैसी ही अनुभूति छोटे या बड़े (**गन्धर्व-गां धारयतीति इति गन्धर्वः**) ज्ञानी लोगों के सम्पर्क में आने से होती है (**यथाप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्वलोके**) भगवान् के दर्शन का चौथा ठिकाना ब्रह्मलोक है । ब्रह्मलोक का अर्थ है ध्यानी पुरुषों की सहायता से ब्रह्मयोग के माध्यम से ब्रह्म के दर्शन) ये दर्शन उसी तरह से होते हैं जैसे व्यक्ति छाया और धूप को पृथक्-पृथक् देख लेता है । (**छाया आतपयोः इव ब्रह्मलोके**)

आत्मज्ञान का प्रयोजन

यमाचार्य बतलाते हैं– इन्द्रियों तथा आत्मा में भिन्नता या पृथक्ता यह है कि इन्द्रियों की शक्ति पैदा होती है और फिर वह विनष्ट हो जाती है । (**इन्द्रियाणां पृथक् भावम् उदय-अस्तमयौ च यत् ।**) परन्तु आत्मा का न उदय है और न अस्त । इस प्रकार

इन्द्रियों का स्रोत पृथक् है और आत्मा का स्रोत पृथक् । यह जान लेने पर धीर बुद्धिमान् लोक-शोक नहीं करते (**पृथग् उत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति।**)

जब मनुष्य समझ लेता है कि इन्द्रियां पृथक् हैं और आत्मा पृथक् है, तब उसे समझ आ जाती है कि इन्द्रियों का दुःख मैं अपने ऊपर आरोपित कर रहा हूं, यह दुःख आत्मा का नहीं, इसी के साथ जिस आत्मा का पृथक्त्व इन्द्रियों से दिखलाया गया है, वह कहीं बाहर है, यह नहीं समझना चाहिए । आचार्य समझाते हुए कहते हैं- इन्द्रियों से मन उत्कृष्ट है, मन से बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धि से महत्तत्व बढ़ कर है तथा महत्तत्व से अव्यक्त उत्तम है । (**इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम् । सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम्॥।**)

आचार्य शिक्षा देते हैं-अव्यक्त प्रकृति से भी पुरुष श्रेष्ठ है और वह अव्यक्त भगवान् सर्वव्यापक, अनिवर्चनीय परम पुरुष उत्तम भगवान् है (**अव्यक्तात् पुरुषः परः व्यापकः अलिङ्गः एव च ।**) उसी परम पुरुष को जानकर मनुष्य मुक्त होता है और अमरत्व प्राप्त कर लेता है (**यं ज्ञात्वा जन्तुः अमृतत्वं च गच्छति ।**)

स्वभावतः जिज्ञासा होती है कि जिसका कोई ज्ञेय बाह्य चिह्न नहीं है, उस परम आत्मतत्त्व के दर्शन कैसे हो सकते हैं । जिज्ञासा का समाधान करते हुए आचार्य कहते हैं । इस आत्मा का रूप दृष्टि में नहीं ठहरता (**न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य**) उसे कोई आंख से नहीं देख सकता (**न चक्षुषा पश्यति कश्चन एनम्**) यह परम तत्त्व तो मन का नियन्त्रण करने वाला हृदयस्थिता बुद्धि द्वारा मनन रूप सम्यग्दर्शन से ही जाना जा सकता है और जो उसे ब्रह्मरूप से जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं । (**हृदा मनीषा मनसा अभिक्लृप्ताः, ये एतद् विदुः अमृताः ते भवन्ति।**)

परमपद की प्राप्ति

आचार्य बतलाते हैं जिस समय पांचों ज्ञानेन्द्रियां मन के सहित (आत्मा) में स्थित हो जाती हैं- जब बुद्धि भी चेष्टा नहीं करती, वह अवस्था परम गति कहलाती है । (**यदा पञ्च अवतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह। बुद्धिश्च न विचेष्टति ताम् आहुः परमां गतिम् ।**)

आचार्य का निष्कर्ष है-इस प्रकार मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों का एक साथ मिलकर चल पड़ना ही योग है । (**तां योगम् इति मन्यन्ते स्थिराम् इन्द्रियधारणाम् ।**) जब इस प्रकर योगमार्ग पर चल पड़ते

हैं और पूरी तत्परता से योग-यात्रा चलती है (**अप्रमत्तः तदा भवति**) उस स्थिति में उतराव-चढ़ाव भी आते हैं, योग उदय (प्रभव) और अस्त (अप्यय) स्वभाव वाला है इस मार्ग पर लगातार गति करना और सावधान होकर आगे बढ़ना ही योग-मार्ग है ।

शिष्य साधक को चेतावनी देते हुए गुरु कहते हैं कि वह प्रभु न तो वाणी से, न मन से और न ही नेत्रों से प्राप्त किया जा सकता है (**नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।**) वह है यह मान कर ही उसे पाया जा सकता है (**अस्ति इति ब्रुवतः अन्यत्र कथं तद् उपलभ्यते।**)

इस प्रकार 'प्रभु है' इस प्रकार उसे माना जा सकता है । यह निष्कर्ष स्वीकार कर चला जाए अथवा तात्त्विक विवेचना या युक्ति का दूसरा मार्ग है । युक्ति से प्रभु का वर्णन करने वालों की अपेक्षा अपने अन्तःकरण से प्रभु के अस्तित्व की स्वीकृति वाणी और मन को आह्लादित करती है। (**अस्ति इति एव उपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति।**)

सारी चर्चा का निष्कर्ष है, जब साधक हृदय में अवस्थित सभी कामनाओं से छूट जाता है, तब वह मरणधर्मा मानव अमर हो जाता है और ब्रह्म को पा लेता है।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा ये अस्य हृदि स्थिताः।
अथ मर्त्योऽमृतः भवति अत्र ब्रह्म समश्नुते।।

आचार्य स्पष्ट करते हैं, कि जब मनुष्य के हृदय में अवस्थित वासनाओं-इच्छाओं की सब गांठें छिन्न-भिन्न हो जाती हैं, तब यह मरणधर्मा मानव अमर हो जाता है, यही शास्त्रों का उपदेश है ।

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्ध्यनुशासनम्।।

मनुष्य को संसार की लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणा आदि अनेक कामनाएँ पथभ्रष्ट कर देती हैं । उनके जाल में फंसा वह नाना दुःख भोगता है, केवल संयमी जीवन से मानव सब कामनाओं का नियन्त्रण कर सकता है । आचार्य का सत्परामर्श है कि हृदय की एक-सौ-एक नाड़ियां हैं, उनमें एक मूर्धा (कपाल) को चली जाती है, उसे ही सुषुम्णा कहते हैं, शेष सौ नाड़ियां रह जाती हैं । अन्त समय में इस सुषुम्णा नाड़ी द्वारा गमन करता हुआ आत्मा अमर हो जाता है।

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यः तासां मूर्धानं अभिनिःसृता एका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति।।

घट-घट में बसे भगवान् की प्राप्ति

भगवान् को पाने के लिए कहीं बाहर नहीं जाना चाहिए । बाहर तो संसार बिखरा पड़ा है, अपने आत्मा के भीतर ही वह पुरुष ब्रह्म बैठा हुआ है । उसे योगदर्शन में 'पुरुषविशेष' कहा गया है– **सः पुरुषविशेषः ईश्वरः।** यमाचार्य आत्मा के भीतर अङ्गुष्ठमात्र प्रत्येक जीव के हृदय में सन्निविष्ट ब्रह्म का वर्णन करते हैं, उसे उसी तरह से पाया जा सकता है । जैसे मूंज में दबी सींक खींच कर निकाली जा सकती है । लक्ष्यप्राप्ति के लिए जल्दी से नहीं धैर्य से सतत प्रयत्न से ही सफलता मिल सकती है । आचार्य कहते हैं– हे नचिकेता, वह ब्रह्म शुद्ध है, वही अमृत है, वह शुक्र है, वही अमृत है । यह समझ लो तो तुम्हें लक्ष्य प्राप्ति में अपने सच्चे प्रयत्नों से सफलता मिलेगी, उस स्थिति में आत्मा जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाएगा । उपसंहार मन्त्र इस प्रकार है–

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः। तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीकां धैर्येण तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति।।२।३।१७।१८

साधक के लिए अपेक्षित है कि पुरुष विशेष ईश्वर तक पहुंचने के लिए वह अपनी भौतिक कामनाएं छोड़-प्रेय मार्ग को तिलांजलि देकर अभ्युदय के लिए उपयुक्त श्रेय मार्ग का अवलम्बन करे ।

–अभ्युदय, बी-२२, गुलमोहर पार्क
नई दिल्ली-११००४६

ऋषि दयानन्द का स्वराज्य-चिन्तन

उन्नीसवीं शताब्दी में ऋषि दयानन्द ही प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने भारत पर भारतवासियों का स्वत्व रहे, इस सत्य की निर्भीकतापूर्वक घोषणा की । होमरूल आन्दोलन की प्रवर्त्तक श्रीमती एनी बेसेन्ट ने इसी तथ्य का उद्घाटन करते हुए कहा था– Dayanand was first to proclaim India for Indians. विचार करने की बात है कि स्वामी दयानन्द ने जब १८७४-७५ में स्वदेशी राज्य की बात की और आर्यावर्त्त की पराधीनता पर खेद प्रकट करते हुए आर्यों (भारतवासियों के अखण्ड चक्रवर्ती, सार्वभौम साम्राज्य के लिए परमात्मा से कामना की उस समय तक भारत के सार्वजनिक क्षितिज पर स्वराज्य या स्वतन्त्रता की कोई चर्चा ही नहीं थी । दादा भाई नौरोजी ने तो १९०६ में पहली बार 'स्वराज्य' शब्द का उच्चारण किया था और उसके दस वर्ष बाद लखनऊ कांग्रेस में लोकमान्य तिलक ने स्वराज्य को भारतवासियों का जन्मसिद्ध अधिकार घोषित किया; किन्तु कांग्रेस ने देश की पूर्ण स्वतन्त्रता को लक्ष्य बनाते हुए लाहौर कांग्रेस (१९२९) में ही अपना प्रस्ताव स्वीकार किया था । स्वामी दयानन्द ने तो सत्यार्थप्रकाश की रचना करते समय ही यह स्पष्ट घोषित कर दिया था कि "जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मत मतान्तर के आग्रह से रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।"

यह लिखते समय स्वामी जी ने पराधीनता के कारणों का भी विश्लेषण किया और बताया कि "अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी, किन्तु आर्यावर्त्त में भी आर्यों का अखण्ड, चक्रवर्ती, स्वाधीन, स्वतन्त्र, निर्भय राज्य नहीं है ।" पाठक जरा महाराज के शब्द-चयन पर विचार करें । वे चाहते थे भारत में भारतीयों का राज्य जब हो तो वह अखण्ड हो, स्वाधीन हो, स्वतन्त्र हो तथा निर्भीक हो। स्वामी जी ने यह भी अनुभव किया था कि कहने को तो अंग्रेजी राज्य (British India) में भी यत्र तत्र हिन्दू, मुसलमान, सिख आदि देशी राजाओं का राज्य है, किन्तु ये राज्य कैसे हैं । सुनिये– "जो कुछ हैं सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहे हैं ।" तब स्वराज्य कैसे प्राप्त होगा । 'ऋषि की सम्मति में इसके लिए देशवासियों में सच्ची राष्ट्रीय

एकता भरनी होगी ।' भाषा, शिक्षा, व्यवहार और आचरण में जब तक विरोधी भाव दूर नहीं होंगे स्वराज्य स्वप्नवत् ही रहेगा । इसको कठिन बताते हुए वे पुनः लिखते हैं –''परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक् पृथक् शिक्षा, अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है । बिना इसके छूटे परस्पर का उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना दुष्कर है।''

अब देखना यह है कि क्या देश की पराधीनता पर दुःख व्यक्त करने और भारत को स्वतन्त्र देखने की कामना के विचार स्वामी दयानन्द के जीवन में कब उद्भूत हुए । युवा मूलशंकर ने जब २१ वर्ष की युवावस्था में स्वगृह का त्याग किया था उस समय उसके मानस में सच्चे शिव का दर्शन (मूर्ति-पूजा से हुई विरक्ति के कारण) तथा मृत्यु के रहस्य को जान उस पर विजय प्राप्त करने के भाव ही प्रमुख रूप से थे । जब उन्होंने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण किया और कुछ काल पश्चात् ही संन्यास ले लिया तो उन्हें योगसाधना में प्रवृत्त होना पड़ा । एतदर्थ वे सच्चे योगियों की तलाश में सर्वप्रथम अपने ही प्रान्त गुजरात और तदुपरान्त आबू पर्वत, हिमालय की उपत्यका तथा नर्मदा के तटवर्ती प्रान्तों में वर्षों तक घूमते रहे । साथ ही शास्त्रों का अभ्यास करने का क्रम भी जारी रहा । इस अवधि में दयानन्द का जीवन-चक्र इन दो धुरियों के इदगिर्द ही घूम रहा था । १८५६-५७ के वर्षों में वे देश और दुनिया से कटे हुए सर्वथा असम्पृक्त से नर्मदा के किनारे के गहन आरण्यक अंचलों में विचरण कर रहे थे । उन दिनों की सैनिक और राजनैतिक हलचल की खबर उन्हें थी या नहीं, इसके बारे में प्रमाण पूर्वक कुछ भी कहना कठिन है । किन्तु इतना सत्य है कि १८६० में जब वे स्वामी विरजानन्द की पाठशाला में प्रविष्ट होते हैं तब उनमें संस्कृत विद्या में प्रवीण होने तथा व्याकरणादि शास्त्रों में पटुता प्राप्त करने की ही उत्कट इच्छा थी ।

यहाँ एक बात अवश्य कहनी है । स्वामी दयानन्द के शास्त्रगुरु दण्डी विरजानन्द के वैचारिक पक्ष पर हम लोगों का ध्यान बहुत कम गया है । पं० लेखराम, देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय आदि उनके जीवनी लेखकों ने उनके अपार शास्त्र-ज्ञान, आर्य शास्त्रों के उद्धार हेतु किये गये प्रयत्नों आदि की चर्चा तो की है परन्तु स्वामी वेदानन्द तीर्थ तथा कोटा के प्रो० भीमसेन शास्त्री द्वारा लिखित दण्डी जी के जीवनचरित्रों में यह तथ्य भी उभर कर सामने आया है कि इस अन्ध संन्यासी के हृदय में देश की पराधीनता को लेकर अपार पीड़ा थी । वह चाहता था कि किसी न किसी प्रकार से देश स्वाधीन हो तथा विदेशियों के क्रूर पाश से उसे मुक्ति मिले । दण्डी जी के एक शिष्य नवनीत चौबे

ने एक कवित्त छन्द में प्रज्ञाचक्षु गुरु के हृदय में विदेशी शासन के प्रति आक्रोश के इसी उद्दीप्त भाव को यों प्रकट किया है–

उन्नत ललाट बल बहुल विशाल मुण्ड
अक्षमाल भाल भव्य चंदन त्रिपुण्डी ने ।
नवनीत प्यारे परपच्छ गिरि पच्छन पै
वज्राघात डिण्डिम नाम खलखण्डी ने ।
सम्प्रदायवाद वेद विहित विवर्जित पै
सासन विदेसिन को नासन प्रचण्डी ने
गोरे के अगारी उद्दण्ड भै उठाय दण्ड
चण्ड ह्वै प्रतिज्ञा करी प्रज्ञाचक्षु दण्डी ने ॥''

हम इस कवित्त का अर्थ करते समय देखें कि कवि ने किस प्रकार दण्डी जी के दिव्य शरीर तथा उनके प्रचण्ड व्यक्तित्व का सारगर्भित उल्लेख थोड़े से शब्दों में कर दिया है । नवनीत चौबे दण्डी जी के शिष्य होने के नाते उनकी शारीरिक विभूति को प्रत्यक्ष देखने वालों में थे । वे कहते हैं– ''उनका ऊंचा ललाट है, शरीर में प्रचण्ड शक्ति है, मुख विशाल है, गले में रुद्राक्ष की माला तथा मस्तक पर चन्दन का त्रिपुण्ड्र है । पाठक ध्यान रखें, दण्डी जी कोई आर्यसमाजी संन्यासी नहीं थे। परम्परागत साधुओं की भांति वे रुद्राक्ष मालाएँ धारण करते थे तथा शैव संन्यासियों की भांति मस्तक पर शैव सम्प्रदाय को अभीष्ट त्रिपुण्ड्र नामक तिलक भी धारण करते थे । स्वामी दयानन्द ने भी पर्याप्त समय तक रुद्राक्ष मालाएँ धारण की थीं । यह तो हुई दण्डी जी का बाह्य रूप । आगे कवि कहता है कि दण्डी जी की वज्र सदृश वाणी वैष्णवादि प्रतिपक्षी सम्प्रदायों पर उसी प्रकार प्रहार करती थीं जिस प्रकार देवराज इन्द्र का वज्र पक्षधारी पर्वतों पर प्रहार करता है । दण्डी जी ने वेद विवर्जित सम्प्रदायवाद को नष्ट करने के लिए घोर प्रयास किया । इसी प्रकार उन्होंने विदेशी शासन को नष्ट करने तथा उद्दण्ड गोरों का नाश करने के लिए अपने हाथ में दण्ड तो धारण किया ही, प्रचण्ड प्रतिज्ञा भी की ।''.

निश्चय ही उक्त काव्य में किञ्चित् अतिशयोक्ति है । दण्डी जी ने विदेशी शासन को नष्ट करने के लिए कोई प्रत्यक्ष उपाय न किये हों, अपने प्रिय शिष्य दयानन्द में उन्होंने स्वतन्त्रता की लौ अवश्य लगाई जो कालान्तर में उद्दीप्त होकर प्रचण्ड अग्नि बन गई । जीवन-चरित लेखकों का यह अनुमान ठीक है कि एकान्त के क्षणों में जब विरजानन्द और दयानन्द का वार्तालाप होता था तो उसमें सम्प्रदायवाद के विरुद्ध संघर्ष करने, अनार्ष ग्रन्थों का उन्मूलन करने, मूर्तिपूजादि कदाचारों का

विरोध करने जैसी बातों के साथ साथ विदेशी शासन को कैसे समाप्त किया जाये, जैसे सूत्र भी सम्मिलित रहे होंगे । परन्तु इसके लिए कोई लिखित प्रमाण नहीं हैं । इन गुरु शिष्यों के संवाद के समय कोई अन्य उपस्थित भी तो नहीं रहता था ।

स्वामी दयानन्द के आगे के दस वर्ष धर्मप्रचार तथा वेदविरुद्ध मतवाद के खण्डन को ही समर्पित रहे । वे हरिद्वार के कुम्भ के मेले में जाते हैं । पाखण्ड-खण्डनी पताका लहराते हैं । तत्पश्चात् गंगा के तटवर्ती प्रदेश का भ्रमण करते हुए सन्ध्या, गायत्री, अग्निहोत्र आदि सामान्य वेदोक्त धर्म पर आचरण करने का उपदेश देते हैं। फर्रुखाबाद, कानपुर, काशी आदि नगरों में पौराणिक विद्वानों से मूर्तिपूजा की वैदिकता पर शास्त्रार्थ भी करते हैं । अब तक उनमें जो विचार चल रहे हैं वे यही हैं कि किसी न किसी प्रकार से मूर्तिपूजादि अवैदिक अनुष्ठानों का चलन बंद हो तथा लोग वेद प्रतिपादित वर्णाश्रम का पालन करें। दयानन्द की यह भी चेष्टा रही कि इस महत्त्वपूर्ण कार्य में स्वामी विशुद्धानन्द जैसे आयु तथा अनुभव में उनसे भी वरिष्ठ संन्यासी उनका सहयोग करें । किन्तु मठों में रह कर लौकिक सुखों को भोगने वाले विशुद्धानन्दादि संन्यासियों को दयानन्द का यह कार्यक्रम भला कैसे स्वीकार होता ।

जब स्वामी दयानन्द भारत की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता में आये तो १८७२ का दिसम्बर मास था । राजधानी में धर्मसुधार, शिक्षा, कुरीति निवारण तथा समाजोन्नति के अनेक कार्यक्रम जारी हो चुके थे और बंगाल के सार्वजनिक जीवन में महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशवचन्द्र सेन, रामकृष्ण परमहंस, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा भूदेव मुखोपाध्याय आदि अनेक लोग कार्यरत थे । दयानन्द सरस्वती प्रथम तो दूरस्थ गुजरात देश के थे, फिर बंग देश में वे अपने विचार सरल संस्कृत में ही व्यक्त करते थे । अभी तक उनका हिन्दी पर पर्याप्त अधिकार नहीं हो पाया था, तथापि उन्होंने बंगाल के इन सुधी नेताओं से व्यक्तिगत सम्पर्क किया और देश की दशा को सुधारने के लिए सम्मिलित प्रयास किये जाने पर बल दिया । देखा जाये तो दयानन्द का समाज और देश के प्रति इतिकर्त्तव्यता का भाव प्रथम बार कलकत्ता प्रवास में ही व्यक्त हुआ । इससे पूर्व तक वे मात्र धर्मप्रचारक ही थे।

आगे चलकर जब वे महाराष्ट्र में आये और बम्बई, सूरत, अहमदाबाद, राजकोट तथा अन्त में पूना जाने का उन्हें अवसर मिला तो वे बम्बई प्रान्त (उस समय महाराष्ट्र और गुजरात सम्मिलित थे और उन्हें बॉम्बे प्रेसिडेन्सी के नाम से पुकारा जाता था।) में काम करने वाले

मनीषियों के सम्पर्क में आये। इनमें प्रमुख थे–महादेव गोविन्द रानाडे, गोपालराव हरि देशमुख, महादेव मोरेश्वर कुण्टे, ज्योतिराव फुले, रामकृष्ण भण्डारकर, विष्णु शास्त्री चिपलूणकर तथा भोलानाथ साराभाई आदि। इनमें से कुछ वे थे जो १८६७ में ब्रह्मसमाज के ही अनुकरण पर प्रार्थनासमाज की स्थापना कर देश और समाज के सुधार का यत्किञ्चित् कार्य कर रहे थे। इन महाराष्ट्रीय व्यक्तियों में रानडे, फुले, कुण्टे, देशमुख आदि स्वामी जी के समर्थक और सहयोगी रहे तो चिपलूणकर तथा साराभाई ने उनका विरोध किया। भण्डारकर ने तटस्थता दिखलाई।

१८७५ में आर्यसमाज की स्थापना के पश्चात् दयानन्द की वाणी में राष्ट्रीयता और स्वदेश भक्ति का स्वर निरन्तर प्रखर होता रहा और उन्होंने एक के बाद ऐसे कार्यक्रम प्रस्तुत किये जो देश को स्वराज्योन्मुख बनाने में सहायक बने। इस विवेचन को आगे बढ़ाने के पहले हम यह देखें कि क्या दयानन्द की यह राष्ट्रभावना किसी विदेशी स्रोत से आयातित थी। सामान्यतया आज का इतिहासकार हमें यही बताता है कि भारतवासियों में जो स्वाधीनता की चेतना जागी उसके पीछे पश्चिम में उत्पन्न प्रजातन्त्र के भाव तथा यूरोपीय देशों द्वारा पराधीनता से उन्मुक्त होने के प्रयत्न आदि कारण ही थे। फ्रांस की राज्यक्रान्ति तथा उनसे उत्पन्न स्वतन्त्रता समानता तथा बन्धुत्व (Liberty, Equality, Fraternity) की भावना, रूसो तथा वाल्टेयर के विचार, उधर इंग्लैण्ड के हर्बट स्पैन्सर जॉन स्टुअर्ट मिल आदि के उदात्त भावों से प्रेरित होकर दयानन्द के परवर्ती नेताओं और मनीषियों ने चाहे देशभक्ति के भावों को ग्रहण किया हो, किन्तु अंग्रेजी भाषा से पूर्णतया अपरिचित तथा पश्चिमी देशों के इन सामाजिक-राजनैतिक परिवर्तनों से प्रायः अनभिज्ञ दयानन्द की स्वराज्य भावना के प्रेरणा स्रोत तो वेद के वे सूक्त ही थे जिनमें मातृभूमि की वन्दना करते हुए धरती को माता तथा स्वयं को उसका पुत्र कहा गया है– माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। स्वराज्य की अर्चना के ऋग्वेदीय सूक्त दयानन्द को देश के प्रति समर्पित भाव से कार्य करने की प्रेरणा देते थे। उधर मनु याज्ञवल्क्य, शुक्र, चाणक्य और कामन्दक जैसे राजनीति शास्त्रवेत्ता तथा सामाजिक व्यवस्थाओं के सूत्र संचालकों के विचार दयानन्द के राजनैतिक चिन्तन के स्रोत बने हुए थे।

जरा दयानन्द के समकालीन सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के एतद् विषयक विचारों की समीक्षा करें। उनके पूर्ववर्ती सुधारक राजा राममोहन राय की दृष्टि में ब्रिटिश राज्य भारत के लिए ईश्वर प्रदत्त वरदान के

तुल्य था । इटली के सिसली और नेपल्स जैसे उपनिवेशों के स्वाधीन हो जाने पर जलपोत में ही हर्ष प्रकट करने वाले और अपने साथी यात्रियों को पार्टी देने वाले राजा राममोहनराय ने भारत के स्वतन्त्र होने की कभी कामना नहीं की । इसके विपरीत वे जीवन पर्यन्त अंग्रेजी राज्य के वरदानों का ही गुणगान करते रहे । उन्होंने ही तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड एमहर्स्ट को प्रार्थना पत्र भेजकर अंग्रेजी शिक्षा को सुदृढ़ करने के लिए निवेदन किया तथा संस्कृत शिक्षा का उपहास किया । उन्हीं के अनुवर्ती केशवचन्द्र सेन ब्रिटिशों का गुणानुवाद करने में औचित्य की सीमा का उल्लंघन कर गये । किन्तु इनसे सर्वथा भिन्न हैं दयानन्द। वे अंग्रेज जाति की देशभक्ति, समय-पालन तथा स्वदेश में बनी वस्तुओं को अपनाने जैसे गुणों के प्रशंसक अवश्य हैं किन्तु उनके द्वारा भारत को पराधीन बनाने के दुष्कृत्य को वे भूलकर भी माफ नहीं कर सके। वार्तालाप के अनेक प्रसंगों में कहीं स्पष्ट रूप से, तो अन्यत्र व्यञ्जना का सहारा लेकर उन्होंने अंग्रेजों की इस साम्राज्य लालसा और भारत जैसे महादेश को गुलाम बनाए रखने की साजिश की भरपूर निन्दा की। कतिपय उदाहरण देखें– दानापुर (बिहार) में जोन्स नामक एक धनी अंग्रेज व्यापारी से वार्तालाप के प्रसंग में स्वामी जी ने कहा कि यदि भारतवासियों में एकता तथा सच्ची देशभक्ति के भाव उत्पन्न हो जावें तो विदेशी शासकों को अपना बोरिया बिस्तर उठा कर तुरन्त जाना पड़ेगा। पंजाब में किसी अंग्रेज अफसर से वार्तालाप करते हुए उन्होंने कहा कि पहले तो अंग्रेज लोग बड़ी जल्दी उठ कर भ्रमण के लिए निकल जाते थे, किन्तु आज कल वे आलसी बन कर अपने बंगलों में देर तक पड़े रहते हैं । आलसी और स्वकर्त्तव्य में प्रमादी बन जाने के कारण जैसे आर्यों का राज्य नष्ट हुआ वैसे ही गोरों का राज्य भी इनके आलसी और विलासी बन जाने के कारण नष्ट हो जायेगा ।

स्वराज्य के प्रति ललक को स्वामी जी ने मनुष्य मात्र के लिए नितान्त सहज और स्वाभाविक माना । जब उन्होंने संस्कृत वाक्य-प्रबोध की रचना की, उस समय अफगानों और अंग्रेजों के बीच युद्ध चल रहा था । अंग्रेज शक्ति प्रबल थी और अफगान उनके समक्ष लगातार हार रहे थे, तथापि उन्होंने सीमान्त प्रान्त में बसी अंग्रेजी छावनियों पर हमला करना नहीं छोड़ा । इसी तथ्य का उल्लेख स्वामी जी ने संस्कृत वाक्य-प्रबोध के राजसभा प्रकरण में इस प्रकार किया है– "पराजिता अपि यवना अद्यापि उपद्रव न त्यजन्ति ।" हारे हुए मुसलमान (वस्तुत: अफगान) अब भी उपद्रव (अंग्रेजों को तंग करना ही उपद्रव है ।) नहीं छोड़ते । इसके उत्तर में महाराज ने लिखा– "अयं खलु पशुपक्षिणामपि

स्वभावोऽस्ति, यदा कश्चित् तद्गृहादिक ग्रहीतुमिच्छेत् तदा यथाशक्ति युद्ध्यन्त एव"। अर्थात् यह तो पशु-पक्षियों का भी स्वभाव है कि जब कोई उनके घर (घोंसले) आदि को छीन लेने की इच्छा करता है तब वे यथाशक्ति युद्ध करते ही हैं । व्यञ्जना से महाराज यह कहना चाहते हैं कि जब पशु पक्षी भी अपने घर को सहजतया नहीं छोड़ सकते तो स्वमातृभूमि पर विदेशियों के अधिकार को कोई भी स्वाभिमानी राष्ट्र कब तक सहन करेगा ।

स्वामी दयानन्द स्वराज्य की भावना को देशवासियों में बद्धमूल करने के लिए कृत संकल्प थे । तथापि वे जानते थे कि अभी ऐसा समय नहीं आया है कि शस्त्रों के द्वारा विदेशी सत्ता को हराया जा सके। वे १८५७ के परिणामों को देख चुके थे । उनका यह दृढ़ विश्वास था कि स्वतन्त्रता भी तभी चिरस्थायी हो सकती है जब समाज में एकता, दृढ़ता तथा सुसंस्कारिता के भाव आयें । सामाजिक अभिशापों से अभिशप्त, अशिक्षित, अन्धविश्वासों एवं मूढ़ विश्वासों से जकड़े भारतवासी स्वाधीनता कैसे तो प्राप्त कर पायेंगे और सामाजिक समरसता के अभाव में उनकी आजादी (यदि मिली भी तो) कैसे स्थिर हो सकेगी। तथापि यह मानना होगा कि दयानन्द स्वराज्य के प्रचारक तथा सिद्धान्त स्थापक (Theoretician) ही थे । जिन लोगों ने हाथ में तलवार लेकर अथवा अश्वारोही होकर उनके १८५७ के संग्राम में भाग लेने की बात कही है, उन्होंने दयानन्द के वैचारिक धरातल को कभी समझा ही नहीं।

स्वामी जी ने देशवासियों में देशभक्ति के भाव जगाने के लिए आर्यावर्त्त के पुरातन गौरव का व्याख्यान किया । उन्होंने लिखा–"यह आर्यावर्त्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है, इसलिए इस भूमि का नाम सुवर्णभूमि है क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है --- जितने भूगोल में देश हैं वे सब इसी देश की प्रंशसा करते हैं और आशा रखते हैं । पारसमणि पत्थर सुना जाता है वह बात तो झूठी है, परन्तु आर्यावर्त देश ही सच्चा पारणमणि है कि जिसको लोहे रूपी दरिद्र विदेशी छूते ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं । देशवासियों में स्वदेश की गरिमा को पुन: प्रतिष्ठित करने के लिए दयानन्द ने यत्र तत्र भारतीय इतिहास का पुनराख्यान किया। पूना प्रवचनों में छ: व्याख्यान ऐसे हैं जो इतिहास विषय पर ही हैं। सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास के अन्त में युधिष्ठिर से आरम्भ कर पृथ्वीराज चौहान तक के आर्य राजाओं की नामावली को उन्होंने 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' पत्र से उद्धृत किया । ऐसा करने में उनका प्रयोजन अपने पाठकों को यह बतलाना ही था कि इस देश में स्वाधीनता आज से लगभग एक

हजार वर्ष पूर्व तक रही और महमूद गजनवी और मोहम्मद गौरी के आक्रमणों के पश्चात् देश पराधीनता के शिकंजे में फंस गया ।

भारतीय स्वराज्य के विनाश के लिए स्वामी जी ने परस्पर की फूट, बाल-विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों, अशिक्षा तथा आलस्य एवं प्रमाद पूर्वक विलासी जीवन व्यतीत करने को उत्तरदायी ठहराया। उन्होंने लिखा-''जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं तो तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है । आपस की फूट से कौरव और पाण्डवों का सत्यानाश हो गया परन्तु अब भी वही रोग पीछे लगा है।'' स्वामी दयानन्द ने स्वराज्य-प्राप्ति के साधनों में सत्याग्रह को सर्वोपरि स्थान दिया था। पाठक शायद यह पढ़ कर चौंकेंगे क्योंकि प्रचलित मान्यता के अनुसार तो महात्मा गांधी ही सत्याग्रह के प्रवर्त्तक हैं । स्वामी दयानन्द का भी सत्य के प्रति प्रबल आग्रह था । उनकी सत्य, न्याय और धर्म में अगाध आस्था थी । अपने जीवन के दर्शन को उन्होंने भर्तृहरि के निम्न श्लोक के आधार पर व्याख्यात किया-

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु ।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा ।
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।

नीति निपुण लोग निन्दा करें या स्तुति, धन का आगम हो या घर आई लक्ष्मी चली जाये । आज ही मृत्यु हो जावे या युगों लम्बी आयु मिले, किन्तु सत्य और न्याय के मार्ग से धीर पुरुष कभी विचलित नहीं होते । सत्य के लिए हर कठिनाई को सहन करना और निर्भीक भाव से यह कहना कि लोग चाहे मेरी अंगुलियों को बत्ती बना कर जला ही क्यों न दें मैं सत्य से कभी विचलित नहीं होऊंगा । दयानन्द के सत्याग्रही होने का प्रबल प्रमाण है ।

स्वदेशी वस्तुओं के प्रति उनमें अविचलित निष्ठा थी । उन्होंने छलेसर के ठाकुर गोपालसिंह के पुत्र को स्वदेशी वस्त्र पहनने की प्रेरणा दी । उन्हीं के आदेश को मान कर जोधपुर के मुख्य मन्त्री (तत्कालीन मुसाहब आला) कर्नल महाराज प्रतापसिंह ने अपनी सेना के सिपाहियों तथा अन्य राजकर्मचारियों को खादी (मारवाड़ में इसे रेजा कहते हैं) के वस्त्र धारण करने के लिए कहा । भारतवासियों को हिन्दी जैसी सर्वजन स्वीकृत भाषा के द्वारा एक सूत्र में बांधने का विचार भी महाराज के मन में ही सर्वप्रथम उदय हुआ था । स्वयं गुजराती भाषी होने, लेखन, शास्त्रार्थ तथा प्रवचनों में प्रारम्भ में संस्कृत का प्रयोग करने पर भी जब उन्हें केशवचन्द्र सेन ने हिन्दी को अपनाने का सुझाव दिया तो महाराज

ने उसे विनम्र भाव से स्वीकार किया । जब भारत सरकार ने शिक्षा के माध्यम का निर्णय करने के लिए मि॰ हण्टर की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त किया तो स्वामी जी की प्रेरणा से मेरठ तथा कानपुर आदि नगरों की आर्यसमाजों ने उक्त सज्जन को आवेदन पत्र भेज कर निवेदन किया कि हिन्दी को ही शिक्षा का प्रमुख माध्यम रक्खा जाये। इन आवेदन-पत्रों में नागरी लिपि की उत्कृष्टता तथा फारसी लिपि की अवैज्ञानिकता को अनेक उदाहरण देकर स्पष्ट किया गया था। राष्ट्रभाषा के रूप में आर्यभाषा (हिन्दी) को प्रतिष्ठित करवाना स्वराज्य के लक्ष्य की ओर बढ़ाया गया एक सुदृढ़ कदम था ।

स्वामी दयानन्द यह भी मानते थे कि जब तक भारतवासी आर्थिक दृष्टि से उन्नत नहीं होंगे, उनकी सर्वग्रासी दरिद्रता का विनाश नहीं होगा, तब तक स्वराज्य प्राप्ति भी दिवास्वप्न की भांति ही रहेगी। गोरक्षा के लिए उठाये गये उनके कदम देश के पशुधन की रक्षा और अभिवृद्धि तथा देश की आर्थिक उन्नति के लिए किये गये उनके उपायों की श्रेणी में ही आते हैं । गोरक्षा के प्रति दयानन्द की प्रतिबद्धता "गोमाता के प्राण बचाओ, गाय हमारी माता है ।" जैसे सस्ते किन्तु भावुकतापूर्ण नारों से परिचालित नहीं थी । उन्होंने अपने ग्रन्थों में गाय को कहीं 'माता' कह कर नहीं पुकारा, किन्तु वे उसकी उपयोगिता तथा गुणवत्ता के कारण ही उसे महत्त्व देते हैं । गाय को पशु कहने के कारण तत्कालीन सनातनी समुदाय दयानन्द और आर्यसमाज के प्रति अपने क्षोभ को बहुश: प्रकट करता था, इस तथ्य के अनेक प्रमाण मेरे पास हैं ।

स्वामी दयानन्द देश के द्रुतगति से औद्योगिक उन्नति करने के प्रबल पक्षपाती थे । १९ वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति ने यूरोप के जीवन में परिवर्तन कर दिया था । कल कारखानों, उद्योग धन्धों तथा वाणिज्य व्यवसाय की उन्नति के साथ साथ पश्चिम के देशों को आर्थिक समृद्धि मिल रही थी । भारत तो उस समय तकनीक और वैज्ञानिक प्रगति की पहली सीढ़ी पर भी नहीं चढ़ पाया था । दयानन्द ने अपने देश के छात्रों को जर्मनी में जाकर उद्योगों और कला कौशल सिखाने के लिए उस देश के एक प्राध्यापक प्रो॰ वाइज से विस्तृत पत्राचार किया था । स्वामी जी को उक्त प्राध्यापक ने जो पत्र भेजे थे, वे सभी उपलब्ध हैं तथा इस निबन्ध के लेखक द्वारा हिन्दी में अनूदित भी किये जा चुके हैं, किन्तु स्वामी दयानन्द द्वारा प्रो॰ वाइज को भेजे गये पत्र उपलब्ध नहीं होते । स्वामी जी के असामयिक निधन के कारण उक्त योजना का क्रियान्वय नहीं हो सका, तथापि दयानन्द का स्वदेश हित के लिए देश के अर्थतन्त्र को मजबूत बनाने का संकल्प निश्चय ही अभिनन्दनीय है।

यह तो सत्य है कि स्वामी दयानन्द पश्चिमी भाषा (अंग्रेजी) तथा पश्चिम की भावधारा के साथ सीधे कभी नहीं जुड़े किन्तु ज्यों ज्यों वे राष्ट्रीय प्रश्नों में अधिक रुचि लेने लगे और धर्मोद्धार तथा समाज सुधार के साथ साथ उनका राष्ट्रनिर्माण का कार्य अधिक तीव्र होने लगा, वे पश्चिमी देशों की राजनीति, वहाँ की शासन-पद्धति तथा वहाँ के लोगों की भारत में दिलचस्पी जैसे विषयों के बारे में अधिकाधिक जानकारी लेने लगे। पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा को लिखे अपने पत्र में उन्होंने पूछा कि क्या उनकी महारानी विक्टोरिया से भेंट हुई है तथा क्या वे कभी ब्रिटिश संसद् में गये हैं । उन्होंने मोनियर विलियम्स तथा मैक्समूलर आदि विद्वानों के वेद विषयक विचारों को जानने में भी रुचि दिखलाई, दयानन्द ने अपने इस पत्र में एक अत्यन्त मार्मिक श्लोक लिखा जो देशवासियों के घोर दारिद्र्य तथा यूरोपीय म्लेच्छ जातियों (वे सभी यूरोपीय देश जो भारत का सतत आर्थिक शोषण कर रहे थे।) द्वारा इस देश को पीड़ित किये जाने का हृदयद्रावक चित्र खींच देता है । वह श्लोक यह है-

गत्वा पारलिमेंटसज्जनसभां व्याख्यानमाख्यावरम् ,
दत्त्वा भारतवर्षपूर्वनियमप्रेक्षावतांस्तान् कुरु ।
पश्येयुर्यत ईदृशं निजदशादुःखं द्रुतं दुःखिनाम् ,
म्लेच्छा म्लेच्छतया च भारतजनान् संपीडयन्तीति तत् ॥

अर्थात् आप वहाँ ब्रिटिश पार्लियामेंट नामक सज्जनों की सभा में जाकर और वेदादि शास्त्रानुकूल व्याख्यान देकर उन संसत् सदस्यों को प्राचीन भारतीयों के सौजन्यादि गुणों के नियम से परिचित करायें, जिससे वे शीघ्र ही दुःखित भारतीयों के दुःख दारिद्र्य को देखें कि किस प्रकार म्लेच्छ लोग (अंग्रेज) म्लेच्छपने से भारतीय लोगों को पीड़ित कर रहे हैं । इसी पत्र के १७ वें श्लोक का भाव यह है कि तुम्हें पार्लियामेंट में जाकर यह सब कहना चाहिए ताकि भारतवासियों पर होने वाले अत्याचार बंद हो सकें ।

वस्तुतः दयानन्द के समान देशवासियों की अशेष दरिद्रता, दुःख तथा उनमें विद्यमान अन्धविश्वासादि हानिकर विचारों को देख कर स्वयं दुःखी होने वाले महाप्राण व्यक्ति उस युग में विरले ही होंगे । जो व्यक्ति अपनी सहोदरा बहिन और प्राण-प्रिय पितृव्य (चाचा) की मृत्यु पर एक बूंद आंसू नहीं गिराता, वही दीन, विधवा-अनाथों की दुर्दशा को देख कर खून के आंसू बहाता है । वस्त्र के अभाव में एक अनाथा स्त्री को बिना कफन के अपने प्रिय पुत्र को नदी में प्रवाहित करते देख कर जो वीतराग संन्यासी अपने आंसुओं को नहीं रोक सका, उसकी देशभक्ति सन्देह से परे है ।

स्वामी दयानन्द ने प्रजातन्त्र के मूलभूत सिद्धान्तों को सर्वाधिक महत्त्व दिया था । यही कारण है कि अपने ग्रन्थों में उन्होंने जहाँ जहाँ राजनीति, शासन-नीति तथा न्याय-व्यवस्था आदि का उल्लेख किया है वहाँ जनतान्त्रिक मूल्यों को सर्वोपरि बताया । वे राजा को सभा के अधीन रह कर कार्य करने के लिए कहते हैं । उन्होंने लिखा है कि स्वतन्त्र (स्वेच्छाचारी) राजा प्रजा का नाश कर डालता है । दयानन्द वंशानुगत राजा को नहीं मानते । उनकी दृष्टि में प्रजा द्वारा नियुक्त या चुनी हुई सभा का सभापति ही राजा है । प्रजातन्त्र के मूल्य तो उन्हें इतने प्रिय थे कि उन्होंने स्वस्थापित आर्यसमाज को भी प्रजातान्त्रिक आधार पर ही खड़ा किया तथा भक्त जनों के आग्रह को अस्वीकार कर कभी भी सर्वोच्च गुरु या सर्वाध्यक्ष जैसा एकाधिकार नहीं लिया।

उपर्युक्त विवेचन से दयानन्द के राष्ट्रवादी विचारों तथा स्वराज्य विषयक उनके चिन्तन के कुछ आयाम स्पष्ट होते हैं । यदि दयानन्द की मानसिक एवं वैचारिक प्रक्रिया का अध्ययन किया जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वामी जी ने स्वराज्य के विचार को तो पल्लवित पुष्पित किया था किन्तु वे किसी भी प्रकार की सैनिक हलचल में न तो कभी सम्मिलित हुए और न उसका कभी नेतृत्व ही किया । सर्वप्रथम इतिहासकार पं० जयचन्द्र विद्यालंकार तथा उनके सहयोगी पृथ्वीसिंह मेहता विद्यालंकार ने अपने ग्रन्थों में स्वामी दयानन्द के १८५७ की क्रान्ति में भाग लेने की सम्भावना प्रकट की थी । यह उनका अनुमान मात्र था और स्वमत की पुष्टि के लिए उन्होंने कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं दिया था । कालान्तर में तो विद्यालंकार द्वय की उक्त स्थापना का क्षीण आधार लेकर कल्पना प्रवण लोगों ने तिल का ताड़ बना दिया । किसी ने उन्हें मेरठ के शिवमन्दिर का पुजारी बाबा औघड़नाथ बना दिया तो किसी अन्य ने १८५७ के प्रथम शहीद मंगल पाण्डे से उनकी भेंट करा दी । जब इतने से ही सन्तोष नहीं हुआ तो एक अन्य कल्पना प्रिय व्यक्ति ने हरिद्वार में १८५७ के सभी प्रमुख सेनानियों नाना साहब, लक्ष्मी बाई, कुंवरसिंह, तात्या टोपे, अजीमुल्ला खां आदि को एकत्र कर, उनसे बाकायदा स्वामी जी का इण्टरव्यू करवा दिया और रोती हुई लक्ष्मी बाई द्वारा स्वामी जी को एक हजार रुपये भेंट में भी दिलवा दिये । यह गप्प गढ़नेवाला व्यक्ति भूल गया कि इसके कुछ बाद ही गुरु दक्षिणा के अवसर पर दयानन्द तो प्रज्ञाचक्षु जी की भेंट के लिए कुछ लौंगों का जुगाड़ भी कठिनाई से कर सके थे ।

वस्तुत: १८५७ की हलचल का विस्तृत और एक एक तिथि के क्रम से स्वदेशी तथा विदेशी इतिहासकारों ने विवरण प्रस्तुत किया

है । अंग्रेजी में के तथा मालेसन के इतिहास प्रसिद्ध हैं तो भारतीय इतिहासज्ञों में विनायक दामोदर सावरकर, रमेशचन्द्र मजूमदार तथा डा० रामविलास शर्मा रचित १८५७ के इतिहासों में सम्पूर्ण घटनाचक्र का तथ्याधारित विवरण दिया गया है । वस्तुत: इसमें दयानन्द की भूमिका का आभास तक किसी ने नहीं दिया । रानी लक्ष्मी बाई, कुंवरसिंह तथा नाना साहब आदि के क्रिया-कलापों का विस्तृत ब्यौरा उनके जीवन-चरितों में उपलब्ध है, किन्तु वहां भी दयानन्द कहीं दिखाई नहीं पड़ते। संक्षेप में इतना ही कहना पर्याप्त है कि जब जयचन्द्र विद्यालंकार आदि के विचारों को अन्यथा उपबृंहित किया गया तो सर्व श्री हरविलास शारदा, युधिष्ठिर मीमांसक, इन पंक्तियों का लेखक, प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु, ज्वलन्तकुमार शास्त्री गुजरात के टंकारा ग्राम निवासी प्रा० दयाल आर्य आदि सभी चिन्तकों ने उपर्युक्त उपपत्ति को भ्रममूलक ठहरा कर उसका निराकरण किया । दयानन्द जीवन के गम्भीर अध्येता, आस्ट्रेलिया के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डा० जार्डन्स ने अपनी पुस्तक में ऐसे दस्तावेजों को जाली ठहराया ।

इसी प्रकार की एक कल्पनामूलक घटना कलकत्ता में स्वामी दयानन्द की गर्वनर लार्ड नार्थब्रुक से भेंट विषयक प्रचारित की गई । इसके मूल में अम्बाला के एक वयोवृद्ध आर्य दीवान अलखधारी द्वारा लिखित एक लेख था जो उन्होंने मात्र स्मृति के आधार पर ही १८६३ में मेरठ कालेज की मैगजीन में लिखा था ।

कालान्तर में इसे भूरिश: प्रचारित किया गया किन्तु प्रा० ईश्वरनाथ शिवपुरी द्वारा लन्दन के अभिलेखागार में लार्ड नार्थब्रुक के द्वारा भेजे गये दस्तावेजों की परताल की गई तो पता लगा कि ऐसी किसी भेंट का उल्लेख उक्त दस्तावेज में नहीं है । डा० शिवकुमार गुप्त ने अपने शोध ग्रन्थ 'आर्यसमाज एण्ड दि ब्रिटिश राज' में अनेक हेतु और प्रमाण देकर इस तथाकथित भेंट का प्रतिवाद किया है

यह सब कुछ होने पर भी दयानन्द की स्वराज्य विषयक अव-धारणा तथा भारत को स्वाधीन, स्वतन्त्र एवं निर्भीक स्वराज्य के रूप में देखने की उनकी लालसा के महत्त्व को न्यून नहीं किया जा सकता दयानन्द के स्वराज्य विषयक इसी चिन्तन से अनुप्राणित होकर कालान्तर में श्याम जी कृष्ण वर्मा, भगतसिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, गेंदालाल दीक्षित, तथा सोहनलाल पाठक जैसों ने अपने प्राणों का बलिदान देकर देश की आजादी के संघर्ष को गति दी । इसी प्रकार स्वाधीनता प्राप्ति के लिए किये गये वैधानिक संघर्ष में भाग लेने वाले आर्यसमाजियों की सूची तो बहुत लम्बी है । स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय, भाई परमानन्द

आदि के नाम तो जाने पहचाने हैं किन्तु उन लाखों आर्यसमाजियों के नाम भी कौन जानता है जो कांग्रेस द्वारा संचालित आन्दोलनों में भाग लेते रहे, वर्षों तक कारागार की यातनाएँ सहकर तथा आजादी के लिए तिल-तिल जल कर जिन्होंने स्वाधीनता के स्वप्न को यथार्थ में परिणत कर दिया ।

भारत की स्वतन्त्रता के लिए निज का बलिदान करने वाले इन हुतात्माओं ने स्वामी दयानन्द के उदात्त व्यक्तित्व से जिस प्रकार प्रेरणा पाई, उसे स्वतन्त्रता के इतिहास में स्मरण किया गया है । राजस्थान का वह बारहठ (चारण) परिवार जिसने स्वातन्त्र्ययज्ञ में बड़ी से बड़ी आहुति देने में भी संकोच नहीं किया, ठाकुर केसरीसिंह का था । ठाकुर केसरीसिंह तथा उनके शहीद पुत्र प्रतापसिंह ने देश के लिए किस प्रकार की यन्त्रणाएं भोगीं और स्वयं तथा परिवार की सर्वथा अनदेखी की, इसे सम्भवत: अनेक लोग नहीं जानते । ये ठाकुर केसरीसिंह बारहट कृष्णसिंह के पुत्र थे जिन्हें स्वामी दयानन्द के सम्पर्क में आने का अवसर मिला था। कृष्णसिंह के देशभक्ति के भाव ही केसरीसिंह तथा उनके पुत्र कु० प्रतापसिंह में संक्रमित हुए । कृष्णसिंह ने उदयपुर में स्वामी जी के सम्पर्क में आने तथा उनसे ज्ञान एवं विद्या रूपी वित्त को प्राप्त करने का स्पष्ट उल्लेख अपनी निम्न कविता में किया है–

तहं मिले मोहि ऋषि दयानन्द ।
जो विद्यावारिधि अरु स्वच्छन्द ।
जिन ज्ञान देय किय अमर चित्त ।
पुनि दियहु सुविद्या रूप वित्त ।

उदयपुर के महाराणा फतहसिंह (इनके पिता महाराणा सज्जनसिंह स्वामी दयानन्द के प्रत्यक्ष शिष्य थे ।) को वायसराय लार्ड कर्जन ने दिल्ली में आयोजित एक शाही दरबार में उपस्थित होने का आदेश किया । अन्य सभी राजाओं को भी इसमें आना था । जब महाराणा फतहसिंह ने दिल्ली जाना स्वीकार कर लिया तो राजस्थान के कतिपय देशभक्त सामन्तों को यह अखरा कि मेंवाड़ के जिन महाराणाओं ने सदा ही हिन्दुओं के गौरव की रक्षा की है और जो कभी दिल्ली के दरबारी नहीं रहे, आज अंग्रेजी शासन में वही महाराणा शाही दरबार में जाकर वायसराय के सम्मुख एक अधीनस्थ माण्डलिक राजा की भांति खड़े हों । उन्होंने विचार किया कि महाराणा को दिल्ली जाने से रोकना चाहिए । अब यह विचार उठा कि महाराणा को दिल्ली न जाकर हिन्दुओं के स्वाभिमान की रक्षा करने तथा स्वातन्त्र्य सूर्य महाराणा प्रताप की विरासत को यथावत् रखने की प्रेरणा कोई देशभक्त चारण कवि ही

दे सकता है । सब की नजर बारहठ केसरीसिंह पर गई, उनसे अनुरोध किया गया कि वे डिंगल (राजस्थानी भाषा का प्राचीन रूप) में ऐसे काव्य की रचना करें जिसे पढ़ कर महाराणा फतहसिंह का स्वाभिमान जागृत हो और वे दिल्ली न जायें । बारहठ जी ने तुरन्त तेरह सोरठों की रचना की और सामन्तों को सुनाया । इन फड़कते हुए सोरठों में मेवाड़ के स्वाधीनता प्रेमी महाराणाओं के इतिहास को दोहराते हुए कहा गया है कि सीसोदिया क्षत्रिय वंश के जिन मेवाड़ी राजाओं ने कभी दिल्ली के आगे सिर नहीं झुकाया, उन्हीं के वंशज महाराणा फतहसिंह को आज दिल्ली की गोद में बैठना क्यों अच्छा लग रहा है ।

इससे पहले कि महाराणा फतहसिंह के पास ये सोरठे पेश किये जाते, उनकी स्पेशल ट्रेन उदयपुर से दिल्ली के लिए रवाना हो चुकी थी । कवि द्वारा रचित सोरठे महाराणा को दिखाई जाने वाली डाक में थे । यह डाक खोली गई तब तक स्पेशल मेवाड़ की सीमा पार कर अजमेर की सीमा में आ चुकी थी । इन चेतावनी भरे सोरठों (इनका राजस्थानी नाम है चेतावनी रा चूंगटिया) को पढ़कर महाराणा का मन बदल गया । यद्यपि वे दिल्ली पहुंच गये किन्तु उन्होंने निश्चय किया कि वायसराय के दरबार में हरगिज शामिल नहीं होंगे । उन्होंने तुरन्त अपनी स्पेशल को उदयपुर लौटने का आदेश दिया और महाराण की विशेष रेलगाड़ी दिल्ली से उदयपुर आ गई । इस प्रकार मेवाड़ के अधिपति को दिल्ली आकर भी शाही दरबार में उपस्थित न होता देख वायसराय कर्जन के क्रोध और क्षोभ का कोई पार नहीं रहा । किन्तु वह कर ही क्या सकता था । देश भर के राजा और नवाब अपने निश्चित आसनों से उठ कर वायसराय को प्रणतिपूर्वक अभिवादन कर उन्हें नजरें (भेंट) पेश कर रहे थे, किन्तु उदयपुर की कुर्सी खाली ही रही । जब महाराणा अपनी राजधानी में लौट आये तो निश्चय हुआ कि उन्हें देश और धर्म की अस्मिता की रक्षा करने के लिए बधाई दी जाये, उनका वर्धापन किया जाये । अब तक ठाकुर केसरीसिंह अपने जागीर के गांव में जा चुके थे । अतः छन्दोबद्ध बधाई देने का भार जोबनेर (जयपुर) के ठाकुर कर्णसिंह पर आया । ठाकुर कर्णसिंह भी स्वामी दयानन्द के दृढ़ अनुयायी थे । उन्हें यह भी पता था कि किस प्रकार महाराणा फतहसिंह के पिता महाराणा सज्जनसिंह ने स्वामी जी के निकट रह कर ही स्वदेशोत्थान का पाठ पढ़ा था । अतः उन्होंने जब महाराणा की सेवा में बधाई के पांच सोरठे लिख कर भेजे तो अन्तिम में यही उल्लेख था कि गुरु दयानन्द से ज्ञान पाकर ही सीसोदिया राणाओं के हृदय में राष्ट्रीय चेतना का प्रादुर्भाव हुआ है–

मेदपाट कर मोद हरवल साहां हांकिया ।
चीत्यो चित्त सीसोद, गुरु दयानन्द ज्ञान तें ॥

यह तो एक उदाहरण मात्र है । स्वामी दयानन्द से स्फूर्ति और प्रेरणा पाकर जिन देशभक्तों ने स्वराज्य-प्राप्ति के लिए बड़े से बड़े बलिदान दिये उनकी गाथाओं को लेखबद्ध करने के लिए प्रचुर श्रम तथा स्थान की आवश्यकता है । यदि स्वामी दयानन्द अपने देशवासियों में राष्ट्रभक्ति के भाव तथा राजनैतिक चेतना उत्पन्न करने के इच्छुक नहीं होते तो वे क्यों सत्यार्थप्रकाश का छठा समुल्लास लिखते और क्यों आठवें समुल्लास में इस तथ्य का दृढ़ता से प्रतिपादन करते कि आर्य लोग ही भारत के आदिम निवासी हैं और इस देश में उनके अन्य देशों से आने की बात सर्वथा कल्पित तथा धूर्ततापूर्ण षड्यन्त्र का ही एक हिस्सा है । वेदार्थ विवेचन के लिए मुख्यतया रचित ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका, संस्कृत भाषा को बोलने में सहायक ग्रन्थ संस्कृतवाक्य-प्रबोध तथा बालकों को व्यवहार ज्ञान कराने के लिए लिखे गये व्यवहारभानु जैसी पुस्तकों में राजधर्म विषय को लिखना क्या यह सूचित नहीं करता कि स्वामी दयानन्द अपने देशवासियों को राष्ट्रधर्म में दीक्षित करना चाहते थे । सत्यार्थप्रकाश में इस प्रकरण को राजधर्म कहा है तो भूमिका में इसे 'राजप्रजा धर्म' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा है । यही विषय संस्कृत वाक्यप्रबोध में राजप्रजा सम्बन्ध तथा राजसभा प्रकरण शीर्षक दो अध्यायों में आया है । व्यवहारभानु में अन्धेर नगरी और चौपट (स्वामी जी ने इसके लिये गवर्गण्ड शब्द का प्रयोग किया है।) राजा का किस्सा लिख कर स्वामी जी ने निरंकुश, स्वेच्छाचारी और प्रजापीड़क राजाओं के विनाश की घोषणा की है ।

अधिक क्या, जिस स्वाधीनचेता ऋषि ने अपने परम उपास्य परमात्मा की प्रार्थना करते समय भी उससे धन, सम्पत्ति, वैभव आदि की याचना न कर यही प्रार्थना की कि हे महाराजाधिराज, ऐसी कृपा कीजिये कि अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों, उस महापुरुष का स्वराज्य चिन्तन कितना प्रखर, संक्रामक तथा उग्र होगा, इसका अनुमान करना कठिन नहीं है। अन्ततः कहना पड़ता है कि भारतवासियों में राष्ट्रभावना को सुदृढ़ कर उनमें राष्ट्रीय एकता तथा स्वातन्त्र्य भाव को उद्दीप्त करने वाला दयानन्द अपने युग का एक विशिष्ट महाप्राण व्यक्ति था । दयानन्दचरित के गम्भीर समालोचक देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय का निम्न विश्लेषण हमें पूर्णतया सत्य तथा सटीक प्रतीत होता है—"इस संन्यासी (दयानन्द) के हृदय में यह प्रबल इच्छा और उत्साह था कि सारे भारतवर्ष में एक

शास्त्र प्रतिष्ठित हो, एक देवता पूजित हो, एक जाति संगठित हो और एक भाषा प्रचलित हो। यही नहीं कि उनमें केवल ऐसी सदिच्छा और उत्साह ही था वरन् वह इस इच्छा और उत्साह को किसी अंश तक कार्य में परिणत करने में कृतकार्य भी हुए थे। अत एव स्वामी दयानन्द केवल संन्यासी ही नहीं थे, केवल वेद-व्याख्याता ही नहीं थे, केवल शास्त्रों के मर्मोद्घाटक ही नहीं थे, केवल तार्किक ही नहीं थे, केवल दिग्विजयी पण्डित ही नहीं थे, वह भारतीय एकता (राष्ट्रीयता एवं स्वराज्य भावना) के स्थापनकर्त्ता भी थे। इसलिए भारत की आचार्यमण्डली में दयानन्द का स्थान विशिष्ट और अद्वितीय है।''

प्रसिद्ध देशभक्त तथा साहित्यकार कन्हैयालाल मुन्शी ने लिखा है-''भारत में ब्रिटिश प्रभुत्व स्थापित होने के बाद, दयानन्द सरस्वती के साथ राष्ट्रीयता की पहली मंजिल का उदय हुआ। १८५७ के राष्ट्रीय विद्रोह की असफलता में निहित अपमान से परितप्त भारत में उन्होंने ही सर्वप्रथम राष्ट्रीयता का विकास किया।''

प्रो॰ भवानीलाल भारतीय, ८/४२३ नन्दनवन, जोधपुर

आचार्य उदयवीर शास्त्री ग्रन्थावली

न्यायदर्शनम् भाष्य जो शास्त्र हमें तर्क-वितर्क का ज्ञान देता है, हमारे भीतर की बन्द आँखों को खोलकर हमें तर्क करने का ज्ञान और साइंस प्रदान करता है, उसी का नाम न्यायशास्त्र है और वही न्यायदर्शन है। रूखे व दुरूह कहे जानेवाले इस विषय को लेखक ने अत्यन्त सुबोध शैली में प्रस्तुत किया है। **मूल्य : रु० १५०-००**

वैशेषिकदर्शनम् भाष्य सृष्टि-रचना में जो सूक्ष्म मूल तत्त्व हैं उनका विज्ञानपरक विवेचन इस दर्शन में किया गया है। इसमें पदार्थों के धर्म की व्याख्या है। यह ज्ञान भी सभी के लिए उपयोगी और अनिवार्य है।

मूल्य : रु० १२५-००

सांख्यदर्शनम् भाष्य लम्बे समय तक यह कुतर्क चलता रहा है कि 'सांख्यदर्शन' अनीश्वरवादी है। इस भ्रान्ति का उन्मूलन करने के लिए आचार्य उदयवीर जी को तत्सम्बन्धी विपुल साहित्य, इतिहास, वाग्जाल और विविध भाष्यों का अध्ययन-चिन्तन-मनन करके इस सत्य को उघाड़ना पड़ा है कि सांख्यदर्शन अन्य दर्शनशास्त्रों का ही पूरक है। विषय गूढ़ है, किन्तु सरलता से समझा जा सकता है। **मूल्य : रु० १००-००**

योगदर्शनम् भाष्य योग का सर्वोच्च लक्ष्य है मोक्षरूप परमानन्द की प्राप्ति। मानव-जीवन की समस्त क्रियाओं का लक्ष्य भी 'ब्रह्म का साक्षात्कार' है। 'योगदर्शन' इसी लक्ष्य-प्राप्ति का साधन है। योग-सूत्रों की सर्वाङ्ग एवं सम्पूर्ण व्याख्या जिस रोचक शैली में आचार्य उदयवीर जी ने की है, उसे विद्वज्जनों और जनसाधारण ने मुक्तकण्ठ से सराहा है। **मूल्य : रु० १००.००**

वेदान्तदर्शनम् भाष्य (ब्रह्मसूत्र) महर्षि वेदव्यास बादरायण ने ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को प्रमाणित करने के लिए ब्रह्मसूत्रों की रचना की थी। लेखक ने ब्रह्मसूत्र पर अपना निष्पक्ष व निर्भ्रान्त विद्योदयभाष्य प्रस्तुत करके हमारे वैदिक ज्ञान-विज्ञान को पुनः सार्वभौम और सार्वशिरोमणि कर दिखाया। **मूल्य : रु० १८०-००**

मांसादर्शनम् भाष्य मध्यकाल में कुछ ऐसी विडम्बना हुई कि विरोधी मतों की देखादेखी वैदिक वाक्यों के अर्थों में भी अनर्थ होने लगा। यज्ञों में भी पशु और नर बलि मान्य हो गई। आचार्य उदयवीर जी अन्य दर्शनों के भाष्य के बाद, जीवन के अंतिम वर्षों में मीमांसा-दर्शन के तीन ही अध्यायों का भाष्य करके दिवंगत हो गए। इस भाष्य की विशेषता यह है कि विद्वानों की दृष्टि में यह शास्त्र-सम्मत भी है और विज्ञानपरक भी। यज्ञों में पशु हिंसा की शंकाओं का सहज समाधान करके विद्वान् भाष्यकार ने पाठकों और शोधकर्ताओं का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। **मूल्य : रु० ३५०-००**

सांख्यदर्शन का इतिहास सांख्यदर्शन के इतिहास पर व्याप्त भ्रान्तियों को मिटाने के लिए लेखक ने इसके इतिहास का मन्थन व मनन किया। इतिहास और दर्शन का यह अनूठा संगम है। कई पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया। **मूल्य : रु० २५०-००**

सांख्यसिद्धान्त सांख्यसिद्धान्त में दो प्रकार के मूल तत्त्वों का विवेचन है। एक है 'पुरुष' और दूसरा 'प्रकृति'। लेखक ने वर्षों के गहन अनुशीलन व शोध के पश्चात् तटस्थ और निष्पक्ष भाव से विभिन्न मन्तव्यों का तुलनात्मक विवेचन करके इस ग्रन्थ की रचना की है। **मूल्य : रु० २००-००**

वेदान्तदर्शन का इतिहास इतिहास चाहे राजा-महाराजाओं का हो अथवा दार्शनिक साहित्य का, उसकी उपयोगिता इसी में है कि वह सत्य का बोध कराए। कुछ वर्ष पहले तक यह कहना कठिन था कि ब्रह्मसूत्रों के रचयिता व्यास और बादरायण एक ही व्यक्ति थे या दो भिन्न-भिन्न इसी प्रकार अचार्य शंकर के काल को कोई सुनिश्चित नहीं कर पाया था। इस सन्दर्भ में आचार्य उदयवीर शास्त्री जी ने जिस सहजता से भ्रान्तियों का उन्मूलन किया है, उसकी विद्वान पाठकों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। **मूल्य : रु० २००-००**

प्राचीन सांख्य-सन्दर्भ सांख्यशास्त्र की अनेक आचार्यों ने विवेचना की। सैकड़ों वर्षों के अन्तराल में किन-किन आचार्यों ने इसके भाष्य किये, यह सब अंधकार के गर्त में रहा। लेखक ने यत्र-तत्र बिखरे इतिहास की कड़ियाँ जोड़ीं तथा सांख्यशास्त्र के व्याख्यापरक ग्रन्थों को समझने और ऐतिहासिक दृष्टि से इस 'दर्शन' के क्रमिक विकास को जानने के लिए उपयोगी बनाया। **मूल्य : रु० १००-००**

वीर तरङ्गिणी श्री उदयवीर शास्त्री को पाठक प्रायः योग, वेदान्त, सांख्य आदि दर्शनों के प्रकाण्ड पंडित के रूप में ही जानते हैं। वे कवि और कथाकार भी थे, आलोचक और पुरा-मर्मज्ञ भी—यह पता चलता है इस विविधा से। **मूल्य : रु० २५०-००**

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-प्रदायिनी

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती की

सरल-सुबोध आध्यात्मिक पुस्तकें

आनन्द गायत्री कथा	१२-००
एक ही रास्ता	१२-००
शंकर और दयानन्द	८-००
मानव जीवन-गाथा	१३-००
सत्यनारायण व्रत कथा	५-००
भक्त और भगवान	१२-००
उपनिषदों का सन्देश	१६-००
घोर घने जंगल में	२०-००
मानव और मानवता	३०-००
प्रभु मिलन की राह	२०-००
यह धन किसका है ?	२०-००
बोध-कथाएँ	१६-००
दो रास्ते	१५-००
दुनिया में रहना किस तरह ?	१५-००
तत्वज्ञान	२०-००
प्रभु-दर्शन	१५-००
प्रभु-भक्ति	१२-००
महामन्त्र	१२-००
सुखी गृहस्थ	६-००
त्यागमयी देवियाँ	८-००

अंग्रेजी पुस्तकें

Anand Gayatry Katha	30-00
The Only Way	30-00
Bodh Kathayen	40-00
How To Lead Life?	30-00

जीवनी

महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)	१०-००
महात्मा आनन्द स्वामी (हिन्दी)	२५-००

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती कृत विद्वत्तापूर्ण पुस्तकें

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००-००
वाल्मीकि रामायण	१७५-००
षड्दर्शनम्	१५०-००
चाणक्यनीति दर्पण	६०-००
विदुरनीतिः	४०-००
ब्रह्मचर्य गौरव	९-००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	९-००
दिव्य दयानन्द	१२-००
कुछ करो कुछ बनो	१२-००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१२-००
आदर्श परिवार	१५-००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	१५-००
वेद सौरभ	१२-००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५-००
वैदिक विवाह पद्धति	८-०
ऋग्वेद सूक्ति सुधा	२५-
यजुर्वेद सूक्ति सुधा	१२-
अथर्ववेद सूक्ति सुधा	१५-००
सामवेद सूक्ति सुधा	१२-००
ऋग्वेद शतकम्	८-००
यजुर्वेद शतकम्	८-००
सामवेद शतकम्	८-००
अथर्ववेद शतकम्	८-००
भक्ति संगीत शतकम्	६-००
चमत्कारी ओषधियाँ	१२-००
घरेलू ओषधियाँ	१२-००
चतुर्वेद शतकम् (सजिल्द)	५०-००
स्वर्ण पथ	१२-००
प्रार्थना लोक	४०.००
प्रार्थना-प्रकाश	८.००
प्रभात-वन्दन	८.००
शिवसंकल्प	८.००

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

आदि शंकराचार्य वेदान्ती नहीं थे	*स्वामी विद्यानन्द सरस्वती*	४०-००
वेद-मीमांसा	*स्वामी विद्यानन्द सरस्वती*	५०-००
सृष्टि विज्ञान और विकासवाद	*स्वामी विद्यानन्द सरस्वती*	४०-००
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	*पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार*	१५०-००
दयानन्द जीवन चरित	*लेखक : देवेन्द्र मुखोपाध्याय* *अनु० : पं० घासीराम*	२५०-००
शतपथब्राह्मण (तीन खण्ड)	*अनु० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय*	१८००-००
महात्मा हंसराज (जीवनी)	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	६०-००
महात्मा हंसराज ग्रन्थावली (चार खण्ड)	*लेखक-सम्पादक प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	२४०-००
आर्य सूक्ति सुधा	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	१२-००
वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (ग्यारह खण्ड)	*ले० स० डॉ० भवानीलाल भारतीय* *तथा प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु*	६६०-००
चयनिका	*क्षितीश वेदालंकार*	१२५-००
वैदिक मधुवृष्टि	*पं० रामनाथ वेदालंकार*	६०-००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	*आ० प्रियव्रत वेदवाचस्पति*	५०-००
महाभारत सूक्तिसुधा	*पं० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण*	४०-००
श्यामजी कृष्ण वर्मा	*डॉ० भवानीलाल भारतीय*	२४-००
आर्यसमाज विषयक साहित्य परिचय	*डॉ० भवानीलाल भारतीय*	२५-००
कल्याणमार्ग का पथिक (स्वामी श्रद्धानन्द की जीवनी)	*डॉ० भवानीलाल भारतीय*	प्रेस में
आर्यसमाज के बीस बलिदानी	*डॉ० भवानीलाल भारतीय*	१५-००
धर्म का स्वरूप	*डॉ० प्रशान्त वेदालंकार*	५०-००
ऋषि बोध कथा	*स्वामी वेदानन्द सरस्वती*	१०-००
वैदिक धर्म	*स्वामी वेदानन्द सरस्वती*	२५-००
ईश्वर का स्वरूप	*सुरेशचन्द्र वेदालंकार*	प्रेस में
सहेलियों की वार्ता	*सुरेशचन्द्र वेदालंकार*	२०-००
सन्ध्या रहस्य	*पं० विश्वनाथ विद्यालंकार*	२५-००
आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो ?	*प्रो० रामविचार एम० ए०*	४-००
वैदिक धर्म का संक्षिप्त परिचय	*ओम्प्रकाश त्यागी*	६-००
पूर्व और पश्चिम	*नित्यानन्द पटेल*	३५-००
सन्ध्या विनय	*नित्यानन्द पटेल*	६-००
गीत सागर	*पं० नन्दलाल वानप्रस्थी*	२५-००
वेद भगवान बोले	*पं० वा० विष्णुदयाल (मारीशस)*	१५-००
हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष	*पं० नरेन्द्र*	१५-००
आचार्य शंकर का काल	*आ० उदयवीर शास्त्री*	१०-००

याज्ञिक आचार-संहिता	*पं० वीरसेन वेदश्रमी*	४५-००
प्राणायाम विधि	*महात्मा नारायण स्वामी*	२-००
प्रेरक बोध कथाएँ	*नरेन्द्र विद्यावाचस्पति*	१५-००
ओंकार गायत्री शतकम्	*कवि कस्तूरचन्द*	३-००
जीवात्मा	*पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय*	४०.००
सन्ध्या : क्या, क्यों, कैसे	*पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय*	१५-००
विवाह और विवाहित जीवन	*पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय*	१८-००
जीवन गीत	*धर्मजित् जिज्ञासु*	१२-००
पंचमहायज्ञविधि	*महर्षि दयानन्द*	३-००
व्यवहारभानु	*महर्षि दयानन्द*	४-००
आर्योद्देश्यरत्नमाला	*महर्षि दयानन्द*	१-५०
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	*महर्षि दयानन्द*	१-५०
ब्रह्मचर्यसन्देश	*सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार*	२५-००
श्रीमद्भगवद्गीता	*पं० सत्यपाल विद्यालंकार*	१५-००

WORKS OF SVAMI SATYAPRAKASH SARASVATI

Founders of Sciences in Ancient India (Two Vols.)	500-00
Coinage in Ancient India (Two Vols.)	600-00
Geometry in Ancient India	350-00
Brahmgupta and His Works	350-00
God and His Divine Love	5-00
The Critical and Cultural Study of Satapath Brahman	In Press
Speeches, Writings & Addresses Vol.I : VINCITVERITAS	150-00
Speeches Writings & Addresses Vol.II : ARYA SAMAJ; A RENAISSANCE	150-00
Speeches, Writings & Addresses Vol. III : DAYANAND ; A PHILOSOPHER	150-00
Speeches, Writings & Addresses Vol. IV THREE LIFE HAZARDS	150-00

कर्म काण्ड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका	३-००	संध्या-हवन-दर्पण (उर्दू)	८-००
पंचयज्ञ प्रकाशिका	८-००	सत्संग मंजरी	६-००
वैदिक संध्या	१-००	Vedic Prayer	3-00
सामाजिक पद्धतियाँ (मदनजीत आर्य)	१२-००		

घर का वैद्य

जब प्रकृति की अनमोल दवाइयाँ आपको आसानी से उपलब्ध हों तो गोली, पुड़िया, कैप्सूल या इन्जेक्शन की क्या जरूरत है ?

घर का वैद्य—प्याज	७-००	घर का वैद्य—हल्दी	७-००
घर का वैद्य—लहसुन	७-००	घर का वैद्य—बरगद	७-००
घर का वैद्य—गन्ना	७-००	घर का वैद्य—दूध-घी	७-००
घर का वैद्य—नीम	७-००	घर का वैद्य—दही-मट्ठा	७-००
घर का वैद्य—सिरस	७-००	घर का वैद्य—हींग	७-००
घर का वैद्य—तुलसी	७-००	घर का वैद्य—नमक	७-००
घर का वैद्य—आँवला	७-००	घर का वैद्य—बेल	७-००
घर का वैद्य—नींबू	७-००	घर का वैद्य—शहद	७-००
घर का वैद्य—पीपल	७-००	घर का वैद्य—फिटकरी	७-००
घर का वैद्य—आक	७-००	घर का वैद्य—साग-भाजी	७-००
घर का वैद्य—गाजर	७-००	घर का वैद्य—अनाज	७-००
घर का वैद्य—मूली	७-००	घर का वैद्य—फल-फूल	७-००
घर का वैद्य—अदरक	७-००	घर का वैद्य—धूप-पानी	१५-००

सभी छब्बीस पुस्तकें छः आकर्षक जिल्दों में भी उपलब्ध

घर का वैद्य-१ (प्याज, लहसुन, गन्ना, नीम, सिरस)	४५-००
घर का वैद्य-२ (तुलसी, आँवला, नींबू, पीपल, आक)	४५-००
घर का वैद्य-३ (गाजर, मूली, अदरक, हल्दी, बरगद)	४५-००
घर का वैद्य-४ (दूध-घी, दही-मट्ठा, हींग, नमक, बेल)	४५-००
घर का वैद्य-५ (शहद, अनाज, फिटकरी, साग-भाजी, फल-फूल)	४५-००
घर का वैद्य—धूप-पानी	४०-००

चित्र

स्वामी दयानन्द (झण्डेवाला)	१६" × २२" बहुरंगी	६-००
स्वामी दयानन्द (कुर्सी)	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी दयानन्द (आसन)	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी श्रद्धानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
गुरु विरजानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
पण्डित लेखराम	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी दर्शनानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
पं० गुरुदत विद्यार्थी	१८" × २२" एक रंग	३-००
महात्मा हंसराज	१८" × २२" एक रंग	३-००

बाल साहित्य

आर्य नेताओं की बालोपयोगी जीवनियाँ

महर्षि दयानन्द	*त्रिलोकचन्द विशारद*	४-५०
गुरु विरजानन्द	*त्रिलोकचन्द विशारद*	४-५०
स्वामी श्रद्धानन्द	*त्रिलोकचन्द विशारद*	४-५०
धर्मवीर पं० लेखराम	*त्रिलोकचन्द विशारद*	३-००
मुनिवर पं० गुरुदत्त	*त्रिलोकचन्द विशारद*	३-००
स्वामी दर्शनानन्द	*सत्यभूषण वेदालंकार*	३-००
महात्मा हंसराज	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	४-५०
वीतराग सेनानी स्वामी स्वतन्त्रानन्द	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	४-५०
तपोधन महात्मा नारायण स्वामी	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	५-५०
देवतास्वरूप भाई परमानन्द	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	५-५०
नैतिक शिक्षा—प्रथम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	२.५०
नैतिक शिक्षा—द्वितीय	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	२.५०
नैतिक शिक्षा—तृतीय	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	३.५०
नैतिक शिक्षा—चतुर्थ	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	४-५०
नैतिक शिक्षा—पंचम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	४.[illegible]
नैतिक शिक्षा—षष्ठ	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	५.[illegible]
नैतिक शिक्षा—सप्तम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	५.[illegible]
नैतिक शिक्षा—अष्टम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	५.५०
नैतिक शिक्षा—नवम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	८००
नैतिक शिक्षा—दशम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	८००
ब्रह्मचर्य गौरव	*स्वामी जगदीश्वरानन्द*	९००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	*स्वामी जगदीश्वरानन्द*	९००
स्वर्ण पथ	*स्वामी जगीदश्वरानन्द*	१२००
आचार्य गौरव	*ब्र० नन्दकिशोर*	५००
त्यागमयी देवियाँ	*महात्मा आनन्द स्वामी*	८००
हमारे बालनायक	*सुनील शर्मा*	८००
देश के दुलारे	*सुनील शर्मा*	८००
हमारे कर्णधार	*सुनील शर्मा*	८००
आदर्श महिलाएँ	*नीरू शर्मा*	८००
कथा पच्चीसी	*स्वामी दर्शनानन्द*	८००
बाल शिक्षा	*स्वामी दर्शनानन्द*	२.५०
वैदिक शिष्टाचार	*हरिश्चन्द्र विद्यालंकार*	२[illegible]
दयानन्द चित्रावली	*पं० रामगोपाल विद्यालंकार*	४०-००
आर्य सूक्ति सुधा	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	[illegible]

जिसकी आपको प्रतीक्षा थी, छप रहा है–

❑ एक अभिनव संस्करण

❑ आधुनिक हिन्दी रूपान्तर

महर्षि के अमर ग्रन्थ के रूपान्तरकार हैं–आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, लेखनी के धनी, सम्पादन कला में प्रवीण

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

स्वामी जी ने कम से कम ४५ बार इस ग्रन्थ का आद्योपान्त पाठ किया है। इसके प्रत्येक वाक्य को समझने का प्रयत्न किया है। इसमें जो छापे की अशुद्धियाँ रह गई थीं, प्रूफ व संशोधकों की असावधानी से कोई शब्द छूट गया था, इस प्रकार की सभी अशुद्धियों को ठीक कर दिया गया है।

जैसे सत्यार्थप्रकाश के गुजराती, बंगाली, मराठी, तेलगु असमिया आदि भाषाओं में अनुवाद हुए हैं, उसी प्रकार यह संस्करण आधुनिक हिन्दी रूपान्तर है। पाठ पढ़कर भाव विभोर हो उठेंगे। जो तेरहवें और चौदहवें सम्मुलासों की हिन्दी बड़ी टेढ़ी-मेढ़ी है, क्योंकि उस समय बाइबल और कुरान के भाष्य मुहावरेदार भाषा में उपलब्ध नहीं थे। अब इन दोनों समुल्लासों की भाषा को भी आधुनिक हिन्दी का रूप दे दिया गया है।

पुस्तक कम्प्यूटर द्वारा कम्पोज कराई गई है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में शायद ही कोई अशुद्धि हो। बढ़िया कागज, कलापूर्ण मुद्रण, पक्की कपड़े की जिल्द। हर प्रकार से एक नयनाभिराम संस्करण है।

आज तक जितने भी संस्करण छपे हैं, उन सभी से सुन्दर, अनेक टिप्पणियों से विभूषित, कठिन शब्दों के अर्थ से युक्त, यह संस्करण है।

अपने स्वाध्याय के लिए, अपने मित्रों सम्बन्धियों को भेंट देने के लिए एक प्रति अवश्य खरीदिए। इसे लेकर आप पछताएँगे नहीं।

–अजयकुमार

हमारा १९९५ का बृहद् विशेषाङ्क :

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह

यह ग्रन्थ 'दयानन्द चरित' आकार में २०×३०/८ लगभग ६०० पृष्ठ का सजिल्द होगा।

स्वामी दर्शनानन्द जी ट्रैक्ट लिखने की मशीन थे। जीवन में बहुत ट्रैक्ट लिखे। सब उर्दू में लिखे। अनेक विद्वानों ने उनका हिन्दी अनुवाद किया।

इस ग्रन्थ-संग्रह में हम दर्शनानन्द जी के ६४ ट्रैक्ट दे रहे हैं। ईश्वर विचार, ईश्वरप्राप्ति, वेद, मुक्ति, जीव का अनादित्व, गुरुकुल, भोला यात्री, द्वैतवाद आदि अनेक विषयों पर अत्यन्त खोजपूर्ण सामग्री इस ग्रन्थ में पाठकों को मिलेगी।

इस ग्रन्थ का सम्पादन करेंगे आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान **स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती।**

जिन मन्त्रों, सूत्रों और श्लोकों के पते नहीं हैं, उन्हें खोजकर देने का स्वामी जी का भरसक प्रयत्न रहेगा। आधुनिक साज-सज्जा से सुभूषित कलापूर्ण मुद्रण होगा। बढ़िया कागज होगा। इस ग्रन्थरत्न का मूल्य २५० रुपये होगा। परन्तु वेदप्रकाश के सदस्यों को केवल १५० में मिलेगा। इसमें एक वर्ष तक वेदप्रकाश भी निःशुल्क मिलता रहेगा। विशेषाङ्क को भेजने का खर्च भी हम स्वयं वहन करेंगे।

ऐसा भव्य और दिव्य ग्रन्थ पहली बार छप रहा है। हम स्वामी दर्शनानन्द जी का सच्चा श्राद्ध कर रहे हैं। आर्य साहित्य में यह एक ठोस वृद्धि होगी।

हमारा 'वेदप्रकाश' के सदस्यों और पाठकों से निवेदन है कि वे स्वयं ग्राहक बनें और अन्यों को बनायें।

शीघ्रता करें। ग्रन्थ सीमित सख्या में ही छपेगा।

यदि पाठकों ने उत्साह दिखाया तो इसका दूसरा भाग भी देने का प्रयत्न करेंगे। यह अप्रैल ९५ में पाठकों को मिलेगा।

'वेद की मूल संहिताओं' के प्रकाशन योजना के लिए कई आर्यसमाजों ने हमारा उत्साह बढ़ाया है और इस योजना के लिए भी आर्यसमाज आगे आयें तो बृहद् विशेषांक प्रकाशित करने की योजना को बल मिलेगा तथा भविष्य में और अधिक ठोस योजनाओं पर कार्य करने की शक्ति मिलेगी।

प्रकाशक-मुद्रक अजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित कराकर वेद प्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

जिसकी आपको प्रतीक्षा थी, छप रहा है

सत्यार्थप्रकाश

☐ एक अभिनव संस्करण

☐ आधुनिक हिन्दी रूपान्तर

महर्षि के अमर ग्रन्थ के रूपान्तरकार हैं—आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, लेखनी के धनी, सम्पादन कला में प्रवीण

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

जैसे सत्यार्थप्रकाश के गुजराती, बंगाली, मराठी, तेलगु, असमिया आदि भाषाओं में अनुवाद हुए हैं, उसी प्रकार यह संस्करण आधुनिक हिन्दी रूपान्तर है। पाठ पढ़कर भाव विभोर हो उठेंगे। जो तेरहवें और चौदहवें समुल्लासों की हिन्दी बड़ी टेढ़ी-मेढ़ी है, क्योंकि उस समय बाइबल और कुरान के भाष्य मुहावरेदार भाषा में उपलब्ध नहीं थे। अब इन दोनों समुल्लासों की भाषा को भी आधुनिक हिन्दी का रूप दे दिया गया है।

आज तक जितने भी संस्करण छपे हैं, उन सभी से सुन्दर, अनेक टिप्पणियों से विभूषित, कठिन शब्दों के अर्थ से युक्त, यह संस्करण है।

अपने स्वाध्याय के लिए, अपने मित्रों सम्बन्धियों को भेंट देने के लिए एक प्रति अवश्य खरीदिए। इसे लेकर आप पछतायेंगे नहीं।

बोध-कथा

सम्मान शौर्य का

दक्षिणी भारत में बल्लारी एक बहुत ही छोटा-सा राज्य था। मलवाई देसाई उसकी शासिका थीं, उनके पति की मृत्यु हो चुकी थी, वह विधवा थीं, परन्तु शौर्य की जीवन्त प्रतिमा। तत्कालीन भारत के वीर योद्धा छत्रपति शिवाजी की सेनाओं ने बल्लारी के छोटे राज्य पर भीषण आक्रमण किया। दिल्ली के मुगल सम्राट् औरंगजेब और उसकी सलतनत को नाकों चने चबवाने वाले वीर मराठा सैनिकों के बड़े जमाव के सम्मुख मुट्ठी भर बल्लारी सैनिक कब तक लड़ते! बहुसंख्यक मराठा सेना के सम्मुख छोटी-सी बल्लारी सैनिक टुकड़ी कब तक टिकती, परन्तु उसने हार न मानी, जब तक आखिरी बल्लारी सैनिक के पास हथियार रहे, प्राण जीवित रहे, परन्तु वह जूझती रही, लड़ती रही, परन्तु उसने हार न मानी। सैनिकों के मारे जाने पर, घायल हो जाने या बन्दी बना लिये जाने पर देखा गया कि जूझने वाले सिपाहियों में वहां की शासिका रानी मलबाई भी थीं। रानी मलबाई एक बन्दिनी के रूप में पूरे सम्मान के साथ छत्रपति शिवाजी के सामने लायी गयीं।

रानी मलबाई को जब पूरे राजकीय सम्मान के साथ छत्रपति शिवाजी के सामने लाया गया, तब रानी मलबाई सिंहिनी की तरह फुफकार उठीं, ओजस्वी शब्दों में बोल उठीं—"छत्रपति, एक अकेली नारी होने के कारण क्या मेरा यह परिहास शोभनीय है? तुम्हारा राज्य बड़ा है, हमारा राज्य छोटा है, पहले हमारा राज्य स्वतन्त्र था, अपने राज्य और अपनी आजादी की रक्षा के लिए पूरी शक्ति से हम ने लाहा लिया, इसमें—इस लड़ाई—सम्मान और आजादी की रक्षा के लिए किए संघर्ष में हम ने तन, मन, धन सर्वस्व की बाजी लगा दी, आप हमें - हमारी लड़ाई और विरोध के लिए शत्रु-बन्दी को मृत्युदण्ड देने के स्थान पर यह सम्मान का व्यर्थ का नाटक क्यों कर रहे हो?"

वीर सिंहिनी नारी की फुफकार और आह्वान से छत्रपति शिवाजी विचलित हो उठे। वह सिंहासन से उठे, हाथ जोड़ कर उस वीर नारी मलबाई रानी से बोले—"वीर माँ, आपका बल्लारी पहले भी स्वाधीन था अब भी स्वतन्त्र है। आप का आक्रान्ता शिवा आपका शत्रु नहीं, आपका पुत्र है। मैं आपका पुत्र हूँ। तेजस्विनी माता जोजाबाई के आकस्मिक स्वर्गवास के बाद मैं मातृविहीन हो गया था, कोशिश थी कि कहीं माता का संरक्षण-आश्रय मिल जाए, आज आप में उसी तेजस्विनी माता के दर्शन हुए। माँ, आप धन्य हैं, आपको शिवा के प्रणाम-वन्दन स्वीकार हों।"

शौर्यशिखा सर्पिणी के तुल्य फुफकारती रानी मलबाई शौर्यशिखा से तुरन्त वत्सलमयी बन गयीं, उन्होंने आगे बढ़कर वीर माता के तुल्य शिवा को अंक में भर लिया।

प्रस्तुति—नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

ओ३म्

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ४४, अंक ८ वार्षिक मूल्य : बीस रुपये मार्च १९९५

सम्पा॰ अजयकुमार आ॰ सम्पादक : स्वामी जगदीशवरानन्द सरस्वती

सामान्य जिज्ञासु के लिए उपनिषदों की देन—४

सृष्टि सम्बन्धी छह जिज्ञासाएं: प्रश्न उपनिषद् के समाधान

पिण्ड से ब्रह्माण्ड तक पूर्ण ओंकार की साधना से परमतत्त्व की सिद्धि

हजारों वर्ष पहले कुछ जिज्ञासु इकट्ठे हुए। ये छओं जिज्ञासु ब्रह्म के बारे में अपने प्रश्नों का उत्तर चाहते थे। उन्हें यह जानकारी मिली कि उनकी ब्रह्म या सृष्टि सम्बन्धी जो भी जिज्ञासाएं हैं। उनका समुचित समाधान उस समय के एक महान् चिन्तक एवं विचारक पिप्पलाद ऋषि ही कर सकेंगे। ये छः जिज्ञासु थे— भारद्वाज गोत्र में पैदा हुआ सुकेश, शिवि का पुत्र सत्यकाम, सूर्य का पोता गार्ग्य, अश्वल का पुत्र कौशल्य, भृगुगोत्री वैदर्भि और कत्य का पुत्र कबन्धी। प्राचीन परम्परा के अनुसार छओं जिज्ञासुओं के हाथों में सूखी समिधाएं थीं। जिस प्रकार अग्नि से सूखी समिधाएँ प्रज्वलित की जाती हैं, उसी प्रकार जिज्ञासु अपना शुष्क चित्त एक सच्चे गुरु द्वारा दी गई ज्ञानाग्नि से प्रदीप्त करना चाहते थे। वही समिधा प्रज्वलित हो सकती है, जो गीली न हो, जिज्ञासु भी जब गुरु के पास पहुंचे तब उन्होंने अपना अहंकार रूपी भीगापन पीछे छोड़ दिया था। गुरु का नाम पिप्पलाद था, पिप्पलाद उन्हें इसलिए कहा जाता था कि वह उच्चकोटि के ज्ञानी-ध्यान होने के बावजूद पिप्पल की कलियां खाकर जीवन बिताते थे। स्पष्टतया वह स्वल्पाहारी थे, जो कुछ भी थोड़ा बहुत मिल जाता था, उससे उनका जीवन चल रहा था।

छओं जिज्ञासु पिप्पलाद ऋषि की कुटिया पर पहुंचे और उनसे

अपनी ब्रह्म सम्बन्धी जिज्ञासाओं का समाधान करना चाहा । ऋषि ने उनकी सारी बात सुनकर कहा–"मुझे प्रतीत होता है कि आप तप रूपी शारीरिक साधना कर चुके हैं, विषय वासनाओं से मुक्त ब्रह्मचर्य रूपी मानसिक साधना कर चुके हैं और आप सब तरह के संकल्प-विकल्प छोड़कर पूरी श्रद्धा से आए हैं, इस सब के बावजूद मेरी इच्छा है कि आप वर्ष भर तक आश्रम में अधिक तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा के साथ निवास करें । उसके बाद आप अपनी इच्छा से प्रश्न पूछें, उस समय आपकी जिज्ञासाओं का जो उत्तर मुझे मालूम होगा तो मैं सब कुछ बतला दूंगा । ऋषि के वचन सुनकर छओं जिज्ञासु पूरी तपस्या, ब्रह्मचर्य और पूर्ण श्रद्धा से वर्ष भर तक ऋषि पिप्पलाद के आश्रम में रहे । वर्ष बीतने पर सब से पहले कत्य के पुत्र कबन्धी कात्यायन ने ऋषि के समीप पहुंच कर जिज्ञासा प्रकट की– "गुरु महाराज, क्या आप बतलाएंगे यह सारा उत्पन्न हुआ नानाविध संसार कैसे पैदा हुआ ? यह सारी प्रजा किससे उत्पन्न हुई ? " (**भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ?**)

यह सृष्टि कैसे पैदा हुई ?

जिज्ञासु कबन्धी कात्यायन को समझाते हुए पिप्पलाद ऋषि बोले–"इस चराचर जगत् के नियन्ता प्रजापति ने प्रजा-सृष्टि उत्पन्न करने की जब कामना या इच्छा की, तब उन्होंने तप किया और तप करके रयि और प्राण नाम के मिथुन या जोड़े को उत्पन्न किया और यह समझ लिया कि यह मिथुन या जोड़ा ही अब नानारूप जड़-चेतन सृष्टि– अनेक प्रकार की प्रजा उत्पन्न करेगा । ब्रह्मा ने रयि सोमरूप अन्न और प्राण यानी भोक्ता अग्नि रची । द्वित्व या दो से यह सृष्टि बनी हुई है । वह एक से नहीं बनी। अरस्तु ने सृष्टि की उत्पत्ति जड़ तथा चेतन से बतलाई है । वेदान्त में इन्हें नाम और रूप कहा गया है । इस रयि-प्राण को शरीर या आत्मा, प्रकृति तथा परमात्मा का मिथुन या जोड़ा कहा जा सकता है । सम्बन्धित मन्त्र यह है–

तस्मै स हो वाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते । रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ।।४।।

ऋषि पिप्पलाद विश्व में रयि तथा प्राण का चित्रण करते हुए कई दृष्टान्त देते हैं– सूर्य प्राण शक्ति का प्रतीक है, चन्द्र रयि शक्ति का सूचक। भोक्ता शक्ति बढ़ाने वाला सूर्य है, तो भोग्य शक्ति बढ़ाने वाला चन्द्र है। प्राणि मात्र के लिए सूर्य प्राण है, वही उनमें जीवन का संचार करता है,

उस जीवन का जिससे हम रयि बन कर संसार का उपयोग करते हैं। सूर्य के द्वारा प्राणशक्ति का संचार कैसे होता है, इसका उल्लेख करते हुए पिप्पलाद ऋषि कहते हैं– प्रातःकाल जब सूर्य उदय होकर पूर्व दिशा में प्रवेश करता है, तब वह अपनी प्राणशक्ति अपनी किरणों में समाविष्ट कर विश्व में फैला देता है, जिससे हम सूर्य की किरणों से सूर्य की प्राणशक्ति अपने अन्दर लेकर जीवन का आनन्द ले सकें । हम रयि हैं, सूर्य की किरणें प्राण हैं । चाहे हम दक्षिण में हों, पश्चिम में हों, उत्तर में हों, नीचे हों या ऊपर हों, चाहे इन दिशाओं के मध्य में हों, सूर्य की किरणें सर्वत्र अपनी प्रकाश-शक्ति द्वारा प्रकाश बिखरेती हैं । इससे यह स्पष्ट होता है कि सूर्य अपनी किरणों में प्राणशक्ति धारण किए रहता है। उपनिषत् का सम्बद्ध छठा मन्त्र इस प्रकार है–

अथ आदित्यः उदयन् प्राचीं दिशं प्रविशति । तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते । यत् दक्षिणां, यत् प्रतीचीं, यत् उदीचीं यत् अधः यत् ऊर्ध्वं, यत् अन्तरा दिशः । यत् सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते ।।६।।

ऋषि पिप्पलाद बतलाते हैं– सूर्य की यही वैश्वानर तथ विश्वरूप प्राणशक्ति संसार में अग्निरूप में प्रकट होती है । वेद व ऋचा बतलाती है– द्युलोक की सौर शक्ति ही भू-लोक में अग्नि शक्ति बन जाती है । अग्नि सूर्य का ही छोटा रूप है । सूर्य प्राणशक्ति का संचार करता है तो अग्नि भी प्राणशक्ति का संचार करता है । ऋषि पिप्पलाद बतलाते हैं– सूर्य की प्राणशक्ति से विश्व का स्वरूप चमक उठता है। प्राणशक्ति हरिंण है, वह 'हरति' जीवन का हरण कर लेती है, यह प्राणशक्ति न हो तो जीवन नहीं रहता, वही सब जगह मौजूद है, वही विश्व का परम अयन या आश्रय है, उसी प्राणशक्ति के सहारे सम्पूर्ण विश्व टिका हुआ है, परम ताप वही एकमात्र ज्योति है, वह हजारों किरणों और सैकड़ों रूपों वाली है । वही सूर्य प्रजाओं का प्राण ज्योति स्वरूप है । पिप्पलाद ऋषि ऋग्वेद का यह मन्त्र प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत करते हैं–

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम् ।
सहस्त्ररश्मिः शतधा वर्त्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ।।८।।

सूर्य की प्राणशक्ति से विश्व का स्वरूप खिलता है । प्राणशक्ति हरिण रूप है, वह न हो तो जीवन नहीं रहता । वही हर स्थान में विद्यमान है, वही विश्व का परम आश्रय है, वह न हो तो जीवन नहीं रहता । वही एकमात्र ज्योति परम ताप वाली, सहस्त्र किरणों वाली है, उसके अनेक रूप हैं । वही सूर्य समस्त प्राणियों का जीवन है । इस सूर्य के

रूप में वह प्राणशक्ति प्रकट हो रही है ।

वस्तुत: सूर्य के बड़प्पन तथा समस्त लौकिक सांसारिक कार्यों में उसके आधारभूत योगदान को समझकर हम सृष्टिकर्त्ता परमात्मा के सर्वत्र और सर्वशक्तिमान् स्वरूप को भली प्रकार समझ सकते हैं । ऋषि पिप्पलाद बतलाते हैं कि सृष्टि का आदि कारण ही प्रजापति है । उन्होंने यह भी स्पष्ट प्रतिपादित किया कि यह आदि कारण प्रजापति अकेला कुछ नहीं कर सकता, उसे मिथुन या जोड़े का सहारा लेना पड़ता है। इसी से संसार का यह चक्र निरन्तर चल रहा है । ऋषि ने इस जोड़े के नाम– 'प्राण' भोक्ता और 'रयि' भोग्य प्रयुक्त किया जाने वाला, दिए हैं । पिप्पलाद ऋषि स्पष्ट करते हैं कि सृष्टि को साकार रूप देने के लिए, उसे व्यवस्थित रूप देने के लिए सूर्य-चन्द्र के जोड़े से काल की व्यवस्था होती है–वर्ष, मास, रात-दिन के व्यवहार से लोक में संसार का व्यवहार चलता है । ऋषि संवत्सर को प्रजापति हते हैं, इस संवत्सर वर्ष के दो मार्ग हैं– दक्षिण तथा उत्तर । सूर्य छ: प्र तक दक्षिणायन में रहता है और छ: मास तक उत्तरी क्षेत्र में रहता । दक्षिणायन तथा उत्तरायण मिलकर ही संवत्सर या वर्ष बनता है । ऋषि ।लाते हैं कि उत्तरायण में भोक्ता-आत्मा की ज्ञानादि शक्ति बढ़ती है, भोग से चित्तवृत्ति हटाने वाले योग वृत्ति के साधक तप, ब्रह्मचर्य, श्रद्धापूर्वक विद्याभ्यास आदि से आत्मज्ञान की साधना करते हैं, वे संसार रूपी चक्र में बार-बार नहीं घूमते । जीवात्मा का ज्ञान प्रजापति का स्वरूप समझने में सहायता देता है ।

ऋषि जिज्ञासु की समस्या या जिज्ञासा– कहां से ये प्राणी-प्रजाएं उत्पन्न होती हैं, का समाधान करते हुए बतलाते हैं, अन्न ही प्रजापति है। जैसे– संवत्सर, मास अहोरात्र प्रजापति की रचना की व्यवस्था करते हैं, वैसे ही निश्चय से अन्न भी प्रजा का पालन करता है–अन्न प्रजापति है । अन्न से वीर्य बनता है, वीर्य से ही सन्तान होती है । ऋषि पिप्पलाद की विचार-धारा के अनुसार वीर्य प्राण है, प्रजा सन्तान रयि है । सम्बन्धित मन्त्र देखिए–

अन्नं वै प्रजापतिः, ततः ह वै तद् रेतः ।
तस्मात् इमाः प्रजा प्रजायन्ते इति ॥१४॥

पिप्पलाद ऋषि के अनुसार वीर्य-प्राण है और प्रजा रयि या सन्तान है । वीर्य धनशक्ति-प्राणशक्ति है, उससे उत्पन्न होने के कारण प्रजा भोग्य ऋण शक्ति है । इस प्रकार ऋतुओं और गृहस्थ की मर्यादा की दृष्टि में प्रजा उत्पन्न करना प्रजापति-व्रत है । अगली ऋचा में पिप्पलाद ऋषि बतलाते हैं–जो लोग प्राण तथा रयि दोनों का समन्वय करके जीवन व्यतीत करते हैं–प्रजापति व्रत का पालन करते हुए–यह समझते हुए कि न प्राणशक्ति ही अन्तिम तत्त्व है और न रयि-शक्ति ही अन्तिम तत्त्व है– इन दोनों का

समन्वित व्यवस्थित मेल ही जीवन का सच्चा रहस्य है । वे तपस्या, ब्रह्मचर्य एवं सत्य की मर्यादा का पालन करते हुए ब्रह्मलोक की प्राप्ति करते हैं । सम्बन्धित ऋचा इस प्रकार है–

तत् ये प्रजापतिव्रतं चरन्ति, ते मिथुनम् उत्पादयन्ते। तेषाम् एव एष ब्रह्मलोकः, येषां तपः ब्रह्मचर्यं, येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् ॥१५

ऋषि जिज्ञासु को बतलाते हैं उनका निवास निर्मल ब्रह्मलोक में होता है । उनके लोक में कुटिलता नहीं होती, असत्य नहीं होता, न छल कपट-प्रवंच या किसी प्रकार का धोखा होता है । श्रुति कहती हैं–

तेषाम् असौ विरजः ब्रह्मलोकः ।
न येषु जिह्मम् अनृतम् न माया च इति ॥१६

सृष्टि कौन धारण करता है, यह बिखरती क्यों नहीं ?

कबन्धी जिज्ञासु की इस जिज्ञासा–कि यह सृष्टि कैसे उत्पन्न होती है? के उत्तर में ऋषि पिप्पलाद ने बतलाया– सृष्टि का घटक तत्त्व प्रजापति है, वह प्राण और रयि के जोड़े से जीवन का चक्र चलाता है। उन दोनों में प्राणशक्ति प्रमुख है । वहां तप, ब्रह्मचर्य, सत्य के आचरण से निर्मल ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है । दूसरे जिज्ञासु थे भृगुगोत्री वैदभि ने जिज्ञासा की– सृष्टि की रचना हो जाने पर कौन इसे धारण करता है, किसके सहारे यह सृष्टि टिकी रहती है? कृपया बतलाइए– इस उत्पन्न हुई सृष्टि को कितने देव धारण करते हैं, कौन इसका ज्ञान कराते हैं और इन देवताओं में कौन सब से प्रमुख और श्रेष्ठ है ?

प्राण ही ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड को धारण किए हुए हैं ?

जड़ जगत् के पांचों महाभूत तथा चेतन जगत् की पांचों इन्द्रियां जब अपनी महत्ता बघारने लगीं, तब उनमें वरिष्ठ प्राण ने उनसे कहा–तुम मूर्खतापूर्ण अभिमान मत करो, मैं ही अपने को पांच प्राणों में बांट कर स्थूल--जड़-चेतन सृष्टि को धारण कर रहा हूं । जब पांचों महाभूत और पांचों इन्द्रियाँ यह बात मानने में इन्कार करने लगीं तब प्राण ने उत्क्रमण-बाहर निकलने का प्रारम्भ किया ही था कि पांचों इन्द्रियां अपनी जड़ों से हिल गईं और वे भी उसी के साथ निकलने को प्रस्तुत हुईं, जब प्राण फिर से जम गया तब दूसरी इन्द्रियां भी फिर से जम गईं । यह ठीक उसी प्रकार हुआ, जैसे रानी मक्खी के उड़ जाने पर दूसरी मधु मक्खियां भी उड़ जाती हैं और उसके बैठ जाने पर सब फिर बैठ जाती हैं । सब

इन्द्रियां समझ गईं कि उनका अस्तित्व प्राण पर निर्भर है । यह सब देख कर जड़ जगत् के पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाश एवं चेतन जगत् की आंख, नाक, कान, वाणी तथा त्वचा प्राण की स्तुति करते हुए कहने लगे–"यह जो अग्नि तपती है, वह सृष्टि की प्राणशक्ति के कारण, यह सूर्य जो प्रकाश दे रहा है, यह पर्जन्य जो बरस रहा है, यह मघवा-इन्द्र जो दान दे रहा है–पृथिवी, रयि, देव, सत्, असत्, अमृत-इन सब का मूल आधार प्राण ही है।"

ऋषि पिप्पलाद सात ऋचाओं में प्राण की स्तुति करते हैं । वह कहते हैं–"रथ के पहिए की नाभि (हाल) में जैसे अरे जुड़े रहते हैं, वैसे ही प्राणरूपी पहिए में संसार का सब कुछ जुड़ा हुआ है । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद आदि का सम्पूर्ण ज्ञानकाण्ड तथा यज्ञ-यागादि यह सम्पूर्ण कर्म-काण्ड, क्षत्र अर्थात् भौतिक शक्ति और ब्रह्म रूपी आत्मिक शक्ति-ये सब भी प्राण में प्रतिष्ठित हैं । ऋचा इस प्रकार है–

अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
ऋचः यजूंषि सामानि यज्ञं क्षत्रं ब्रह्म च ॥६॥

ऋषि स्तुति करते हुए कहते हैं– "हे प्राण, तू ही प्रजापति के रूप गर्भ में विचरण कर रहा है । हे प्राण, सम्पूर्ण प्रजाएं तेरे लिए ही उपहार देती हैं । हे प्राण, तू प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान-इन प्राण शक्तियों से प्रतिष्ठित हो रहा है ।" मन्त्र इस प्रकार है–

प्रजापतिः चरसि गर्भे त्वम् एव प्रतिजायसे । तुभ्यं प्राणः प्रजाः तु इमाः बलिं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठिसि ॥१७॥

हे प्राण, गुण की दृष्टि से बड़ों देवों में तू वह्नितम है, आयु में बड़ों-पितरों में तू प्रथम स्वधा है, ऋषियों में तू चरित है, अथर्वा– अथर्व वादियों में तू सत्य है । आगे ऋषि कहते हैं–हे प्राण, तुम अपने तेज से इन्द्र हो, अपने भीषण रूप से प्राणियों की रक्षा करने के कारण रुद्र हो, तुम अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले सूर्य हो, आप सूर्य की तरह ज्योतियों के पति हैं । सम्बद्ध मन्त्र इस प्रकार है–

इन्द्रः त्वं प्राणः, तेजसा रुद्रः असि परिरक्षिता ।
त्वम् अन्तरिक्षे चरसि सूर्यः त्वं ज्योतिषां पतिः ॥१८॥

पिप्पलाद ऋषि कहते हैं–हे प्राण, जब तुम बादल के रूप में बरसते हो, तब तुम्हारे द्वारा पैदा की हुई इस सृष्टि की प्रजा आनन्द विभोर होकर कहती है– अब यथेच्छ अन्न पैदा होगा । ऋषि आगे कहते हैं– हे प्राण, तू व्रात्य है और ऋषियों में मूर्धन्य भी है, तू विश्व को खा जाने वाला है और तुम ही इसके पालन करने वाले हो, तुम भोक्ता हो और हम भोग्य देने वाले हैं–तुम प्राण रूप दिखने वाली मातरिश्वा वायु के भी पिता हो।"

ऋषि स्तुति करते हुए कहते हैं– "हे प्राण तुम्हारा जो रूप वाणी

में प्रतिष्ठित है या जो तुम्हारा स्वरूप कान और आंख में प्रतिष्ठित है अथवा जो तुम्हारा स्वरूप मन में फैल रहा है, उन सब को कल्याणकारी करें, आप उनसे उत्क्रमण न करें, आप से अनुरोध है कि हम में भरपूर प्राणशक्ति का संचार करें, जिससे मेरे अंग-अंग में प्राणशक्ति का संचार हो । सम्बद्ध ऋचा इस प्रकार है–

या ते तनूः वाचि प्रतिष्ठिता, या श्रोत्रे, या च चक्षुषी । या च मनसि संतता, शिवां तां कुरु, मा उत्क्रमीः ॥१९॥

ऋषि सातवीं ऋचा में स्तुति करते हुए सांसारिक श्री और आध्यात्मिक प्रज्ञा दोनों की याचना करते हुए कहते हैं– ''यह सब प्राण के ही वश में है, जो कुछ भी इस पृथिवी, द्यु तथा आकाश के 'त्रिदिव' में है– वह सब आप के नियन्त्रण में है, इसलिए हे प्राण, आप हमारी ऐसी रक्षा करें, जैसे माता पुत्रों की रक्षा करती है, आप हमारे लिए भौतिक ऐश्वर्य तथा मानसिक एवम् आध्यात्मिक ऐश्वर्य का विधान करें ।

प्राण की स्तुति कर सांसारिक सम्पत्ति तथा सांसारिक एवम् आध्यात्मिक बुद्धि एवं प्रज्ञा की याचना कर ऋषि ने भृगुगोत्री वैदर्भि की जिज्ञासा का समाधान कर दिया । जिज्ञासु ने पूछा था ''सृष्टि की रचना हो जाने पर वह किसके सहारे टिकी रहती है?'' ऋषि पिप्पलाद ने बतलाया– ''यह सारी सृष्टि प्राण के सहारे टिकी हुई है, पिण्ड में प्राण और ब्रह्माण्ड में उसका जीवन देने वाला प्रजापति न हो तो यह टिक नहीं सकती ।

प्राण कहां से आता है और कहां रहता है?

दूसरे प्रश्न का उत्तर दिए जाने पर तीसरे जिज्ञासु कौशल्य आश्वलायन ऋषि पिप्पलाद के सम्मुख आए और जिज्ञासा की ''भगवन्, यह प्राण कहां से या किससे उत्पन्न होता है? यह इस शरीर में कैसे आता है, शरीर में प्रविष्ट होकर यह अपने आप को बांट कर इस देह में कैसे रहता है? शरीर में निवास करने के बाद यह प्राण इस शरीर को कैसे छोड़ता है, किस प्रकार यह बाह्य जगत् के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है और किस प्रकार आभ्यन्तर आत्मिक जगत् के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है । मूल ऋचा इस प्रकार है–

अथ ह एनं कौशल्यः आश्वलायनः प्रपच्छ–भगवन् कुतः एष प्राणः जायते । कथम् आयाति अस्मिन् शरीरे, आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते । केन उत्क्रमते, कथं बाह्यम् अभि-धत्ते, कथम् अध्यात्मम् इति ॥१॥

इस पर ऋषि पिप्पलाद ने कहा– बहुत ज्यादा प्रश्न पूछ रहे हो, पर क्योंकि तुम ब्रह्मिष्ठ हो– ब्रह्म-भगवान् में आस्था रखते हो, इसलिए तुम्हें उत्तर देता हूं– आपने जिज्ञासा की है कि यह प्राण कहां से पैदा होता है?, उत्तर है आत्मा से प्राण पैदा होता है, जैसे पुरुष के साथ उसकी छाया लगी रहती है । वैसे, आत्मा के साथ प्राण समाविष्ट रहता है । तुम्हारी अगली जिज्ञासा थी कि इस शरीर में प्राण कैसे आता है? ऋषि पिप्पलाद ने उत्तर दिया– मन में किए संकल्प के कारण प्राण आत्मा के साथ संलग्न हुआ इस शरीर में प्रविष्ट हुआ करता है । अन्तिम जिज्ञासा थी–**आत्मानं प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते?** इस जिज्ञासा के उत्तर में पिप्पलाद का समाधान था जैसे सम्राट् अपने अधीन कर्मचारियों को अपने-अपने काम में नियुक्त करता है और उन्हें निर्देश देता है कि इन-इन ग्रामों के अधिष्ठाता बन कर उन्हें सम्भालो, उसी तरह प्राण अन्य प्राणों को पृथक्-पृथक् कार्यों में नियुक्त कर देता है । सम्बद्ध ऋचाएं निम्न हैं–

आत्मनः एष प्राणः जायते । यथा एषा पुरुषे छाया एतस्मिन् एतद् आततम्। मनोधिकृतेन आयाति अस्मिन् शरीरे ।।३।।

यथा सम्राट् अधिकृतान् विनियुङ्क्ते, एतान् ग्रामान् अधितिष्ठस्व इति । एवम् एव एषः प्राणः इतरान् प्राणान् पृथक्-पृथक् एव संनिधत्ते ।।४।।

ऋषि स्पष्ट करते हैं–प्राण इन प्राणों को क्या-क्या काम सौंपते हैं– गुदा तथा उपस्थ में अपान को, आंख, कान, मुख, नाक में स्वयं 'प्राण' प्रतिष्ठित होता है, शरीर के मध्य भाग में 'समान' । यह समान-वायु शरीर में आहुति के रूप में पड़े हुए अन्न को सम-एक रस बना कर सब जगह पहुंचा देता है । जब शरीर में सब जगह अन्न का रस पहुंच जाता है- तब उससे शरीर में सात ज्योतियां जाग उठती हैं ये सात ज्योतियां हैं– दो आंखें, दो कान, दो नाक तथा एक मुख । इन सब में जो ज्योति है, वह समान द्वारा अन्न को रस में रूपान्तरित कर देने से उन्हें मिलती है । सम्बन्धित ऋचा इस प्रकार है–

पायु उपस्थे अपानम् चक्षुः श्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रतिष्ठते । मध्ये तु समानः एष हि हुतम् अन्नम् नयति । तस्माद् एताः सप्त अर्चिष भवन्ति ।।५।।

व्यान के विषय में ऋषि बतलाते हैं– "आत्मा हृदय में रहता है। हृदय में १०१ नाड़ियां हैं, उनमें से एक-एक से सौ-सौ शाखाएं फूटती हैं, उन शाखा सहस्रों में से एक-एक शाखा से बहत्तर शाखाएं फूटती हैं, वर्त्तमान शरीर विज्ञान में उन्हें कोशिकाएं की संज्ञा दी गई है। उनमें व्यान वायु प्रवाहित होता है ।" मूल ऋचा देखिए–

हृदि हि एषः आत्मा । अत्र एतत् एकशतं नाडीनाम्। तासां शतं-शतम् एकैकस्याम् द्वा सप्ततिः द्वा सप्ततिः प्रतिशाखा नाडीसहस्राणि भवन्ति । आसु व्यानः चरति ।।६।।

ऋषि व्यान का वर्णन करने के बाद हृदय से ऊपर जाने वाली नाड़ी को उदान कहते हैं । आधुनिक शरीर-विज्ञान में ऊपर जाने वाली प्रणालिका आयोर्टा कहलाती है । पुण्य कर्म के फलस्वरूप उदान आत्मा को पुण्य-लोक में ले जाता है, पाप करने से वह पाप-लोक में जाता है, दोनों प्रकार के कर्म करने वाला मनुष्य लोक में जाता है । सम्बद्ध ऋचा इस प्रकार है–

अथ एकया ऊर्ध्वः उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति ।
पापेन पापम् उभाभ्याम् एव मनुष्यलोकम् ।।७।।

पिप्पलाद ऋषि आत्मा तथा प्राण में भी भेद करते हैं । पीछे ऋषि बतला आए हैं जैसे पुरुष के साथ छाया रहती है, वैसे ही आत्मा के साथ प्राण रहता है । **यथा एषा पुरुषे छाया एतत् अस्मिन् एतद् आततम् ।** जड़ तथा आत्मा के बीच की कड़ी प्राण है । यह ठीक है कि जिस प्रकार आंख, नाक, कान आदि दीखते हैं, उस प्रकार प्राण नहीं दीखता, तथापि जिस प्रकार आंख, नाक कान आदि की पृथक अनुभूति होती है, उसी प्रकार प्राण की अनुभूति होती है परन्तु आत की पृथक् अनुभूति नहीं होती । आत्मा को कोई माने या न माने पर प्राण को मानने से कोई इन्कार नहीं करता । शरीर तथा आत्मा को जोड़ की कड़ी प्राण है परन्तु यह न शरीर है और न आत्मा । ऋषि बतलाते हैं कि हृदय की १०१ नाड़ियों में से एक सीधी मस्तक मूर्धा को चली गई है । इसी सुषुम्णा नाड़ी में उदान वायु विचरता है । यह नाड़ी सिर से पैर के तलवे तक फैली हुई है । इसी हृदयस्थ नाड़ी के एक अंग में जीवात्मा का निवास कहा जाता है, मन को इस नाड़ी से संयुक्त कर समाधि में लीन योगी आत्मज्ञान की उपलब्धि करते हैं । उदान प्राण ही लिंग शरीर के सहित जीवात्मा को शरीर से निकालता है तथा कर्मों के अनुसार योनि और भोग प्राप्त कराता है ।

जो पिण्ड में और वह ब्रह्माण्ड में है ।

उपनिषत्-कालीन चिन्तकों-ऋषियों की धारणा थी कि यह मानव शरीर रूपी पिण्ड ब्रह्माण्ड की ही छोटी आकृति है और यह ब्रह्माण्ड -विशाल सृष्टि पिण्ड की बड़ी आकृति है । जो पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में है **'यत्पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे, यत् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे ।'** धारणा को

सम्मुख रख कर ऋषि पिप्पलाद कहते हैं– १. जैसे पिण्ड में आंख, नाक आदि इन्द्रियों को प्राण जीवन देता है, वैसे ब्रह्माण्ड के बाह्य जगत् में सूर्य का काम प्राणशक्ति को सर्वत्र पहुँचाना होता है, आदित्य सूर्य बाहरी प्राण है, उदय होता हुआ सूर्य प्राणशक्ति से अनुगृहीत करता है । २. जैसे पिण्ड में प्राण की अपान-शक्ति मूत्र-पुरीष को नीचे की तरफ धकेलती है, उसी प्रकार पृथिवी की गुरुत्व शक्ति अपान-शक्ति के तुल्य है । यही शक्ति पृथिवी को थामे हुए है । ३. ब्रह्माण्ड में आकाश-सूर्य तथा पृथिवी का मध्यवर्त्ती अन्तराल जिसे सामान्य परिभाषा में आकाश कहते हैं वह ब्रह्माण्ड का 'समान' है। पुरुष का प्राण उसके ऊपरी शारीरिक अंगों में है, अपान नीचे के अंगों में बीच का पेट का खाली भाग ही आकाश है । ४. पिण्ड में व्यान कोशिकाओं द्वारा रुधिर और अन्य रस शरीर के प्रत्येक अंग में पहुंचाता है, इसी तरह ब्रह्माण्ड में एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने वाली वायु, बादलों एवं वर्षा-कणों को पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक पहुंचा देती है । ५. ऋषि पिप्पलाद तेज को उदान कहते हैं, पिण्ड में ऊपर जाने की शक्ति ही उदान है, वही जीवन में तेज और ब्रह्माण्ड में तेज का प्रतिनिधित्व करता है । सम्बन्धित ऋचाएं ये हैं–

आदित्यः ह वै बाह्यः प्राणः, उदयति एष हि एनं चाक्षुषं प्राणं अनुगृह्णानः । पृथिव्यां या देवता सा एषा पुरुषस्य अपानम् अवष्टभ्य अन्तरा यत् आकाशः सः समानः वायुः व्यानः ॥८॥

तेजः ह वै उदानः । तस्मात् उपशान्ततेजाः पुनर्भवम् इन्द्रियैः मनसि संपद्यमानैः॥९॥

ऋषि पिप्पलाद स्पष्ट करते हैं- मन में जिस प्रकार के संस्कार एकत्र हो जाते हैं, उन संस्कारों को ग्रहण कर चित्त प्राण के पास अर्थात् उदान रूपी प्राण के पास पहुंचता है (**यत् चित्तः तेन एष प्राणम् आयाति**) यह उदान-प्राण तेज तथा आत्मा को लेकर इसका जैसा जैसा संकल्प होता है यह प्राण आत्मा को वैसे-वैसे लोक में ले जाता है । (**प्राणः तेजसा युक्तः सह आत्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति ।**)

ऋषि पिप्पलाद बतलाते हैं– जो विद्वान् ऊपर बतलाए प्राण के रहस्य को जान लेता है, उसकी वंश परम्परा बनी रहती है, वह अमर हो जाता है।

आश्वलायन ने एक साथ कई प्रश्न कर दिए थे । उसकी जिज्ञासा थी कि प्राण की उत्पत्ति कहां से होती है? ऋषि पिप्पलाद ने उत्तर दिया था– ''आत्मा से प्राण की उत्पत्ति होती है । आश्वलायन की जिज्ञासा थी कि प्राण शरीर में कैसे आता है? ऋषि ने उत्तर दिया था ''आत्मा के साथ लगा प्राण शरीर में प्रविष्ट हुआ करता है । आश्वलायन की जिज्ञासा थी–शरीर के किस-किस भाग में प्राण प्रतिष्ठित है । बाह्य शरीर के साथ अध्यात्म में प्राण

कैसे रहता है, इन सब का ऋषि स्पष्टीकरण कर चुके हैं। अन्त में वह कहते हैं कि जो व्यक्ति प्राण की उत्पत्ति, आयति, स्थान, विभुत्व और अध्यात्म को इन के रहस्य को जान कर जीवन व्यतीत करता है, वह अमृत का आस्वादन करता है। सम्बद्ध ऋचा इस प्रकार है–

उत्पत्तिम्, आयतिं, स्थानं, विभुत्वं च एव पञ्चधा, अध्यात्मञ्चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते, विज्ञाय अमृतमश्नुते इति ॥१२॥

इस उपनिषत् के उक्त तीन प्रश्नों के उत्तर में ऋषि पिप्पलाद ने प्राण की महिमा बतलाई है, जिज्ञासु साधक उन्हें भली प्रकार जानकर उनके अनुकूल आचरण कर संसार-सागर के चक्र से मुक्त हो सकता है।

इन्द्रियां भोग्य हैं–आत्मा ही द्रष्टा और भोक्ता है

इसके बाद चौथे जिज्ञासु सूर्य के पोते सौर्यायिणी ने पहले प्रश्नों में की गई शारीरिक स्तर की चर्चा से ऊपर उठ कर मानसिक स्तर की चर्चा करते हुए जिज्ञासा की-''भगवन्, इस पुरुष के भीतर कौन शक्तियां हैं, जो सो जाती हैं। (**एतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति**) और कौन शक्तियां हैं जो सोने के बाद जाग उठती हैं। (**कानि अस्मिन् जाग्रति**) और बहुत से प्राणादि के बीच इस पुरुष शरीर के भीतर बैठा हुआ वह कौन देव है, ज्ञानरूप प्रकाश से युक्त स्वप्नों को देखता है (**कतरः एषः देवः स्वप्नान् पश्यति**) किसे यह सुख की अनुभूति होती है अर्थात् पुरुष में जो स्वप्न, जागरण और सुख होता है (**कस्य एतत् सुखं भवति**) वास्तव में होने वाली भिन्न अनुभूतियां वस्तुतः एक ही तत्त्व के नाना रूप हैं (**कस्मिन् सर्वे संप्रतिष्ठिताः भवन्ति।**)

ऋषि पिप्पलाद ने जिज्ञासु सौर्यायणी को उत्तर दिया–'' हे गार्ग्य' जैसे अस्त के समय सूर्य की किरणें सब की सब उसके ज्योतिर्मय मण्डल में इकट्ठी हो जाती हैं और फिर जब सूर्य उदय होता है तब वे फिर-फिर फैल जाती हैं, इसी प्रकार शयन-सोने रूपी अस्त की ओर प्रवृत्त होती हुई प्राणी की इन्द्रिय रूपी किरणें मन रूपी सूर्य में एकाकार हो जाती हैं। शयन की उस स्थिति में पुरुष न सुनता है, न देखता है, न सूंघता है, न रस लेता है, न स्पर्श करता है, न बोलता है। (**न शृणोति, न पश्यति, न जिघ्रति,न रसयते, न स्पृशते, न अभिवदते।**) वह न कुछ पकड़ता है, न आनन्द करता है, मल-मूत्र का विसर्जन नहीं करता, न गति करता है। (**न आदत्ते, न आनन्दयते, न विसर्जते, न इयायते।**) ऐसी स्थिति में यही कहा जाता है कि वह सो रहा है–वैसे, वह नहीं सोता, इसकी इन्द्रियां ही सोती हैं। (**स्वपिति इति आचक्षते।**)

फिर जब इन्द्रियां सो जाती हैं, जब न आंखें देखती हैं, कान सुनते नहीं हैं, उस समय पिप्पलाद ऋषि का कथन है– ''प्राण जागते रहते हैं।'' ऋषि यहां प्राणियों को प्राणाग्नि कहते हैं। प्राण, अपान, समान व्यान, उदान ये सब अग्नि के तुल्य हैं, वे सदा प्रज्वलित रहते हैं, ये कभी बुझते नहीं, सदा जागते रहते हैं । ये सब मानव शरीर रूपी नगरी में पहरा देते रहते हैं । प्राचीन समय में प्रत्येक गृहस्थ कभी न बुझने वाली गृहपति की अग्नि 'गार्हपत्य अग्नि' सुरक्षित रखता था । ऋषि पिप्पलाद उस गार्हपत्य अग्नि को अपान कहते हैं, यह शरीर में रहने वाला नाभिस्थ अपान है । इसी गार्हपत्य अग्नि से अग्निहोत्र के लिए अग्नि ले जाई जाती थी, पिप्पलाद के मत में वही प्राण की प्रतिनिधि है । (**यद् गार्हपत्यात् प्रणीयते प्रणयनात् आहवनीयः प्राणः।**) इस प्रकार अपान, व्यान तथा प्राण गृहपति की पंचाग्नियों की तरह सदा जागते रहते हैं ।

समान और उदान की चर्चा करते हुए ऋषि उद्दालक स्पष्ट करते हैं–''प्राण तथा अपान का उच्छ्वास भीतर आना तथा निःश्वास बाहर जाना– ये दोनों (**यत् उच्छ्वासः यत् निःश्वासः एतौ**) यज्ञ में दी जाने वाली आहुतियों के समान हैं । (**आहुतिसमम्**) यज्ञ में दी जाने वाली आहुतियां सूक्ष्म धुएं में आहुतियों के तत्त्व सब जगह समान रूप में पहुँचा देती हैं। इसलिए यज्ञ की आहुतियों का कार्य समान का प्रतिनिधि है । (**नयति इति सः समानः**) इस पंचाग्नि यज्ञ में मन यजमान का काम करता है । (**मन ह वाव यजमानः**) जैसे यज्ञ में एक न एक अभिलाषा होती है, इसी प्रकार पंचाग्नि यज्ञ में इष्टफल होता है, इसी प्रकार पंचाग्नि यज्ञ का इष्टफल उदान है । उदान का कार्य ऊपर ले जाना है । उदान रूप प्राणाग्नि ऊपर उठा कर ब्रह्म-ज्ञान के मार्ग पर डाल देती है । (**स एव यजमानम् अहरहः ब्रह्म गमयति ।**)

पिप्पलाद मुनि ने सौर्यायणी को पांच प्राणों की तुलना करते हुए बतलाया जैसे पांच अग्नियां बुझती नहीं, वैसे पांचों प्राण थकते नहीं बुझते नहीं, दिन-रात जागते रहते हैं ।

स्वप्न कौन देखता है?

जिज्ञासु सौर्यायिणी की जिज्ञासा थी कि स्वप्न कौन देखता है (**कतरः स्वप्नान् पश्यति**) जब इन्द्रियां सो जाती हैं, प्राण जागते रहते हैं परन्तु प्राण स्वप्न नहीं देखते, इन्द्रियों और प्राण के अतिरिक्त मन तीसरा तत्त्व है, जो आंखें बन्द करके देखता है, कान बन्द करके सुनता है । बिना साधनों के वह सब कुछ करता है । मन देखे-अनदेखे को, सुने-अनसुने

को, अनुभव किए या अनुभव न किए, सत्-असत् को सब कुछ को देखता है। (**सर्वं पश्यति**) सब प्राणी भी ऐसे ही देखते हैं।

सौर्यायणी की चौथी जिज्ञासा थी–'सुख किसे होता है?' ऋषि पिप्पलाद जिज्ञासा का समाधान करते हुए बतलाते हैं– 'जब आत्मा तेज गुण से अभिभूत होता है, तब उस अवस्था में आत्मदेव सपने नहीं देखता। स्वप्नावस्था में सपने आते हैं। सुषुप्ति अवस्था में स्वप्न नहीं आते। स्वप्नावस्था तथा सुषुप्ति में भेद यह है, स्वप्न की स्थिति रजोगुण प्रधान है, जबकि सुषुप्ति सतोगुण प्रधान है। सत्त्व गुण की अवस्था ही तेजः स्वरूप स्थिति है आत्मा का यह तेज़ोमय रूप है। सुषुप्ति का उल्लेख उपनिषदों में मिलता है, उसी के आधार पर उसमें अध्यात्म की चर्चा की गई। सम्भवतः स्वप्नहीन निद्रा या नींद ही सुषुप्ति है। सुषुप्ति में इन्द्रियां, प्राण, मन सब अलग हो जाते हैं–आत्मा अपने पथ में आ जाता है।

सौर्यायणी की पांचवीं जिज्ञासा थी–इन्द्रियां, प्राण मन आदि क्या स्वतन्त्र रूप से अपनी-अपनी इच्छा से काम करते हैं अथवा किसी नियामक केन्द्र के नियन्त्रण में बंधे होते हैं?

इस जिज्ञासा के उत्तर में ऋषि पिप्पलाद ने बतलाया– हे प्रिय, वृक्ष पर बसेरा कर जैसे पक्षी वहां प्रतिष्ठित हो जाते हैं, वहां बस जाते हैं, वही उनका आश्रय-स्थल बन जाता है। उसी तरह ये सब इन्द्रियाँ प्राण, मन, आत्मा में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, वही उनका आश्रय-स्थल बन जाता है।

सौर्यायणी ने पूछा था–आत्मा की शरण में कौन कौन आते हैं? पिप्पलाद बतलाते हैं–स्थूल तथा सूक्ष्म पृथिवी, स्थूल तथा सूक्ष्म जल, स्थूल तथा सूक्ष्म वायु, इस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड या भौतिक जगत्, आंख, कान, नाक, रस, त्वचा, वाणी, हाथ, उपस्थ, पायु, मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त और इन सब इन्द्रियों के विषय अर्थात् सम्पूर्ण आध्यात्मिक जगत् या पिण्ड ये सब आत्मा की शरण में रहते हैं या उसमें प्रतिष्ठित हैं। भौतिक तथा आध्यात्मिक जगत्, ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड का आश्रय-स्थल आत्मा ही है। यहां एक विस्तृत सूची दी गई है। जिसमें ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड का आश्रय-स्थान आत्मा ही है। पृथिवीमात्रा और आपोमात्रा का अर्थ इन तत्त्वों का सूक्ष्म रूप है, सब कुछ अपने आधार पर नहीं, परन्तु आत्मा के आधार पर टिका हुआ है।

वही द्रष्टा, इन्द्रियां भोग्य हैं

ऋषि पिप्पलाद बतलाते हैं–''देखने वाला तो वह आत्मा है,

स्पर्श करने वाला, सुनने वाला, सूंघने वाला, रस लेने वाला तो वह आत्मा है, मनन करने वाला, बुद्धि का प्रयोग करने वाला, सब कुछ करने वाला तो यह आत्मा है । वह आत्मा विज्ञानमय पुरुष है । जैसे इन्द्रियां, प्राण, मन आत्मा में प्रतिष्ठित हैं, आत्मा के अवलम्ब से टिके हुए हैं, उसी प्रकार यह विज्ञानमय पुरुष आत्मा-अविनाशी आत्मा-विज्ञानमय पुरुष परमात्मा के सहारे टिका हुआ है। सम्बन्धित ऋचा इस प्रकार है–

एष हि द्रष्टा, स्प्रष्टा, श्रोता, घ्राता, रसयिता, मन्ता, बोद्धा, कर्त्ता, विज्ञानात्मा पुरुषः । स परे अक्षरे आत्मनि संप्रतिष्ठते ॥९॥

इस प्रकार जब आत्मा इन्द्रियों से अपना सम्बन्ध तोड़ लेता है, तब वह अपने अक्षर स्वरूप में आ जाता है, अपने आप में आ जाता है (**आत्मनि संप्रतिष्ठते**) अपने वास्तविक रूप आत्मा को असली स्वरूप उसके शुद्ध रूप को जो कुछ जानने योग्य है, उस सब को जान लेता है । इसी भाव की अभिव्यक्ति करते हुए ऋषि पिप्पलाद कहते हैं–

परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै तदच्छायममशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सौम्य । स सर्वज्ञः सर्वो भवति तदेव श्लोकः॥१०॥

वह व्यक्ति परम अविनाशी परम अक्षर आत्मा (या ब्रह्म) को प्राप्त कर लेता है, वह छाया रहित, शरीर रहित, रुधिर रहित, शुभ्र अक्षर रहित आत्मा या ब्रह्म को जान लेता है । हे सोम्य, वह सर्वज्ञ हो जाता है, जो कुछ जानने योग्य है, वह उसे जान लेता है, और इस जीवन में जो कुछ बनने योग्य था, वह बन जाता है । ऋषि अगली ऋचा में कहते हैं–''वर्णन किया जा रहा यह आत्मा विज्ञानस्वरूप है, वह सब इन्द्रियों को लेकर जो कुछ बच रहा है, उसे भी लेकर प्राण, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश आदि पांचों महाभूत उसी में प्रतिष्ठित होते हैं । जो इस अक्षर आत्म या परमात्म तत्त्व को जानता है, वह सर्वज्ञ हो जाता है और हर पदार्थ में प्रविष्ट हो जाता है–अर्थात् प्रत्येक पदार्थ की प्रत्येक सूक्ष्मता को जान लेता है । सम्बद्ध ऋचा इस प्रकार है–

विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः प्राणाः भूतानि संप्रतिष्ठन्ति यत्र तदक्षरं वेदयते। यस्तु सौम्य, सर्वज्ञः सर्वमाविवेशेति ॥११॥

परमात्मा ने सब इन्द्रियों को बाहर देखने वाला बनाया है । बाहर के पट बन्द कर, जो आन्तरिक पट खोलता है । सब शास्त्रों के तत्त्व को जानने वाला वह आत्मा को आमने-सामने देख लेता है । वह चराचर जगत् के नियन्ता ब्रह्म को जान कर सब भौतिक दुःखों से छूट जाता है।

ओङ्कार के ध्यान-उपासना का लाभ

चौथे प्रश्न के माध्यम से हम आत्म-ज्ञान की महत्ता समझ चुके

हैं । आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए ध्यान-उपासना के मार्ग उपयोगी कहे जाते हैं । पांचवें जिज्ञासु शिवि के पुत्र सत्यकाम ने ध्यान के विषय में जिज्ञासा की–''भगवन्, मनुष्यों में जो प्रसिद्ध तपस्वी योग-नियमादि योग के अंगों के अनुष्ठान में तत्पर ज्ञानी विद्वान् गृहाश्रमादि में होने वाले संसारी सुख को छोड़कर ब्रह्मचर्य धारण कर योगाभ्यास और तप करता हुआ जीवन पर्यन्त (**प्रायणान्तम्**) ओङ्कार शब्द के वाच्यार्थ ब्रह्म की उपासना करता है, वह कैसे फल व अधिकार को पाता है । मन्त्र देखिए –

अथ हैनं शैव्यः सत्यकामः पप्रच्छ । स यो ह वै तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत । कतमं वाव स लोकं जयतीति ॥१॥

ऋषि ने उत्तर दिया–परमार्थ मुक्तिफल की प्राप्ति की कामना से जिसकी उपासना की गई हो, अथवा संसारी सुख की कामना से जिसकी उपासना की गई हो, वही ओङ्कार निश्चय से 'पर' तथा 'अपर' ब्रह्म है । यह जो ओङ्कार शब्द अर्थ और दोनों का ज्ञान एक दूसरे में लय करने से 'ओ३म्' यह ज्ञान है, इसलिए ज्ञानी पुरुष आत्मज्ञान की प्राप्ति के साधन के रूप में पर तथा अपर एक उपासना में से पर या अपर फल को अनुकूलता से प्राप्त कर लेता है । ऋचा इस प्रकार है–

तस्मै स ह उवाच । एतत् वै सत्यकाम, परं च अपरं च ब्रह्म यत् ओङ्कारः । तस्मात् विद्वान् एतेन एव आयतनेन एकतरमन्वेति ॥२॥

ब्रह्म के पर रूप का अर्थ है –इस सृष्टि से परे ब्रह्म का वह रूप जो निर्लेप रूप है, सृष्टि से पृथक् रूप । अपर रूप है वह जो सृष्टि में दिखलाई देता है, सृष्टि के कर्त्ता का रूप । योगी लोग ब्रह्म के, स्थूल सूक्ष्म लिंग शरीर रहित, क्षतादि रहित, शुद्ध, पाप शून्य, कवि, मनीषी (**अकायम् अस्नाविरं शुद्धम् अपापविद्धं कविः मनीषीः**) स्वरूप की उपासना करते हैं । संसारी पुरुष सृष्टि के रचनाकार, सुख-दुःख की व्यवस्था करने वाले परमात्मा की आराधना करते हैं । ज्ञान-काण्ड के ग्रन्थ उपनिषदों में पर-ब्रह्म की उपासना है तो कर्मकाण्ड-यज्ञ यागादि के ब्राह्मण ग्रन्थों में अपर ब्रह्म की आराधना । ये दोनों ही प्रणालियां ब्रह्म-ओङ्कार पर आधारित हैं, योगी पर रूप ओङ्कार का ध्यान कर अध्यात्म मार्ग का पथिक बनता है, संसारी ओङ्कार की आराधना से संसार के सुख पाता है । ऋषि पिप्पलाद ओङ्कार की एक मात्रा, दो मात्राओं और तीन मात्राओं के ध्यान-उपासना का फल बतलाते हैं । पहले एक-मात्र ओंकार का ध्यान करे तो उससे ही ज्ञान युक्त होकर पृथिवी में सम्पन्न-समृद्ध हो जाता है । ऋचाएं उसे मृत्युलोक में ले जाती हैं । मनुस्मृति में लिखा है–अ उ म् इन तीन वर्णों का ऋगादि तीन वेदों के

आधार पर परमेश्वर ने ओ३म् नाम रखा है, इसलिए यह मुख्य नाम है। कर्म, उपासना, ज्ञान–ये वेदों के तीन मुख्य विषय हैं और भूः भुवः स्वः ये तीन मुख्य लोक हैं। लौकिक फल की प्राप्ति की इच्छा से यदि कोई व्यक्ति ब्रह्म की उपासना करे तो उसे परमेश्वर का पूरा बोध नहीं होता। मनुष्य लोक में जन्म लेकर वह तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा से सम्पन्न होकर महिमा की अनुभूति करता है। **(स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति।)**

ऋषि पिप्पलाद बतलाते हैं– साधक यदि द्विमात्र (अ, उ) ओङ्कार का मन में ध्यान करे तो मानस कर्म की प्रधानता वाले चन्द्रादि लोकों में मानस सुख की अनुभूति करता है। **(स अन्तरिक्षं यजुर्भिः उन्नीयते सोमलोकम्)** सोमलोक की विभूतियों की अनुभूति के बाद फिर इस लोक में वापस आता है **(स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्त्तते।)**

ऋषि आगे बतलाते हैं जो साधक सब कालों में मन वाणी-कर्म से 'अ उ म्' त्रिमात्र ओम् से परम पुरुष ब्रह्म की उपासना करता है, तब वह जैसे सांप, केंचुली छोड़ देता है। उसी प्रकार वह सूर्य लोक में पहुंचता है। ऐसा जीवन-मुक्त व्यक्ति सूर्य की ज्योति के समान जगमगाता है और साम के सहारे ऊपर ब्रह्मलोक में पहुंच जाता है **(स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः। यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते। ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीव घनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते।)**

इस प्रकार बतलाया जा चुका है– 'एकमात्र' ओङ्कार का अर्थ है, ओङ्कार की कुछ-कुछ उपासना- 'द्विमात्र' का अर्थ है–पर्याप्त रूप में ओङ्कार की आराधना करना और 'त्रिमात्र' का अर्थ हुआ कि ओङ्कार की उपासना में ही निमग्न हो जाना। पृथिवी, सोम तथा सूर्य लोकों की चर्चा मानसिक स्थितियों में क्रमिक उन्नयन की स्थिति अभिव्यक्त करती है। पृथिवी लोक का तात्पर्य है– भौतिक सुखों की प्राप्ति, सोमलोक का तात्पर्य हुआ, व्यक्ति को मानसिक शान्ति मिल गई और सूर्यलोक का अभिप्राय हुआ कि व्यक्ति में आध्यात्मिक ज्योति प्रज्वलित हो गई। ओङ्कार की तीनों मात्राएं एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। अ-उ-म् की तीनों मात्राएं मरणधर्मा हैं। **(तिस्रः मात्राः मृत्युमत्यः प्रयुक्ताः)** इनके ठीक प्रयोग से साधक का मायामोह मर जाता है। आत्मा के एक पार्श्व में संसार है दूसरी ओर पर ब्रह्म है। इस अवस्था में मानव कई बार ब्रह्म को भूल जाता है। संसार के मायामोह में फंस जाता है। यदि यह अवस्था पलट दी जाए तो साधक संसार को भूल कर ब्रह्म में लीन हो जाता है। ऋषि ने बतलाया है–तीनों मात्राएं एक साथ हों–एक दूसरे से मिली होनी चाहिए, वे अलग-अलग न हों

(**अन्योन्यसक्ताः अनविप्रमुक्ताः**) मात्राओं का प्रयोग स्पष्ट करने के लिए बाह्य, आभ्यन्तर-मध्यम क्रिया जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं के क्रमशः उन्नयन से योगी पुरुष का मन भटकता नहीं, योगाभ्यास से संयुक्त करता है । (**क्रियासु बाह्य-आभ्यन्तर-मध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः।**)

ऋषि पिप्पलाद जिज्ञासु को बतलाते हैं–ऋग्वेद की ऋचाओं से उपासक पृथिवी में विद्यमान भोग-ऐश्वर्य प्राप्त कर सकता है । यजुर्वेद के मन्त्रों से चन्द्रलोक की सौम्यता प्राप्त कर सकता है । आप्तजनों की मान्यता है कि सामगान से उपासक सूर्य लोक का तेज उपलब्ध कर सकता है । इस प्रकार 'त्रिमात्र' ओङ्कार की उपासना के माध्यम से परात्पर शान्त, अजर, अभय-ब्रह्मलोक को प्राप्त कर सकता है। सम्बन्धित मन्त्र इस प्रकार है–

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते । तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति।।७।।

इस प्रकार पिप्पलाद ऋषि ने बतलाया कि एकमात्र और द्विमात्र ओङ्कार की उपासना से उतना लाभ नहीं होता जितना त्रिमात्र ओङ्कार का ध्यान-जीवन भर ओङ्कार की लगन से । ओङ्कार की जीवन पर्यन्त उपासना से संसार का सुख ऐश्वर्य तो मिलता ही है, मानसिक शान्ति और दिव्य आध्यात्मिक ऐश्वर्य, तेज की उपलब्धि हो जाती है ।

सोलह कलाओं वाला पुरुष कौन ?

अभी तक पांच जिज्ञासुओं की पांच जिज्ञासाओं की चर्चा की जा चुकी है । **जिज्ञासु कबन्धी** ने जिज्ञासा की थी कि सृष्टि किससे उत्पन्न हुई । ऋषि पिप्पलाद ने प्राण और रयि के द्वित्व की चर्चा की। **दूसरे जिज्ञासु भृगुगोत्री वैदर्भि** ने जिज्ञासा की कि सृष्टि कौन धारण करता है? ऋषि पिप्पलाद ने समाधान किया कि प्राण ही ब्रह्माण्ड और पिण्ड को धारण किए हुए है । **तीसरे जिज्ञासु कौशल्य आश्वलायन** ने जिज्ञासा की कि यह प्राण कहां से आता है और कहां रहता है ? ऋषि पिप्पलाद ने बतलाया जो उपासक प्राण की उत्पत्ति से अध्यात्म के रहस्य को जान लेता है । वह अमृतत्व का आस्वादन करता है । **चौथे जिज्ञासु सौर्यायणी** ने शारीरिक स्तर से ऊपर उठ कर मानसिक स्तर की चर्चा की । पिप्पलाद ने बतलाया कि पिण्ड ब्रह्माण्ड का आश्रयस्थल वही है । **पांचवें जिज्ञासु सत्यकाम** ने पूछा था ओङ्कार में ध्यान का क्या लाभ है? ऋषि पिप्पलाद ने पथ-प्रदर्शन किया था।

जीवन भर त्रिमात्र ओङ्कार की उपासना से सांसारिक सुख के साथ मानसिक शान्ति और तेज भी मिल सकता है ।

छठे जिज्ञासु भारद्वाज गोत्री सुकेश भारद्वाज ने पूछा–"भगवन्, हिरण्यनाभ नामक कौशल देश के राजकुमार ने मेरे से जिज्ञासा की थी– भारद्वाज, क्या तुम सोलह कलाओं वाले पुरुष को जानते हो? मैने उनसे निवेदन किया था, "मैं नहीं जानता, यदि जानता होता तो अवश्य बतलाता, इसलिए मैं असत्य बोलने में समर्थ नहीं हूं । मेरा उत्तर सुनकर राजकुमार चुपचाप रथ पर चढ़ कर चला गया । इसलिए आप मुझे बतलाइए वह सोलह कलाओं वाला पुरुष कहां है ?

ऋषि पिप्पलाद ने उत्तर दिया–'हे सौम्य, यहां शरीर के अन्दर ही वह पुरुष है, जिसमें ये सोलह कलाएं उत्पन्न होती हैं ।' सम्बद्ध ऋचा इस प्रकार है–

तस्मै स होवाच इहैवान्तःशरीरे सोम्य स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडश कलाः प्रभवन्तीति ॥२॥

जब इस शरीर में सोलह कलाएं पैदा होती हैं, तो ये कलाएं दीखती क्यों नहीं हैं, वे सोलह कलाएं कहां हैं ? इस कुतूहल का समाधान करते हुए ऋषि पिप्पलाद कहते हैं– 'ये सोलह कलाएं शरीर के भीतर ही हैं, ऋषि पिप्पलाद ने एक परीक्षा विधि बतलाई । शरीर के अंश रूप शरीर की जो कलाएं हैं उन्हें पृथक् कर देखते जाओ । जिस कला की सब से अधिक महत्ता होगी उसके निकलते ही अन्य अंश कलाएं भी निकलने लगेंगी और उसके प्रतिष्ठित होने पर दूसरी कलाएं शरीर अंश भी प्रतिष्ठित हो जाएंगे । सब से पहले प्राण पर परीक्षण किया गया। प्राण निकलने लगा तो अन्य सभी शारीरिक अंश कलाएं भी निकलने को बाध्य हो गईं और जब प्राण प्रतिष्ठित हो गया तो दूसरी सब कलाएं शारीरिक अंश भी प्रतिष्ठित हो गए । इस परीक्षण से पता चल गया कि प्राण-कला ही सर्वोत्तम है। सम्बद्ध ऋचा इस प्रकार है–

स ईक्षाञ्चक्रे । कस्मिन् अहमुत्क्रान्ते उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति ॥३॥

ऋषि पिप्पलाद ने बतलाया–"उसने प्राण का सृजन किया । प्राण का सृजन करने के बाद उसी ने श्रद्धा का सृजन किया, फिर क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, इन्द्रियां, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्मलोक और नाम आदि सोलह कलाएं या क्रम अंश क्रम से रचे ।' इन सोलह कलाओं में सम्पूर्ण जगत् आ जाता है। मन्त्र इस प्रकार है–

स प्राणमसृजत् प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियम्। मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्मलोकाः लोकेषु नाम च ॥४॥

ये सोलह कलाएं पिण्ड तथा ब्रह्माण्ड में दोनों में हैं । ऋषि बतलाते हैं–यद्यपि ये कलाएं भिन्न-भिन्न प्रतीत होती हैं तो भी जैसे भिन्न-भिन्न नदियां समुद्र में जाकर एक हो जाती हैं, वैसे ही जिस आत्मा या परमात्मा में जाकर भिन्न-भिन्न न रह कर एक हो जाती हैं । जैसे नदियों का पृथक् रूप नहीं रहता, पृथक् नाम रूप छिन्न-भिन्न होकर समुद्र रूप हो जाता है, उसी प्रकार सोलह कलाएं पृथक् नाम-रूप छोड़ कर एक पुरुष रह जाता है । (**स यथा इमाः नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्य अस्तं गच्छन्ति, भिद्येते तासां नामरूपे, समुद्र इति एव प्रोच्यते । एवम् एव अस्य परिद्रष्टुः षोडश कलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्य अस्तं गच्छन्ति । भिद्येते चासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते ।**)

ऋषि समुद्र में नदियों के एकाकार हो जाने पर दृष्टान्त देते हुए बतलाते हैं । इसी प्रकार रथ की नाभि में रथ के भिन्न-भिन्न अरे जुड़ जाते हैं (**अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन्प्रतिष्ठिताः ।**)

ऋषि पिप्पलाद ने छओं जिज्ञासुओं से कहा– ''मैं उसी परम ब्रह्म को जानता हूँ, उससे आगे कुछ नहीं है ।'' उन सभी जिज्ञासुओं ने ऋषि की अर्चना करते हुए कहा–''आप हमारे पिता हैं, जिन्होंने हमें अविद्या के अन्धकार से तार दिया । आप परम ऋषि हैं, आपको बार-बार नमस्कार है ।'' (**त्वं हि नः पिता, यः अस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयति, नमः परम ऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः।**)

इस प्रश्न उपनिषद् में ऋषि पिप्पलाद के पास छह जिज्ञासु अपनी-अपनी जिज्ञासा का समाधान करने के लिए पहुंचे । यह सृष्टि किससे उत्पन्न हुई, सृष्टि के मूल तत्त्व प्राण, रयि हैं । प्राण ही ब्रह्माण्ड और पिण्ड को धारण करता है । प्राण का रहस्य क्या है । पिण्ड और ब्रह्माण्ड में व्याप्त प्राण की साधना कैसे सम्भव है । त्रिमात्र ओङ्कार की सच्ची साधना से मानव भौतिक एवम् आध्यात्मिक सुख-शान्ति प्राप्त कर पृथक् नाम रूप छोड़ कर परम पुरुष में परम गति प्राप्त कर सकता है ।

☆ ☆ ☆

–नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

–अभ्युदय बी-२२, गुलमोहर पार्क, नई दिल्ली-११००४६

एक ही रास्ता

(प्रश्न अनेक—उत्तर एक)

मेरे एक मित्र ने कुछ प्रश्न किये—आज भाई-भाई से, पुत्र-पिता से, पति-पत्नी से क्यों अलग हो रहे हैं अथवा अलग होना चाहते हैं? एक जाति या सम्प्रदाय दूसरी जाति या सम्प्रदाय से क्यों नफरत करती है? एक प्रान्त दूसरे प्रान्त से अथवा एक देश दूसरे देश से द्वेष क्यों करते हैं? इन सब बातों का मूल कारण क्या है?

उपर्युक्त सभी प्रश्नों का मूल कारण एक ही है। जब से संसार के स्त्री-पुरुष वेद-ज्ञान रूपी सत्य-पथ से भटक गये हैं, तभी से यह विघटन, द्वेष अथवा अलग होने की भावनाएँ उत्पन्न हो गई हैं। तथा इन सब का एकमात्र समाधान भी यही है कि हम सभी समस्त संसार के निर्माता उस एक ही प्रभु की आज्ञा व शिक्षाओं—(जो चार वेदों के रूप में हैं) के अनुसार अपने आचरण में लाकर कर्त्तव्य कर्मों को निष्ठा के साथ करने लग जायें, तो समस्त संसार सुख, शान्ति एवम् आनन्द से परिपूर्ण हो जाएगा।

"**यस्य छाया अमृतम्।**"—यजुः० २५।१३

जिसकी 'छाया' अर्थात् आज्ञा व शिक्षा के अनुसार आचरण करने, कर्म करने से ही अमृत के समान समस्त सुख प्राप्त होते हैं।

परिवारों की समस्त समस्याएँ निम्न वेद मन्त्रों के अनुसार आचरण, व्यवहार करने से हल हो जायेंगी।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥

पुत्र पिता का आज्ञाकारी हो, माता में श्रद्धा रक्खे। पत्नी मधुरभाषिणी होवे, पति शान्त और मधुर व्यक्तित्ववाला हो।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रताः भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥

भाई-भाई के साथ, बहिन-बहिन के साथ तथा भाई-बहिन परस्पर द्वेष न करें। आपस में सदा ही सुखदायक, कल्याणकारी वाणी बोलें।

निम्न मन्त्र में वेदमाता प्रत्येक गृहस्थ को सात मर्यादाओं का पालन करने का आदेश दे रही है, जिसका पालन करने से हमारे घर-परिवार स्वर्गधाम बन सकते हैं।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट, संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत, सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि॥

—अथर्व० ३।३०।५

१. ज्यायस्वन्तः—बड़ों का मान-आदर करनेवाले बनो।

२. चित्तिनः—जो भी काम करो बहुत समझदारी से निष्ठापूर्वक करो।

३. मा वियौष्ट—एक दूसरे से कभी रुष्ट मत होओ, अलग मत होओ।

४. सं राधयन्तः—परस्पर सहयोग करते हुए, एक दूसरे की उन्नति में लगे रहो।

५. सधुराः चरन्तः—सब धुरी में जुड़े रहो। सब मिलकर परिश्रम करो। कोई खाली न बैठे।

६. अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत—एक दूसरे के प्रति वल्गु—सत्य, प्रिय और मधुरभाषण करते हुए व्यवहार करो।

७. सध्रीचीनान्—सहगामी-अनुकूलता के साथ व्यवहार करनेवाले बनो।

सामाजिक संगठन के लिए

सं गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते॥

—१०।१९१।२

प्रेम से मिलकर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो।
पूर्वजों की भाँति तुम कर्त्तव्य के मानी बनो॥

समानी व आकूतीः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

—ऋ० १०।१९१।४

हों सभी के मन तथा सङ्कल्प अविरोधी सदा।
मन भरे हों प्रेम से जिससे बढ़े सुख सम्पदा॥

समाज, राष्ट्र एवं विश्व से ऊँच-नीच, छोटे-बड़े का भेद-भाव दूर करने के लिए—

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः॥

—ऋ० ५।६०।५

(एते भ्रातरो) ये सब भाई-भाई हैं, (अ-ज्येष्ठासः अ-कनिष्ठासः) न कोई बड़ा है और न कोई छोटा है, (सौभगाय सं वावृधुः) सौभाग्य के लिए परस्पर मिलकर

उन्नति करो (युवा सु-अपा-रुद्रः) युवा, सुकर्मा, सुदृढ़ राष्ट्र (एषाम्-पिता) इनका पिता है। (सुदुघा-पृश्निः) सु-दुहा मातृभूमि (मरुद्भ्यः सु-दिना) सब नागरिकों के लिए सु-दिनों का दोहन करनेवाली है।

राष्ट्र सब का पिता है, भूमि सब की माता है। सब सहोदर हैं, सगे भाई हैं, न कोई छोटा, न कोई बड़ा, न कोई ऊँचा और न कोई नीचा है। सब एक ही माता-पिता की सन्तान हैं। सब (चारों वर्ण) आपस में मिलकर एक होकर अपने पितृराष्ट्र और अपनी मातृभूमि की सेवा और उन्नति करें।

विश्व-बन्धुत्व की भावना जगाने के लिए

"शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः।"—य० ११।५

ऐ संसार के मानवो! तुम सब एक ही भगवान् (अमृत) की सन्तान हो, वह अजर है, अमर है। एक ही पिता के पुत्र-पुत्री होने से तुम भाई-भाई और बहन-बहन हो।

"इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। अपघ्नन्तो अराव्णः॥

—ऋ० ९।६३।५

(विश्वम् आर्यम् कृण्वन्तः) विश्व को आर्य बनाते हुए, (इन्द्रं वर्धन्तः) आत्मा को बढ़ाते हुए (अप्-तुरः) त्वरा के साथ कर्म साधनाओं को करते हुए, (अराव्णः अपघ्नन्तः) कृपणताओं को दूर भगाते हुए हमें विश्व में विचरना है।

'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।' कितना सुन्दर घोष है। हम इस भूमण्डल के समस्त मानवों को आर्य बनायें। आर्य उसे कहते हैं—जिसके विचार, आचार, आहार और व्यवहार ये चारों शुद्ध हों। अंग्रेज आर्य हो सकता है, रूसी आर्य हो सकता है, अमेरिकन आर्य हो सकता है, ईरानी, जापानी, चीनी सब आर्य हो सकते हैं। वेद के अनुसार संसार में दो प्रकार के ही मानव हैं—(१) आर्य (२) अनार्य। जो असंयमी, दुराचारी हैं वे अनार्य हैं।

अब अगले मन्त्र में वेदमाता संसार के समस्त मानवों का एक ही धर्म बतला रही है—**'मनुर्भव।'**

तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्।
अनुल्वणं वयत जोगुवाम् अपो वयत मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्॥

—ऋ० १०।५३।६

(रजसः तन्तुम् तन्वन्) लोक के ताने को तानता हुआ (भानुम् अनु इहि) सूर्य का अनुगमन कर। (धिया कृतान्) बुद्धि द्वारा कृत (ज्योतिष्मतः पथो रक्ष) ज्योतिर्मय पथों की रक्षा कर। (जोगुवाम् अन-उल्वणं अपः वयत) उपदेष्टाओं के

सार्थक कर्मों को कर। (मनुः भव) मननशील बन। (दैव्यं जनम् जनय) दिव्य जन (पुत्र/पुत्री) को जन्म दे।

संसार के सम्पूर्ण मानवों (स्त्री/पुरुषों) को जीवन सफल बनाने के लिए इस मन्त्र में मननशील, सोच समझकर काम करनेवाला बनने का तथा स्वयं दिव्य गुणों से युक्त होकर श्रेष्ठ गुणों से युक्त सन्तान को जन्म देने का आदेश दिया है।

एक ही परम पिता की सन्तानें होने से हम सभी संसार के मानवों का एक ही धर्म है और वह है 'मानव धर्म।' मानव धर्म की कसौटी महर्षि व्यास जी ने इस प्रकार बतलाई है—'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषाम् न समाचरेत्।' अर्थात् जो काम हम दूसरों से अपने लिए नहीं चाहते, वैसा हम भी दूसरों के प्रति न करें। राजर्षि मनु ने समस्त संसार के मानवों को धर्म के निम्न दस लक्षणों को धारण करने के लिए कहा है—

धृतिः क्षमा दमो अस्तेयं शौचम् इन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यम् अक्रोधो दशकम् धर्मलक्षणम्॥

आज का मानव ऋषियों एवं परमात्मा के आदेशों/शिक्षाओं की अवहेलना करके दानव बनकर समस्त संसार को सर्वनाश के मार्ग पर ले जा रहा है। प्रभु की सर्वश्रेष्ठ रचना 'अमृतपुत्र' जिसे देवता/फरिश्ते भी नमन करते थे, आज अमृत की तलाश में अशान्त होकर भटक रहा है।

आज संसार में कोई ईसाई बनने पर बल दे रहा है, कोई मुसलमान बनने पर तो कोई बौद्ध, जैन या सिक्ख बनने पर बल दे रहा है। आज किसी से पूछें 'आप कौन हैं' तो उत्तर मिलेगा 'मैं ईसाई हूँ' 'मैं मुसलमान हूँ' 'मैं सिक्ख हूँ' अथवा कोई कहेगा 'मैं अमेरिकन हूँ', 'मैं जर्मन हूँ', 'मैं जापानी हूँ', अथवा कोई कहेगा। 'मैं काँग्रेसी हूँ' 'मैं साम्यवादी हूँ', 'मैं समाजवादी हूँ। यह कहते कोई नहीं मिलेगा 'मैं मानव हूँ' या 'मैं इन्सान हूँ।'

मनुष्य यदि सचमुच इन्सान बन जाये तो संसार के सारे उपद्रव, कष्ट व समस्याएँ दूर होकर सारा संसार एक ही परिवार ''वसुधैव कुटुम्बकम्' बन जाये।

किसी कवि ने कितना सुन्दर कहा है—

आदमी आदमी जो बन जाये।
कष्ट सारे जहाँ का मिट जाये॥
खुदा तो मिलता है, इन्सान ही नहीं मिलता।
ये चीज़ वह है कि देखी कहीं-कहीं मैंने॥

—कृष्णऔतार, बढ़ापुर (बिजनौर)

साहित्य समीक्षा

आदि शंकराचार्य वेदान्ती नहीं थे

लेखक : **स्वामी विद्यानन्द सरस्वती**

प्रकाशक : **विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द**
नई सड़क, दिल्ली

मूल्य : **४० रुपये**

स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के ११ वें समुल्लास मे शंकराचार्य प्रतिपादित अद्वैत वेदान्त की समीक्षा करते हुए यह लिखा है कि यदि शंकर ने जैन, बौद्ध आदि अवैदिक नास्तिक मतों के खण्डन के उद्देश्य से ब्रह्मैक्यवाद का प्रतिपादन किया तब तो इसे कुछ अच्छा कहा जा सकता है अन्यथा उन्होंने जीव-ब्रह्म की एकता तथा प्रकृति के मिथ्यात्व का निरूपणा करने वाले शाङ्कर अद्वैत का खण्डन ही किया है। ऋषि के इसी कथन से प्रेरणा लेकर दर्शनों के श्रेष्ठ विद्वान् स्वामी विद्यानन्द सरस्वती ने प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की है। यह भी ध्यान देनं की बात है कि स्वामी दयानन्द के शंकर विषयक विचार पर्याप्त प्रशंसा वाले हैं। स्वामी विद्यानन्द जी का विचार है कि जैन बौद्धादि के निराकरण के लिए शंकर ने 'जल्प' का सहारा लेकर ही अपने दार्शनिक मत का उपपादन किया, अन्यथा उनके प्रस्थानत्रयी भाष्य में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनसे जीवेश्वर भेद तथा उपादान कारण-प्रकृति की यथार्थता का संकेत मिलता है।

स्वकथन की पुष्टि के लिए विद्वान् लेखक ने वेदान्तदर्शन के १८ सूत्रों के शांकर भाष्य को उद्धृत कर सोपपत्तिक सिद्ध किया है कि ये सभी सूत्र तथा इन पर लिखा आचार्यपाद का भाष्य जीव एवम् ईश्वर की पृथक्ता को ही सिद्ध करता है। यों तो शंकर स्वयं भी मानते हैं कि व्यवहार दृष्टि से जीव एवम् ईश्वर में पृथक्ता है किन्तु वे इस भेद को अविद्याजन्य, मायोपाधि के कारण उत्पन्न हुआ मानते हैं। ध्यातव्य यह है कि आचार्य बादरायण के जिन सूत्रों पर शंकर ने भाष्य किया है वे सूत्र मूल रूप में कहीं यह संकेत नहीं देते कि जीवेश्वर भेद का कारण अविद्या या माया है। इसी प्रकार उपनिषदों तथा गीता के भी शंकरकृत व्याख्यान को आधार बना कर स्वामी विद्यानन्द जी ने आचार्य को भेदवादी सिद्ध किया है। शंकर ने तो अपने विवेचन का आधार ही व्यवहारवादी और पारमार्थिक दो प्रकार की दृष्टियां को बनाया है।

व्यवहार में वे उन सभी बातों को स्वीकार करते हैं जिन्हें द्वैतवादी या आर्यसमाज के समान त्रैतवादी दार्शनिक यथार्थ मानते हैं । झगड़ा इसी बात को लेकर है कि सब कुछ साफ-साफ लिख देने के पश्चात् शंकर पुन: इसी बात का राग अलापने लगते हैं कि यह जगत्, यह सृष्टि, यह भक्ति, उपासना, यज्ञादि कर्म सब कुछ व्यावहारिक दृष्टि से ठीक हैं किन्तु परमार्थत: तो एक अद्वितीय, निर्लेप ब्रह्म ही सत्य है । जो भेद या विविधता दिखाई देती है वह सब माया जन्य ही है । इस प्रकार शंकर का सारा चिन्तन ही वदतोव्याघातदोष से दूषित सिद्ध हो जाता है । स्वामी विद्यानन्द जी ने अद्वैत वेदान्त के निराकरण में तत्त्वमसि, द्वैतसिद्धि, अनादि तत्त्वदर्शन आदि अन्य भी महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं । प्रस्तुत ग्रन्थ भी उनका इसी श्रृंखला की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है । दर्शन शास्त्र के अध्येताओं में इस ग्रन्थ का प्रचार होना चाहिए ।

—डा. भवानीलाल भारतीय

सूचना

स्वामी जगदीश्वरानन्द जी 1 मार्च 1995 से नवनिर्मित आश्रम में जा रहे हैं । उनका नया पता है— वेद मन्दिर, लेखराम नगर (इब्राहिमपुर), दिल्ली-36

12 मार्च 1995 को नये भवन का उद्घाटन हो रहा है । इस अवसर पर स्वामी जी वेदप्रकाश के सभी सदस्यों तथा पाठकों को आमन्त्रित कर रहे हैं । भारी संख्या में पहुँचें ।

आश्रम बनवाने में स्वामी जी पिछले दो महीनों में व्यस्त रहे । इसी कारण 'मूल वेद-प्रकाशन-योजना' तथा 'स्वामी दर्शनानन्द-ग्रन्थ-संग्रह योजना' के कार्य में विलम्ब हुआ । परन्तु मार्च से स्वामी जी जोर-शोर से इस कार्य में लगेंगे तथा शीघ्र ही दोनों योजनाएं पूरी की जाएंगी ।

आचार्य उदयवीर शास्त्री ग्रन्थावली

(पृष्ठ संख्या ७००० के लगभग डिमाई आकार में)

ग्रन्थावली में सम्मिलित ग्यारह ग्रन्थ

१.	न्यायदर्शन भाष्य	१५०-००
२.	वैशेषिकदर्शन भाष्य	१२५-००
३.	सांख्यदर्शन भाष्य	१००-००
४.	योगदर्शन भाष्य	१२५-००
५.	वेदान्तदर्शन भाष्य (ब्रह्मसूत्र)	१८०-००
६.	मीमांसादर्शन का विद्योदय भाष्य	३५०-००
७.	सांख्यदर्शन का इतिहास	२५०-००
८.	सांख्य सिद्धान्त	२००-००
९.	वेदान्तदर्शन का इतिहास	२००-००
१०.	प्राचीन सांख्य सन्दर्भ	१००-००
११.	वीर तरंगिणी (लेखों का संग्रह)	२५०-००

फार्म ४

(देखिए नियम ८-बी)

प्रकाशन का स्थान दिल्ली

प्रकाशन की अवधि मासिक

मुद्रक का नाम अजय कुमार

क्या भारत का नागरिक है ? हाँ

पता ४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६

प्रकाशक का नाम, पता आदि उपरलिखित

सम्पादक का नाम, पता आदि उपरलिखित

मैं अजयकुमार एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिल्ली,
१-३-९५

अजयकुमार
प्रकाशक के हस्ताक्षर

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-प्रदायिनी
महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती की
सरल-सुबोध आध्यात्मिक पुस्तकें

आनन्द गायत्री कथा	१२-००
एक ही रास्ता	१२-००
शंकर और दयानन्द	८-००
मानव जीवन-गाथा	१३-००
सत्यनारायण व्रत कथा	५-००
भक्त और भगवान	१२-००
उपनिषदों का सन्देश	१६-००
घोर घने जंगल में	२०-००
मानव और मानवता	३०-००
प्रभु मिलन की राह	२०-००
यह धन किसका है ?	२०-००
वोध-कथाएँ	१६-००
दो रास्ते	१५-००
दुनिया में रहना किस तरह ?	१५-००
तत्वज्ञान	२०-००
प्रभु-दर्शन	१५-००
प्रभु-भक्ति	१२-००
महामन्त्र	१२-००
सुखी गृहस्थ	६-००
त्यागमयी देवियाँ	८-००

अंग्रेजी पुस्तकें

Anand Gayatry Katha	30-00
The Only Way	30-00
Bodh Kathayen	40-00
How To Lead Life?	30-00

जीवनी

महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)	१०-००
महात्मा आनन्द स्वामी (हिन्दी)	२५-००

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती कृत
विद्वत्तापूर्ण पुस्तकें

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००-००
वाल्मीकि रामायण	१७५-००
षड्दर्शनम्	१५०-००
चाणक्यनीति दर्पण	६०-००
विदुरनीतिः	४०-००
ब्रह्मचर्य गौरव	९-००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	९-००
दिव्य दयानन्द	१२-००
कुछ करो कुछ बनो	१२-००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१२-००
आदर्श परिवार	१५-००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	१५-००
वेद सौरभ	१२-००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५-००
वैदिक विवाह पद्धति	८-००
ऋग्वेद सूक्ति सुधा	२५-००
यजुर्वेद सूक्ति सुधा	१२-००
अथर्ववेद सूक्ति सुधा	१५-००
सामवेद सूक्ति सुधा	१२-००
ऋग्वेद शतकम्	८-००
यजुर्वेद शतकम्	८-००
सामवेद शतकम्	८-००
अथर्ववेद शतकम्	८-००
भक्ति संगीत शतकम्	६-००
चमत्कारी ओषधियाँ	१२-००
घरेलू ओषधियाँ	१२-००
चतुर्वेद शतकम् (सजिल्द)	५०-००
स्वर्ण पथ	१२-००
प्रार्थना लोक	४०.००
प्रार्थना-प्रकाश	८.००
प्रभात-वन्दन	८.००
शिवसंकल्प	८.००

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

आदि शंकराचार्य वेदान्ती नहीं थे	स्वामी विद्यानन्द सरस्वती	४०-००
वेद-मीमांसा	स्वामी विद्यानन्द सरस्वती	५०-००
सृष्टि विज्ञान और विकासवाद	स्वामी विद्यानन्द सरस्वती	४०-००
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	१५०-००
दयानन्द जीवन चरित	लेखक : देवेन्द्र मुखोपाध्याय अनु० : पं० घासीराम	२५०-००
शतपथब्राह्मण (तीन खण्ड)	अनु० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	१८००-००
महात्मा हंसराज (जीवनी)	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	६०-००
महात्मा हंसराज ग्रन्थावली (चार खण्ड)	लेखक-सम्पादक प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	२४०-००
आर्य सूक्ति सुधा	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	१२-००
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (ग्यारह खण्ड)	ले० सं० डॉ० भवानीलाल भारतीय तथा प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु	६६०-००
चयनिका	क्षितीश वेदालंकार	१२५-००
वैदिक मधुवृष्टि	पं० रामनाथ वेदालंकार	६०-००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	आ० प्रियव्रत वेदवाचस्पति	५०-००
महाभारत सूक्तिसुधा	पं० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण	४०-००
श्यामजी कृष्ण वर्मा	डॉ० भवानीलाल भारतीय	२४-००
आर्यसमाज विषयक साहित्य परिचय	डॉ० भवानीलाल भारतीय	२५-००
कल्याणमार्ग का पथिक (स्वामी श्रद्धानन्द की जीवनी)	डॉ० भवानीलाल भारतीय	प्रेस में
आर्यसमाज के बीस बलिदानी	डॉ० भवानीलाल भारतीय	१५-००
धर्म का स्वरूप	डॉ० प्रशान्त वेदालंकार	५०-००
ऋषि बोध कथा	स्वामी वेदानन्द सरस्वती	१०-००
वैदिक धर्म	स्वामी वेदानन्द सरस्वती	२५-००
ईश्वर का स्वरूप	सुरेशचन्द्र वेदालंकार	प्रेस में
सहेलियों की वार्ता	सुरेशचन्द्र वेदालंकार	२०-००
सन्ध्या रहस्य	पं० विश्वनाथ विद्यालंकार	२५-००
आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो ?	प्रो० रामविचार एम० ए०	४-००
वैदिक धर्म का संक्षिप्त परिचय	ओम्प्रकाश त्यागी	६-००
पूर्व और पश्चिम	नित्यानन्द पटेल	३५-००
सन्ध्या विनय	नित्यानन्द पटेल	६-००
गीत सागर	पं० नन्दलाल वानप्रस्थी	२५-००
वेद भगवान बोले	पं० वा० विष्णुदयाल (मारीशस)	१५-००
हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष	पं० नरेन्द्र	१५-००
आचार्य शंकर का काल	आ० उदयवीर शास्त्री	१०-००

याज्ञिक आचार-संहिता	*पं० वीरसेन वेदश्रमी*	४५-००
प्राणायाम विधि	*महात्मा नारायण स्वामी*	२-००
प्रेरक बोध कथाएँ	*नरेन्द्र विद्यावाचस्पति*	१५-००
ओंकार गायत्री शतकम्	*कवि कस्तूरचन्द*	३-००
जीवात्मा	*पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय*	४०.००
सन्ध्या : क्या, क्यों, कैसे	*पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय*	१५-००
विवाह और विवाहित जीवन	*पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय*	१८-००
जीवन गीत	*धर्मजित् जिज्ञासु*	१२-००
पंचमहायज्ञविधि	*महर्षि दयानन्द*	३-००
व्यवहारभानु	*महर्षि दयानन्द*	४-००
आर्योद्देश्यरत्नमाला	*महर्षि दयानन्द*	१-५०
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	*महर्षि दयानन्द*	१-५०
ब्रह्मचर्यसन्देश	*सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार*	२५-००
श्रीमद्भगवद्गीता	*पं० सत्यपाल विद्यालंकार*	१५-००

WORKS OF SVAMI SATYAPRAKASH SARASVATI

Founders of Sciences in Ancient India (Two Vols.)	500-00
Coinage in Ancient India (Two Vols.)	600-00
Geometry in Ancient India	350-00
Brahmgupta and His Works	350-00
God and His Divine Love	5-00
The Critical and Cultural Study of Satapath Brahman	In Press
Speeches, Writings & Addresses Vol.I : VINCITVERITAS	150-00
Speeches Writings & Addresses Vol.II : ARYA SAMAJ; A RENAISSANCE	150-00
Speeches, Writings & Addresses Vol. III : DAYANAND ; A PHILOSOPHER	150-00
Speeches, Writings & Addresses Vol. IV THREE LIFE HAZARDS	150-00

कर्म काण्ड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका	३-००
पंचयज्ञ प्रकाशिका	८-००
वैदिक संध्या	१-००
सामाजिक पद्धतियाँ (मदनजीत आर्य)	१२-००
संध्या-हवन-दर्पण (उर्दू)	८-०
सत्संग मंजरी	६-०
Vedic Prayer	3-(

मार्च १९९५

घर का वैद्य

जब प्रकृति की अनमोल दवाइयाँ आपको आसानी से उपलब्ध हों तो गोली, पुड़िया, कैप्सूल या इन्जेक्शन की क्या जरूरत है ?

घर का वैद्य—प्याज	७-००	घर का वैद्य—हल्दी	७-००
घर का वैद्य—लहसुन	७-००	घर का वैद्य—बरगद	७-००
घर का वैद्य—गन्ना	७-००	घर का वैद्य—दूध-घी	७-००
घर का वैद्य—नीम	७-००	घर का वैद्य—दही-मट्ठा	७-००
घर का वैद्य—सिरस	७-००	घर का वैद्य—हींग	७-००
घर का वैद्य—तुलसी	७-००	घर का वैद्य—नमक	७-००
घर का वैद्य—आँवला	७-००	घर का वैद्य—बेल	७-००
घर का वैद्य—नींबू	७-००	घर का वैद्य—शहद	७-००
घर का वैद्य—पीपल	७-००	घर का वैद्य—फिटकरी	७-००
घर का वैद्य—आक	७-००	घर का वैद्य—साग-भाजी	७-००
घर का वैद्य—गाजर	७-००	घर का वैद्य—अनाज	७-००
घर का वैद्य—मूली	७-००	घर का वैद्य—फल-फूल	७-००
घर का वैद्य—अदरक	७-००	घर का वैद्य—धूप-पानी	१५-००

सभी छब्बीस पुस्तकें छः आकर्षक जिल्दों में भी उपलब्ध

घर का वैद्य-१ (प्याज, लहसुन, गन्ना, नीम, सिरस)	४५-००
घर का वैद्य-२ (तुलसी, आँवला, नींबू, पीपल, आक)	४५-००
घर का वैद्य-३ (गाजर, मूली, अदरक, हल्दी, बरगद)	४५-००
घर का वैद्य-४ (दूध-घी, दही-मट्ठा, हींग, नमक, बेल)	४५-००
घर का वैद्य-५ (शहद, अनाज, फिटकरी, साग-भाजी, फल-फूल)	४५-००
घर का वैद्य—धूप-पानी	४०-००

चित्र

स्वामी दयानन्द (झण्डेवाला)	१६" × २२" बहुरंगी	६-००
स्वामी दयानन्द (कुर्सी)	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी दयानन्द (आसन)	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी श्रद्धानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
गुरु विरजानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
पण्डित लेखराम	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी दर्शनानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
पं० गुरुदत विद्यार्थी	१८" × २२" एक रंग	३-००
महात्मा हंसराज	१८" × २२" एक रंग	३-००

बाल साहित्य

आर्य नेताओं की बालोपयोगी जीवनियाँ

महर्षि दयानन्द	*त्रिलोकचन्द विशारद*	४-५०
गुरु विरजानन्द	*त्रिलोकचन्द विशारद*	४-५०
स्वामी श्रद्धानन्द	*त्रिलोकचन्द विशारद*	४-५०
धर्मवीर पं० लेखराम	*त्रिलोकचन्द विशारद*	३-००
मुनिवर पं० गुरुदत्त	*त्रिलोकचन्द विशारद*	३-००
स्वामी दर्शनानन्द	*सत्यभूषण वेदालंकार*	३-००
महात्मा हंसराज	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	४-५०
वीतराग सेनानी स्वामी स्वतन्त्रानन्द	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	४-५०
तपोधन महात्मा नारायण स्वामी	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	५-५०
देवतास्वरूप भाई परमानन्द	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	५-५०
नैतिक शिक्षा—प्रथम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	२.५०
नैतिक शिक्षा—द्वितीय	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	२.५०
नैतिक शिक्षा—तृतीय	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	३.५०
नैतिक शिक्षा—चतुर्थ	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	४-५०
नैतिक शिक्षा—पंचम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	४.५०
नैतिक शिक्षा—षष्ठ	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	५.५०
नैतिक शिक्षा—सप्तम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	५.५०
नैतिक शिक्षा—अष्टम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	५.५०
नैतिक शिक्षा—नवम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	८००
नैतिक शिक्षा—दशम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	८००
ब्रह्मचर्य गौरव	*स्वामी जगदीश्वरानन्द*	९००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	*स्वामी जगदीश्वरानन्द*	९००
स्वर्ण पथ	*स्वामी जगीदश्वरानन्द*	१२००
आचार्य गौरव	*ब्र० नन्दकिशोर*	५००
त्यागमयी देवियाँ	*महात्मा आनन्द स्वामी*	८००
हमारे बालनायक	*सुनील शर्मा*	८००
देश के दुलारे	*सुनील शर्मा*	८००
हमारे कर्णधार	*सुनील शर्मा*	८००
आदर्श महिलाएँ	*नीरू शर्मा*	८००
कथा पच्चीसी	*स्वामी दर्शनानन्द*	८००
बाल शिक्षा	*स्वामी दर्शनानन्द*	२.५०
वैदिक शिष्टाचार	*हरिश्चन्द्र विद्यालंकार*	३००
दयानन्द चित्रावली	*पं० रामगोपाल विद्यालंकार*	२५००
आर्य सूक्ति सुधा	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	१२-००

साहित्य समीक्षा

आर्यसमाज के लब्ध प्रतिष्ठ प्रकाशक गोविन्दराम हासानन्द (अब नया नाम विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द) ने आर्य नेताओं, महात्माओं तथा विद्वानों के बालोपयोगी सरल शैली में लिखे जीवनचरित प्रकाशित करके पाठक वर्ग का असीम उपकार किया है। इसी शृंखला में कुछ जीवनचरित राजेन्द्र जिज्ञासु लिखित १९९४ में प्रकाशित हुए हैं।

वीतराग स्वामी स्वतन्त्रानन्द : लेखक प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु मूल्य : ४.५०
प्रकाशक : **गोविन्दराम हासानन्द** नई सड़क, दिल्ली-६।

स्वामी स्वतन्त्रानन्द के जीवन विषयक तथ्यों की खोज कर उनका समग्र एवं सर्वांगीण जीवनचरित लिखने का श्रेय प्रा० जिज्ञासु को ही है। आलोच्य पुस्तक एक लघु कृति है। जिसमें आर्यसमाज के इस योद्धा संन्यासी के जीवन की कुछ प्रमुख घटनाओं को सरल एवं रोचक शैली में प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थ के अन्त में उनके कतिपय उपदेशो, वचनों को प्रस्तुत करने से इसकी उपयोगिता में वृद्धि हुई है। आशा है आर्य महापुरुषों के जीवनचरित पढ़ने में रुचि लेने वाले पाठक इसे अपनायेंगे।

देवता स्वरूप भाई परमानन्द : लेखक तथा प्रकाशक पूर्ववत्। मूल्य: ५.५०

भाई परमानन्द देशभक्त, उच्च कोटि के राजनीतिज्ञ तथा देश हित के लिए सर्वस्व समर्पित करने वाले महापुरुष थे। खेद है कि वे गांधी की आंधी में नहीं बहे और पूर्वाग्रह युक्त दृष्टि रखने वाले इतिहासकारों ने उनके त्याग और बलिदान का समुचित मूल्यांकन नहीं किया। भाई जी मूलत: आर्यसमाजी थे। भाई जी के जीवनचरितों की संख्या अधिक नहीं है। इसलिए प्रा० जिज्ञासु द्वारा लिखित इस जीवनी से भाई जी के अनेक ज्ञात अज्ञात जीवन बिन्दुओं से पाठक मुखातिब होगा। वैदिक धर्म के संदेश को भारत से भिन्न देशों में प्रचारित करने वाले वे प्रथम आर्य उपदेशक थे। अनेक स्त्रोतों से प्राप्त प्रसंगों द्वारा पुस्तक को रोचक तथा ज्ञान वर्धक बनाया है। पृष्ठ १७ पर 'ठग्गी' शब्द का प्रयोग भाषा दृष्टि से चिन्त्य है। यहां 'ठगी' होना चाहिए था।

तपोधन महात्मा नारायण स्वामी : लेखक तथा प्रकाशक पूर्ववत्। मूल्य : ५.५०

आर्यसमाज में सक्षम और प्रभावशाली नेतृत्व महात्मा नारायण स्वामी तक आकर समाप्त हो गया। एक साधारण मनुष्य भी अपनी साधना, तपस्या, कर्मठता तथा लगन के द्वारा आर्यसमाज जैसे क्रान्तिकारी आन्दोलन का सर्वोच्च नेता बन सकता है, नारायण स्वामी जी का जीवन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। महात्मा जी ने अपनी आत्मकथा में स्वजीवन के महत्त्वपूर्ण प्रसंगों को बेबाकी के साथ प्रस्तुत किया था। किन्तु आत्मकथा के प्रकाशन के बाद के उनके जीवन को आधार बना कर उनके जीवन के समग्र क्रिया कलाप का संक्षिप्त इतिवृत्त आलोच्य पुस्तक में दिया गया है। महापुरुषों के जीवनचरित शाश्वत सत्य का उद्घाटन करते हैं अत: उन्हें निरपेक्ष ढंग से लिखा जाना चाहिए। इस दृष्टि से यदि इस पुस्तक में आर्यसमाज के किसी दल या संगठन की आलोचना नहीं भी रहती तब भी पुस्तक की उपयोगिता न्यून नहीं थी।

--डा० भवानीलाल भारतीय

हमारा १९९५ का बृहद् विशेषाङ्क :

दर्शनानन्द-ग्रन्थ-संग्रह

यह ग्रन्थ 'दयानन्द चरित' आकार में २०×३०/८ लगभग ६०० पृष्ठ का सजिल्द होगा।

स्वामी दर्शनानन्द जी ट्रैक्ट लिखने की मशीन थे। जीवन में बहुत ट्रैक्ट लिखे। सब उर्दू में लिखे। अनेक विद्वानों ने उनका हिन्दी अनुवाद किया।

इस ग्रन्थ-संग्रह में हम दर्शनानन्द जी के ६४ ट्रैक्ट दे रहे हैं। ईश्वर विचार, ईश्वरप्राप्ति, वेद, मुक्ति, जीव का अनादित्व, गुरुकुल, भोला यात्री, द्वैतवाद आदि अनेक विषयों पर अत्यन्त खोजपूर्ण सामग्री इस ग्रन्थ में पाठकों को मिलेगी।

इस ग्रन्थ का सम्पादन करेंगे आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान **स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती।**

जिन मन्त्रों, सूत्रों और श्लोकों के पते नहीं हैं, उन्हें खोजकर देने का स्वामी जी का भरसक प्रयत्न रहेगा। आधुनिक साज-सज्जा से सुभूषित कलापूर्ण मुद्रण होगा। बढ़िया कागज होगा। इस ग्रन्थरत्न का मूल्य २५० रुपये होगा। परन्तु वेद-प्रकाश के सदस्यों को केवल १५० में मिलेगा। इसमें एक वर्ष तक वेदप्रकाश भी निःशुल्क मिलता रहेगा। विशेषाङ्क को भेजने का खर्च भी हम स्वयं वहन करेंगे।

ऐसा भव्य और दिव्य ग्रन्थ पहली बार छप रहा है। हम स्वामी दर्शनानन्द जी का सच्चा श्राद्ध कर रहे हैं। आर्य साहित्य में यह एक ठोस वृद्धि होगी।

हमारा 'वेदप्रकाश' के सदस्यों और पाठकों से निवेदन है कि वे स्वयं ग्राहक बनें और अन्यों को बनायें।

शीघ्रता करें। ग्रन्थ सीमित संख्या में ही छपेगा।

यदि पाठकों ने उत्साह दिखाया तो इसका दूसरा भाग भी देने का प्रयत्न करेंगे। यह अप्रैल ९५ में पाठकों को मिलेगा।

'वेद की मूल संहिताओं' के प्रकाशन योजना के लिए कई आर्यसमाजों ने हमारा उत्साह बढ़ाया है और इस योजना के लिए भी आर्यसमाज आगे आयें तो बृहद् विशेषांक प्रकाशित करने की योजना को बल मिलेगा तथा भविष्य में और अधिक ठोस योजनाओं पर कार्य करने की शक्ति मिलेगी।

प्रकाशक-मुद्रक अजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेद प्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

प्रभो ! सुपथ पर चला

अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमऽउक्तिं विधेम ।।

—यजु० अ० ४० । मन्त्र १६

(अग्ने) हे सब को आगे ले जानेवाले ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आप कृपा करके (अस्मान्) हम लोगों को (राये) सांसारिक ऐश्वर्य और मोक्ष-प्राप्ति के लिए (सुपथा) उत्तम, धर्मयुक्त आप्त विद्वानों के मार्ग से (नय) चलाइए। (देव) हे सकल सुखदाता परमेश्वर ! आप हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) आचार और विचारों को (विद्वान्) जानते हैं, अतः (अस्मत्) हम से (जुहुराणम्) कुटिलतायुक्त (एनः) पाप को (युयोधि) दूर कीजिए। आपकी इस अपार कृपा और महान् दया के लिए हम (ते) तुझे (भूयिष्ठाम्) बहुत अधिक (नमः उक्तिम्) नम्र स्तुति (विधेम) समर्पित करते हैं।

जीवन का पथ अत्यन्त भयंकर, कण्टकाकीर्ण और ऊबड़-खाबड़ है। यहां पद-पद पर ठोकरें लगती हैं और मनुष्य गिर पड़ता है। मार्ग में दोराहों और चौराहों को देखकर पथभ्रष्ट हो जाता है। प्रभो ! आप अग्नि हैं। मनुष्य को अवनति के गढ़े में गिरने से बचाकर उसे सुमार्ग पर आगे ही आगे, उन्नति की ओर ले जानेवाले हैं। इस संसार में ईर्ष्या-द्वेषरूपी मछलियां हैं। काम, क्रोध, लोभ, अहंकाररूपी बड़े-बड़े मगर हैं। इस अगाध समुद्र को पार करने का मार्ग-प्रदर्शन आप ही कर सकते हैं।

—'प्रार्थनालोक' से

बोध-कथा

कभी गर्व न करो

एक बार देवों और असुरों में युद्ध हुआ। भीषण निर्णायक युद्ध में देव जीत गए, दानव पराजित हो गए। इस विजय के फलस्वरूप देवताओं को अभिमान हो गया। वे सोचने लगे, यह विजय हमारी अपनी शक्ति के कारण मिली है, फलतः यह सारी महिमा, यह सारी विजयश्री हमारी अपनी है। उन्होंने असुरों को पराजित किया, इसी के साथ अग्नि, वायु, इन्द्र-देवताओं में विवाद था कि उन में से शक्तिशाली कौन है ? ब्रह्म को अनुभूति हुई कि देवों का यह अहंकार ठीक नहीं है। फलतः तेज यक्ष का स्वरूप धारण कर देवताओं के सामने आ खड़ा हुआ। देवता पता लगाने लगे कि यह तेज कौन है ? उन्होंने उस से पूछा—आप कौन हैं? तेजस् रूपी यक्ष ने प्रत्युत्तर में पूछा—तुम कौन हो ? अग्नि ने उत्तर दिया—मैं हूँ अग्नि जातवेदस्—सब पदार्थों के भीतर रहने वाला, गर्मी के रूप में सब पर प्रभुत्व रखने वाला, इस पृथ्वी पर जो कुछ है, उसे मैं जलाकर भस्म कर सकता हूं। (सर्वं दहेयं यदिदं पृथिव्यामिति।)

उस तेज ने एक तिनका सामने रख दिया और कहा—जरा इसे तो जला। सारी शक्ति लगा कर अग्निदेव पराजित हो गया, पर उस तिनके को नहीं जला सका। तब वायुदेव आगे बढ़ा। तेजस् यक्ष ने पूछा—तू कौन है ? वायु ने कहा—मैं हूं वायु मातरिश्वा। आकाश में संचार करने वाला। अच्छा तुझ में क्या शक्ति है ? "इस पृथ्वी पर जो कुछ है, उसे मैं उड़ा सकता हूं।" (सर्वं आददीयम्, यदिदं पृथिव्यामिति।) उस यक्षरूपी तेज ने कहा—जरा इस तिनके को तो उड़ा। सारी शक्ति लगा कर वायु पराजित हो गया, पर उस तिनके को नहीं उड़ा सका।

तब देवगण इन्द्र की शरण में पहुंचे। इन्द्रदेव जब तेजरूपी यक्ष के सामने पहुंचा, तब वह अन्तर्धान हो गया, वह तिरोहित हो गया, उसके स्थान पर उमा प्रकट हुई।

इन्द्रदेव ने विनयपूर्वक पूछा - हे देवि, यह कौन था ? देवी उमा स्वस्त्या बुद्धि ने उत्तर दिया—हे इन्द्र वह तेज ब्रह्म था। उसी की सत्ता से यह सारा जगत् बना है, जो अनादि काल से चलता चल रहा है, यही वह ब्रह्म है। जगत् की सारी क्षमता, जगत् का सारा उत्कर्ष उसी का है, तुम लोगों को जो विजय मिली, वह तुम्हारी नहीं थी। ब्रह्म की क्षमता से ही वह विजय तुम्हें मिली थी और तुमने यह मान लिया कि तुम सब ने अपने पराक्रम से यह विजय प्राप्त की है। ब्रह्म ही सब कुछ करता है, हम सब तो निमित्त मात्र हैं।

सा ब्रह्म इति होवाच। ब्रह्मणो वै एतत् विजये महीयध्वमिति। "हे इन्द्र, जड़-चेतन की संसार में सारी विजय ब्रह्म की विजय है और उसी से तुम सब की महिमा है।

प्रस्तुति—**नरेन्द्र विद्यावाचस्पति**

ओ३म्

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ४४, अंक ९] वार्षिक मूल्य : बीस रुपये [अप्रैल १९९५

सम्पा० अजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वेदामृत

ओं अन्ति सन्तं न पश्यति, अन्ति सन्तं न जहाति।
पश्य देवस्य काव्यं, न ममार न जीर्य्यति॥

यह वेदमन्त्र है। कोई भी ऐसा नहीं है जो साक्षात् अथवा परम्परा-सम्बन्ध से ईश्वर का अनुभव ही न करता हो। सब चाहे लोक-व्यवहार के बतानेवाले हों, चाहे विज्ञान के, परन्तु सबको साक्षात् या परम्परा-सम्बन्ध से ध्येय परमेश्वर की प्राप्ति वेदमन्त्र बताएँगे। साक्षात् सम्बन्ध होता है—जैसे आपसे किसी ने पुस्तक माँगी। आपने उसको पुस्तक पकड़ा दी, यह तो हुआ आक्षात् सम्बन्ध। पुस्तक मैंने किसी को दी और उसने उसको दी, यह परम्परा-सम्बन्ध है। चाहे मुख्य रूप से, चाहे गौण रूप से, ईश्वर की ही स्तुति वेद करता है।

अन्ति सन्तं न पश्यति

अविद्या-ग्रस्त जो मनुष्य है वह परमात्मा के यद्यपि अत्यन्त निकट है फिर भी उसे नहीं देख सकता। एक तो यह बात, दूसरी बात यह है कि 'अन्ति सन्तं न जहाति' इसका इतना निकटतम सम्बन्ध है कि उससे अलग हो ही नहीं सकता। इसके बाद कहा—

देवस्य पश्य काव्यं, न ममार न जीर्यति

उस परमात्मा को जानने के लिए उस देव का जो काव्य है उसको देखो। उसका फल क्या होगा? न फिर मृत्यु का सम्बन्ध है न जीर्णता का। कारण यह है कि जरा-मृत्यु व्याधियाँ—ये सब संसार के मार्ग में हैं। संसार के मार्ग से पृथक् होने पर ये तीनों चीजें नहीं रहतीं फिर आत्मा के साथ उनका सम्बन्ध नहीं होता। संसार के मार्ग में कही गई उन वस्तुओं से पृथक् हो जावे तो वह उस सम्पूर्ण शक्ति को पहचान सकता है। इसका कारण यह है कि संसार के अन्दर हर एक चीज जो बनी हुई है उसका अवश्य ही कुछ-न-कुछ परिमाण है। कोई भी चीज़ ऐसी नहीं है जिसका कुछ

परिमाण न हो। संसार के अन्दर जितनी भी चीज़ें बनी हुई हैं वे सब परिवर्तनशील हैं। किसी फारसी के कवि ने कहा भी है—

"जमाना यक बजाबूदे अगर नमेयाफ फरजन्द ज़ाफर"।

अगर ज़माना एकरस रहनेवाला होता तो आज जो बच्चा है वह कल बाप नहीं होता। ज़माना बदलने पर छोटा बच्चा बाप की जगह ले-लेता है और बाप रवाना होता है। समय एकरस रहनेवाला नहीं, यह परिवर्तनशील संसार एकरस कभी नहीं रह सकता, एक-एक क्षण बीतने पर संसार बीत जाता है। इस परिवर्तन की अवस्था को १ अरब ९६ करोड़ वर्ष के करीब बीते हैं। दिन-रात के चक्कर में इतना लम्बा ज़माना बीत गया। दिन-रात तो मोटा परिवर्तन है। दिन और राज़ मिलाकर २४ घण्टे होते हैं। १ घण्टे के ६० मिनट होते हैं। १ मिनट के ६० सेकिण्ड होते हैं। सेकिण्ड से भी छोटा समय कालवित् पुरुष ने क्षण माना है। इस क्षण का कोई भी विभाग नहीं किया जा सकता। एक क्षण बीता दूसरा क्षण बीता और तीसरा क्षण भी बीत गया। इसी तरह क्षण-क्षण करते इस सृष्टि को १ अरब ९६ करोड़ वर्ष बीत गये। संस्कृत का एक-एक शब्द बहुत मतलब रखता है। समस्त संसार को क्षणभंगुर कहा गया है। एक-एक क्षण में भी इसका परिवर्तन होता जाता है। इसके नाम से ही इसका अर्थ भी मालूम हो जाता है। जैसे— भूगोल का नक्शा इस नाम के कहने के साथ ही यह भी सिद्ध कर दिया गया कि पृथिवी गोल है। सारी-की-सारी आयु इसी क्षण से ही बीती जाती है। मनुष्य का एक-एक क्षण परिवर्तनशील है। जो चीजें बनी हुई होती हैं उन सबमें परिवर्तन होता है। जो चीज बनी ही नहीं उसके अन्दर तो परिवर्तन की ताकत लग ही नहीं सकती। जैसे कणाद ऋषि ने कहा है—

नित्येष्वभावात् अनित्येषु भावात् कारणे कालाख्यः।

इसकी ताकत ज़ाहिर कहाँ है? नित्य में तो जाकर यह काल आप ही गुम हो जाता है। अनित्य में यह ज़ाहिर होता है, जो चीज पैदा नहीं हुई है उसपर काल की गति का असर नहीं होता। एक चीज़ पैदा हुई, उसको १० वर्ष बीत गये ऐसा कह सकते हैं। इसके अन्दर भूतकाल भी है, वर्त्तमानकाल भी और भविष्यकाल भी है। जो चीज़ पैदा नहीं होती वह अनादि सिद्ध ही है। नित्य पदार्थों में काल का अभाव रहता है और अनित्य में काल का भाव।

भाइयो! संसार के अन्दर जो कोई चीज़ बनी है वह काल के प्रभाव से ही बनी है। बिना काल की सहायता से कोई चीज़ नहीं बन सकती। इससे काल की महत्ता प्रकट है। संसार में जिसने पहचान लिया कि समय एक अमूल्य वस्तु है, उसने समय को व्यर्थ नहीं खोया। जिसने समय के महत्त्व को नहीं समझा उसने समय को व्यर्थ खो दिया, परन्तु समय तो

बीतता ही चला गया, समय ठहर नहीं सकता। जैसे एक बच्चा १८ वर्ष का हो गया और उसने बी.एससी. पास कर लिया और जिसने नहीं पढ़ा वह भी १८ वर्ष की आयु का तो हो ही गया, उसकी लापरवाही से उसमें फल नहीं आया, परन्तु जिसने बी.एससी. की पढ़ाई की तो उसको फल की प्राप्ति हो गई। समय दोनों का बीता। इसका मतलब यह है कि समय की कीमत को पहचानना चाहिए।

'समय एव करोति बलाबलम्'।

समय ही मनुष्य को बलवान् और निर्बल कर देता है। जिसने खेलने-कूदने में ही समय बिता दिया, समय का महत्त्व नहीं समझा तो वह दुर्वल हो जाता है। अगर समय को समझ लेगा तो वह बलवान् हो जाएगा। समय तो दोनों का ही बीतता है, किसी का नहीं ठहरता। इसलिए जो अक़्लमन्द आदमी है वही समय का उपयोग ठीक रीति से करते हैं, क्योंकि—**''गया वक्त फिर हाथ आता नहीं, गया ऐश-आराम पाता नहीं''** गया वक्त हाथ में नहीं आता, इसलिए समय को ज्ञान प्राप्त करने में समय को बिताना चाहिए, क्योंकि ज्ञान नित्य वस्तु है। नित्य वस्तु पर काल का प्रभाव नहीं होता। इसलिए कहा है कि—**'देवस्य पश्य काव्यम्'**

वह परमेश्वर, जो देव है, उसके काव्य को देख। उस देव का काव्य वेद ही हो सकता है। वेद चार हैं—

ऋग्, युजः, साम और अथर्व

अब हम तो वेदों को मानते हैं, परन्तु दूसरे नहीं मानते, मुसलमान नहीं मानते, ईसाई नहीं मानते। वे कहेंगे कि हम तो वेद को नहीं मानते तो यह ठीक है। वेद नाम ज्ञान का है। कोई भी इन्सान यह नहीं कह सकता कि मैं ज्ञान को नहीं मानता। अगर कोई ऐसा कह दे तो उसकी मूर्खता होगी। तो वह ज्ञान चार प्रकार का है—ऋग्, यजुः साम और अथर्व। जैसे गणित में चार भेद हैं—जोड़, बाकी, गुणा और भाग, इनके अन्दर बीजगणित आदि सब आ जाते हैं। इसी प्रकार ज्ञान के भी चार भेद हैं। जो आदमी उन्नति की तरफ़ जाएगा वह देखेगा कि हिन्दुस्तान पतितावस्था में है। मैं तो कहूँगा कि हिन्दुस्थान पतितावस्था में नहीं, वह तो और सब देशों को मालामाल बनानेवाला है। जुगराफ़िये[१] में अगर आप देखेंगे तो आपको मालूम होगा कि जैसा यह देश है वैसा और कोई देश नहीं है, परन्तु आजकल के इतिहास में बिलकुल निकम्मा सिद्ध होता है, क्योंकि हमारे में आलस्य ज्यादा है। जो काम जिस समय करना चाहिए, उस समय नहीं करते, बेवक्त के लड़ाई-झगड़े करते हैं। सब आदमियों को अगर कोई एक विद्वान् आदमी अच्छे रास्ते पर ले जाना चाहे तो वह आदमी अक़्लमन्द और ज्ञानवृद्ध होना चाहिए,

---

१. भूगोलशास्त्र।

तभी ले-जा सकता है।

अब हम ऋक् को लेंगे। ऋक् नाम स्तुतिकर्म का है। वेद सामान्य शब्द है। उसके साथ मैं ऋग्, यजु:, साम और अथर्व ये चार विशेषण लगे हुए हैं। ऋग् जो है वह स्तुति कर्म है। जो कोई अक़्लमन्द आदमी होगा वह पहले परमेश्वर की बनाई हुई चीज़ों की तारीफ़ करेगा। मूर्त्तियों को हमने बना लिया और कह दिया कि यह परमेश्वर है, लेकिन जब परमेश्वर की प्रशंसा करेंगे तो हम कहेंगे कि परमेश्वर सर्वव्यापक है, सर्वशक्तिमान् है, सर्वज्ञ है, सर्वत्र व्याप्त है। इन विशेषणों से जब हम परमात्मा की स्तुति करेंगे तो पता लगेगा कि मूर्त्ति ही ईश्वर है या कोई और ही शक्ति। यह जो ज्ञान है वह ऋक् है। अब हम सांसारिक पदार्थों में यों ही चले आते हैं। एक आदमी ने गुलाब के फूल को देखा, उसमें खूब अच्छी सुगन्धि है, रंग भी बहुत अच्छा है। उसे देखकर वह आदमी कहता है कि यह फूलों का राजा है। पहले तो उसने सुगन्धि की तारीफ़ की। इसके बाद उसने विचारा की यह दिमाग़ को तर करनेवाला है, मनोहर है, सुन्दर है। जिस ज़मीन पर ये पत्तियाँ गिर जाती हैं उस ज़मीन की मिट्टी सुगन्धित हो जाती है। यह सारा ऋग् का स्थान होगा। दूसरा है यजु:०, उसमें यह विचार आता है कि यह सुगन्धि है तो अच्छी, परन्तु यह उस फूल से अलग रहते हुए स्थिर रह सकती है या नहीं। यजुष: का काम यह है कि वह भिन्न-भिन्न वस्तुओं के योग से कोई उपयोगी पदार्थ बना सके। उसी को लेकर यजु: ही के ज्ञान के बल से तरह-तरह के इत्र, हिना वगैरह तैयार किये जाते हैं। ये सन्दल की भूमि पर बनते हैं। इत्र कैसे निकलता है? जैसे सौंफ का अर्क निकाला जाता है, उसी तरह से उधर गुलाब के फूल डाल देते हैं। सन्दल के तेल का यह स्वभाव है कि वह अपनी सुगन्धि को छोड़कर दूसरी सुगन्धि को तत्काल ग्रहण कर लेता है। सन्दल का तेल चार आने तोला मिलता है और वह चार आने तोले की कीमत से ४ रु० तोला कैसे हो गया। उसने अपने आपको छुपाया। अपने को प्रकट नहीं किया। दूसरे के गुणों को ग्रहण किया। अपने को छुपाकर जो दूसरे के गुणों को प्रकट करता है, उसकी कीमत इसलिए बढ़ जाती है कि वह अपने गुणों को छुपाकर दूसरों को प्रकट कर देता है। अगर उसमें हिना डाल दो तो वह हिना हो जाता है, मोतिया डाल दो, तो मोतिया बन जाता है। इसी तरह जो इन्सान दूसरे के गुणों को दिखानेवाले होते हैं उनकी कीमत बढ़ जाती है। जो अपने ही को दिखाते रहेंगे, उन लोगों की कीमत नहीं बढ़ सकती। जैसे सरसों का तेल है, उसमें कितना ही हिना डाल दो तो भी वह अपना रोगन और अपनी बू नहीं छोड़ेगा। सरसों के तेल की कीमत इसलिए नहीं बढ़ती कि वह अपने आपको दिखाता है। इस प्रकार तरह यजुष: का स्थान है मेल करना। किस चीज़ के मिलाने से कौन-सी ताकत होगी? यह है यजु: का काम। जैसे गुलाब की सुगन्धि

में सन्दल के मिला देने से इत्र बन गया, बस इसी ज्ञान का नाम यजुर्वेद है। अब साम क्या है? ऋग् प्रशंसा करता है। उपयोग बताना काम यजुः का है। उसका जो परिणाम निकला, वह बताना साम का काम है। हर एक आदमी परिणाम को देखता है। अगर कोई इम्तिहान देता है और वह उसके अन्दर फर्स्ट डिविज़न में आ जाता है, तो उसको बहुत ही खुशी होती है। परमेश्वर के सच्चे स्वरूप को जानने के लिए जो कोशिश करता है और जब वह परमात्मा के स्वरूप को पहचान लेता है तो वह परमात्मस्वरूप बन जाता है। वह साम है। अथर्व का कोई स्थान नहीं। सबने देखा है यजुः को मूल में रखकर जोड़ा है। साधन की प्रबन्ध-व्यवस्था को लेकर उसी में कुछ-न-कुछ उन्नति करने या बढ़ाने को ही अथर्व कहते हैं। जैसे आजकल बड़ी लाइन पर बड़े-बड़े इञ्जन दौड़ाते हैं, वे चालीस फीट लम्बे और सोलह फीट चक्करदार होते हैं। अगर वे गुणों को न लेते गये होते और कुछ-न-कुछ बढ़ाये नहीं गये होते तो आज क्या इतने बड़े इञ्जन नज़र आ सकते थे? पहले के जो इञ्जन थे, वे बिलकुल छोटे थे। अथर्व कोई निज की वस्तु नहीं रखता, परन्तु वह साम का परिणाम निकालने के पश्चात् जो-जो उसके अन्दर रुकावटें डालनेवाली वस्तुएँ हैं, उन सबको हटाता है और उनकी सहायक वस्तुओं को इकट्ठा करता है। इसलिए कहा है कि—

"पश्य देवस्य काव्यम्"।

देव का काव्य क्या है? किसी ने कह दिया कि दीवानहाल अच्छा है। यह तो मेरा शब्द-ज्ञान हुआ, परन्तु मैंने देहली में जाकर दीवानहाल को देखा, यह मेरा देखना हुआ। इसी तरह से परमात्मा का ज्ञान यहाँ पर वेद में विद्यमान है। मैंने जिसका भजन किया वह परमात्मा सारी सृष्टि में विद्यमान है।

किसी भी चित्र को देखकर तीन बातों का ज्ञान होता है। जिसका चित्र होगा, उसके चरित्र का ज्ञान होगा, चित्रकार (चित्र बनानेवाले) के चरित्र का ज्ञान तीसरे उस चित्र का ज्ञान होगा। इसी तरह चित्र देखने से, जिसका चित्र होगा, उसकी तसवीर मालूम होगी, चित्र खींचनेवाले की तसवीर मालूम होगी और फिर उस चित्र की जो तसवीर है, मालूम होगी। घड़ी भी मौजूद है, उसको देखने से ज्ञान होता है कि ९ बजे हैं। संसार की जितनी भी वस्तुएँ हैं, उन सबमें ज्ञान का विषय सम्बन्ध से है, परन्तु जो परमात्मा है, उसके अन्दर ज्ञान का स्वरूपसम्बन्ध है। संसार बाह्य है। संसार का कोई-न-कोई तो कर्त्ता अवश्य है। जैनी लोग कहते हैं कि संसार का कोई कर्त्ता नहीं है तो यह कैसे हो सकता है? किसी कारीगर ने एक भद्दी तस्वीर बनाई, चलता हुआ एक छोटा लड़का भी उसको देखकर कहेगा कि यह भद्दी तसवीर किसने बनाई है? तो फिर जो सृष्टि चित्र, विचित्र, अद्भुत, अनुपम बनी हुई है, वह किसी-न-किसी की बनाई हुई अवश्य है, लेकिन

देखनेवाला हर एक व्यक्ति सृष्टि के सौन्दर्य और चित्र-विचित्रता के अन्दर ही मोहित हो जाता है, क्योंकि संसार तो बड़ा विचित्र है। एक-से-एक खूबसूरत चीजें हैं। जब आदमी उसको देखता है, तो वह उसकी सुन्दरता में फँसकर उसके बनानेवाले को भूल जाता है। उसका जो मुसव्वर[१] परमेश्वर है, उसके पास नहीं ले-जा सकता। एक पुरुष ने एक बहुत अच्छा बगीचा लगाया, उसके अन्दर कई अच्छे-अच्छे मकान, फ़व्वारे, पौधे, फुलवारी आदि लगाई। अब उसके अन्दर जो आदमी देखने गये, उनमें से एक ने कहा कि यह फ़व्वारा कितना अच्छा बना हुआ है। एक ने कहा— पानी कितना ठण्डा है। एक ने कहा कि ये फूल कितने अच्छे हैं। वहाँ पर एक आदमी आया और उसने कहा अरे, तुम लोग इन चीजों की क्या प्रशंसा करते हो, बनानेवाले की प्रशंसा करो. जिस प्रकार वे लोग बगीचे को देखते हुए उसके बनानेवाले को भूल गये उसी प्रकार संसार की जीजों को देखकर मनुष्य उसके कर्त्ता को भूल जाता है। वही मनुष्य विद्वान् है, अक़्लमन्द है, जिसने संसार को देखकर उसके करनेवाले को पहिचाना है और उसको नहीं भूला है। संसार क्या है? संसार तो एक इशारा है। संसार की हर चीज़ इशारा कर रही है। जो विद्वान् होता है वही उसको पहिचानता है। जो अद्वितीय अनुपम कर्त्ता को पहिचानता है, वही विद्वान् है।

दुःख और सुख

एक श्लोक है—

निर्मानमोहा जितसंगदोषा आध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ता सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥

संसार में दुःख के कारण हैं मान और मोह। इस मान और मोह से जो दूर हैं वे निर्मानमोहा हैं। "निर्गतौ मानमोहौ येषां ते निर्मानमोहाः"। मोह क्या है और मान क्या है? संसार की वस्तुओं में दिल की अज्ञानपूर्वक फँसावट का नाम है मोह। मोह दुःख का कारण है, पर जिस मनुष्य के दिल की फँसावट संसार की किसी वस्तु में ज्ञानपूर्वक है उसका नाम प्रेम है। यह प्रेम सुख का कारण है।

दो लड़के थे। उनका आपस में प्रेम हो गया। वे कॉलेज में पढ़ते थे। एक अक़्लमन्द था तो दूसरा भी चतुर, लेकिन थोड़ा बहिर्मुख था। सोडावाटर पीता था, चाहे प्यास हो या न हो। एक दिन उसने अपने दूसरे मित्र से भी बर्फ का पानी पीने का आग्रह किया। उसने कहा जब प्यास लगेगी तब पानी पिएँगे। कोई आदमी धूप में से आया हो और घबराया हुआ हो, उसको उस वक्त ठण्डा पानी पीने पर जो आनन्द आता है वह आनन्द बिना प्यास

---

१. चित्रकार।

के पीनेवाले को नहीं आता। मैं अपनी ही बात कहता हूँ कि जब मैं गाड़ी से चला आ रहा था तो मुझे प्यास लगी। जब तक मुझे किसी स्टेशन पर ठण्डा पानी नहीं मिला, तब तक मेरी प्यास रुकती रही। मैं कमण्डल खिड़की से बाहिर निकाले था। जयपुर से एक आदमी ने कहा—"क्या आपको पानी चाहिए?" मैंने कहा "हाँ भाई!" वह ठण्डा पानी लाया। मैं उसकी तारीफ करने लगा। देशवासियों की आदत खराब हो गई है। वे प्यास के बिना ही सोडा और बर्फ का व्यवहार करने लगे हैं। मेहनत करने के पीछे आराम कितना अच्छा सुख का देनेवाला है यह हमें तब मालूम होगा जब हम मेहनत करें। इसी प्रकार खूब प्यास लगने पर ही ठण्डे पानी का आनन्द आ सकता है।

सुकरात जैसे आदमी भी दुनिया में हुए हैं। उससे कभी किसी ने पूछा कि क्या आप कभी ठण्डा पानी पीते हैं? उसने कहा—जिस समय मुझे अच्छी प्यास लग जाती है उस समय पानी पीता हूँ। किसी ने कहा कि हम तुम्हारे खाने में कभी चटनी नहीं देखते हैं। उसने कहा—जब खूब भूख लगती है उसी समय मैं खाता हूँ। चाहे वह दाल हो या चटनी हो या और कोई खाने की चीज़ हो। जब भूख या प्यास नहीं लगती है तब न तो कुछ खाता हूँ और न पीता हूँ।

प्राचीन आर्यों ने भोजन को तीन भागों में बाँटा है।

(१) हित (२) मित और (३) ऋत। हमें भोजन कैसा करना चाहिए? हित अर्थात् हितकारी। ऐसा भोजन जो शरीर को फायदा पहुँचाए और दूसरा मित अर्थात् परिमित भोजन करें, भूख से ज्यादा नहीं खावें—तीसरा ऋत यानी समयानुकूल भोजन करें। यह तो हुई प्राचीन आर्यों की बात। आजकल तो ऐसा है कि ब्राह्मण लोग जब किसी दावत या भोज में सम्मिलित होते हैं तो पहले भाँग पी लेते हैं ताकि तीन चार लड्डू ज़्यादा खावें। खाने के वक्त तो वे ज्यादा खा लेते हैं पर पीछे तकलीफ़ उठाते हैं। इस वास्ते वह लड़का जो सोडावाटर पीता था रोज सिनेमा भी देखता था, पर दूसरा जो न तो सोडावाटर या सिगरेट ही पीता था, न सिनेमा का ही शौकीन था उससे उसके मित्र ने पूछा—मित्र! तुम सिनेमा में भी नहीं जाते और न सोडावाटर ही पीते हो? उसने कहा—ठीक है कोई बात नहीं। मैं कभी-कभी जब जरूरत होती है तब सोडावाटर भी पी लेता हूँ और सिनेमा भी देख लेता हूँ मगर तुम्हारी तरह हमेशा नहीं, तुम्हारी तो आदत ही ऐसी हो गई है। अच्छा तुम मुझे सिनेमा में क्यों ले-जाते हो? उसने उत्तर दिया—तुम हमारे मित्र हो सिनेमा में जाओगे तो हम तुम बराबर हो जावेंगे। उसने कहा कि यदि तुम भी नहीं जाओगे तो भी तो हम तुम दोनों बराबर ही रहेंगे। आखिर वही हुआ, वह सिनेमा नहीं गया। बहुत-से निकम्मे लड़कों को बहुत से बुद्धिमान् लड़के अपनी बुद्धिमानी से प्रभावित करके अपनी तरफ आकर्षित कर लेते

हैं। इसी प्रकार एक और उदाहरण लीजिए—

एक आदमी था। पहले के लोग अंगूठी पहना करते थे पर आजकल के लोग नहीं पहनते, उस आदमी के कोई एक मित्र था। उस आदमी ने अपने मित्र से कहा—"तुम हमारे मित्र हो, इस समय मुझे एक अंगूठी की ज़रूरत है। तुम हमें दो। हम तुमको याद करेंगे।" उसने कहा—क्या याद करोगे? उसने उत्तर दिया—याद करेंगे कि देखो हमारे एक मित्र था उससे हमने तीन-चार दिन के लिए एक अंगूठी माँगी थी सो उन्होंने दी। तो उसने उत्तर दिया—मैं तो तुम्हें अंगूठी नहीं दूँगा। तब भी यह याद रह जाएगा कि मेरे माँगने पर भी मित्र ने मुझे अंगूठी नहीं दी। इस वास्ते मोह यह दु:ख का कारण है। मनुष्य का प्रेम ज्ञानपूर्वक होना चाहिए। अज्ञानपूर्वक दिल की लगन का नाम मोह व ज्ञान-पूर्वक दिल की लगन का नाम प्रेम है। यह हुई द्वन्द्व की चर्चा।

मान क्या है? अन्त:करण की प्रवृत्ति को मान कहते हैं, अर्थात् दिल की आन्तरिक जो फँसावट होती है उसका नाम मान है और जो मान और मोह हैं ये दोनों ही दु:ख के कारण हैं। इन दोनों से मुक्त होने पर ही निर्मानमोह हो सकते हैं।

अब आगे है "जितसंगदोषा:" संगदोष को जीत लिया है। संगदोष बहुत बुरी चीज़ है। इसको आप भी स्वीकार करेंगे। इससे बहुत-से दूसरे अवगुण पैदा हो जाते हैं। जैसे गीता में कहा है—

संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधदोऽभिजायते।
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः॥

जैसे सङ्ग में बैठ जाओगे वैसे ही विचार हो जावेंगे। सोहबत का असर अवश्य हो जावेगा, लेकिन इस सङ्ग का असर किसपर होगा? जो मान और मोह के बन्दे हैं, परन्तु जो मान और मोह को जीतकर निर्मानमोहा हो गये हैं उनपर इस संगदोष का असर नहीं होता। वे जितसंगदोषा कहलाते हैं। "पद्मपत्रमिवाम्भसा" कमल के पत्ते की तरह जो जल के बीच में रहता है और जल ही में वृद्धि को प्राप्त होता है, परन्तु वह उसके दोष से अलिप्त रहता है, क्योंकि उसमें संगदोष नहीं है। पानी की बून्द अगर उसके ऊपर पड़ जावे तो भी वह पत्ता गीला नहीं होता। वह बूँद मोती की तरह गोल बनकर पत्ते पर इधर-उधर हिलती रहती है, पर उसके ऊपर उसका कोई असर नहीं होता, परन्तु यदि किसी पीपल या बड़ वृक्ष के पत्ते पर पानी की बून्द गिरजावे तो वह पत्ता गीला हो जाता है। ये दोष "निर्मानमोहा" में नहीं हो सकते।

अव "अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।"

आत्मचिन्तन में, आत्मविचार में आप कहें किस तरह से रहा जाता

है। देखो—जिसके लिए ये सब चीजें हैं वह कैसा है। अगर इसका पता लग जावे तो फिर किसी को कोई दु:ख न रहे।

एक वक्त का ज़िक्र है कि पंजाब के एक गाँव में एक आदमी मिट्टी (लीपने की मिट्टी) खोदने गया। पहला फावड़ा मारकर कुछ मिट्टी उसने अपनी टोकरी में डाली। दूसरा फावड़ा मारा तो वह एक पात्र पर पड़ा। वह पात्र तांबे का था। उस पात्र में जव उसने देखा तो उसे बहुत-सी अशर्फियाँ व रुपये दिखाई दिये। वे करीब ४-५ हज़ार की चीजें थीं, जो कि एक छोटे-से पात्र में रखी थी। जिस समय उसने फावड़ा मारा था तो वह अंगूठे पर ही लगा था जिससे उसका अंगूठा कट गया था पर उसने उस वक्त खुशी के मारे उसपर कुछ ध्यान नहीं दिया। वह उस पात्र को मिट्टी में छिपाकर घर ले-गया और अपनी स्त्री से कहा कि इसको सँभालकर रख। फिर जब वह अपने इस काम से निवृत्त हुआ तो उस अंगूठे के कटने के दु:ख से बहुत व्याकुल हो गया, लेकिन पहले कुछ भी दर्द मालूम नहीं हुआ। सामने पैसा आ गया था, जिसकी खुशी से उसका दु:ख दब गया था। वह तो पैसे की खुशी थी, पर जिसको आत्मा का पता लग जावे तो उस खुशी को वही जान सकता है, दूसरा नहीं। तो ''आध्यात्मनित्या विनिवृत्तकाम:'' इसका अर्थ है अध्यात्मचिन्तन में मस्त रहना। यह अवस्था जिसकी हो जाती है, उसकी सब कामनाएँ दूर हो जाती हैं।

''इच्छा द्विविधा'' इच्छा दो प्रकार की है। एक स्वार्थ-इच्छा और दूसरी परार्थ-इच्छा। जैसे यह उसको दो, यह मेरे को दो। अगर उसकी चेष्टा अपने निज के लिए है तो यह स्वार्थ-इच्छा कहलाती है। अगर उसकी चेष्टा अपने निज के लिए नहीं तो वह परार्थ-इच्छा कहलाती है।

आगे ''द्वन्द्वैर्विमुक्ता:'' द्वन्द्व अर्थात् दु:ख और सुख उसके मुक्त हो गये हैं। जीवन्मुक्त दशा के बीच में यह शरीर ही आगे नहीं मिलता है। शरीर के साथ ही सुख और दु:ख दोनों हैं। जीवन्मुक्त को न मान की इच्छा है न लोभ की और न लालच की। यदि उसके जीवन में शक्ति है तो वह लोकोपकारार्थ अर्थात् दूसरों की भलाई के लिए कार्य करता है उसके लिए तो कोई दूसरा काम ही नहीं। बड़े आदमियों का ऐसा ही स्वभाव होता है।

महात्मा गाँधी आ रहे थे। किसी ने कह दिया ''अरे! इस बोरे को उठाकर उधर रखना।'' इस जगह यदि कोई दूसरा आदमी होता तो कहता क्या मैं तेरे बाप का नौकर हूँ जो उठाकर रखूँ? आप भी यही जवाब देते, परन्तु महात्माजी ने उसे उठाया और उठाकर ठीक जगह पर रख दिया। जब वे उठाकर चले तब लोगों को मालूम हुआ कि ये तो महात्मा गाँधी हैं। तब तो उसको बड़ा पश्चात्ताप हुआ। महात्माजी ने कहा—पश्चात्ताप करने की तो कोई बात नहीं है। तुममें इस वजन को उठाने की शक्ति नहीं, मैंने इसको उठाकर रख दिया, तो इस प्रकार एक-दूसरे को मदद देना आदमी

का कर्त्तव्य है। यह जो काम महात्माजी ने किया यह पैसों के लिए नहीं किया इस प्रकार अपने को भी किसी की मदद के लिए कुछ उठा न रखना चाहिए। विनिवृत्तकाम दूसरों के हित के लिए है, अपने निज के लिए नहीं। जवाहरलालजी नेहरू को कौन-सा सुख हुआ? कुछ नहीं। फिर संसार के सारे सुखों को छोड़कर जवानी की हालत में सारे काम को छोड़कर क्यों ऐसा कहते हैं? उनकी निजी कोई कामना नहीं है। यदि कोई कामना है तो संसार के कल्याण और भलाई की। वे चाहेत हैं कि संसार सुखमय हो जावे। कहा गया है कि ''द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैः''

काग़ज़ को आप जला दो। जल जावेगा और फिर उसके आप अक्षर भी पढ़ लीजिए। आप उनको पढ़ सकते हैं, परन्तु क्या इस काग़ज की पुड़ियाँ भी आप बाँध सकते हैं? नहीं। जहाँ हवा की लहर आई कि वह उड़ जाएगा। इसी तरह यदि रस्सी को जला दो तो वह जल जावेगी। वह जल जाने पर भी उसके वट वैसे ही नज़र आवेंगे, पर किसी चीज़ को उससे बाँध नहीं सकते।

इसलिए सुख और दुःख से अलग हो गये। शरीर पर कुछ उसका असर नज़र आता है। यह भी होगा कोई परवाह नहीं। वह प्रारब्ध की वस्तु है, पर अन्त में—

''गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्''

अमूढाः—मोहरहित। जो मोह से रहित हो गये और जिन्होंने उस स्वरूप को जाना वे 'गच्छन्ति अमूढाः पदं अव्ययं तत्'' इस पद को जो 'अव्यय'' है प्राप्त हो जाते हैं।

दोनों ही मार्ग अच्छे हैं कोई किसी मार्ग में जाता है, कोई किसी मार्ग से जाता है। उसके विषय में कहा है—

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धनविनिर्मुक्ताः पदं गछन्त्यनामयम्॥
निर्मानमोहा जितसङ्गदोषाः, अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामः
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढा पदमव्ययं तत्॥

सोम का वैदिक स्वरूप

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः।

तेषां पाहि श्रुधी हवम्॥ —ऋग्वेद १-२-१

भाषार्थ—हे अनन्तबल युक्त, सबके प्राणस्वरूप, अन्तर्यामी परमेश्वर! हम आपका हृदयरूपी आसन पर आह्वान करते हैं। तपश्चर्या से शुद्ध किये अन्त:करण के साथ सोम स्वभाववाले आत्मा को आपके प्रति समर्पित करते हैं और विविध विद्वानों के हार्दिक वचनों को आपकी स्तुति-प्रार्थना हेतु अर्पण कर भूरिशः रक्षा की कामना करते हैं।

सोम का अर्थ ओषधि—वैदिक साहित्य में सोम का ओषधियों के साथ विशेष सम्बन्ध बताया गया है। सोम को ओषधियों का राजा तक कहा गया है। उदाहरण के लिए—

१. **सोम्या ओषधयः**। —शतपथब्रा० १२-१-१-२

२. **सोम ओषधीनामधिराजः**। —गोपथब्रा० १-१७

३. **सोमो वै राजौषधीनाम्**। —कौ० ४-१२; तै० ३-९-१७-१

४. **औषधो हि सोमो राजा**। —ऐ० ३।४०

५. **या ओषधीः सोमराज्ञीः**। —ऋ० १०।९७।१८-१९

६. **ओषधयः संवदन्ते सोमेन सह राज्ञा**। —ऋ० १०-९७-२२

ब्राह्मणग्रन्थों और वेद के इन वाक्यों में स्पष्ट ही ओषधियों का सोम-सम्बन्धी होना, सोम का ओषधियों का राजा होना और ओषधियों का सोम राजा से संवाद करना, मिलके रहना—बताया गया है। यों भी भारतीय आयुर्वेद में सोम को एक बड़ी प्रभावशालिनी ओषधि माना गया है। लौकिक संस्कृत साहित्य में ओषधि शब्द का प्रसिद्ध अर्थ शरीर के रोगों का नाश करनेवाली दवाएँ होता है और सोम को ओषधियों का राजा अर्थात् एक बहुत प्रभावशाली तथा शक्ति देनेवाली ओषधि समझा जाता है। वेद और वैदिक साहित्य में ओषधि और सोम के अनेक स्थानों में ऐसे वर्णन आते हैं जहाँ इनका अर्थ प्रसिद्ध ओषधियाँ या दवाएँ ही करना होगा, परन्तु क्या सर्वत्र वेद में सोम का अर्थ एक विशेष प्रकार की प्रभावशाली ओषधि अथवा बूटी ही होता है? वेद में सर्वत्र सोम का अर्थ सोम नामक बूटी नहीं है। वेद के अनेक स्थलों में सोम का अर्थ परमात्मा होता है और बहुत-से स्थलों में सोम का अर्थ गुरुकुलों से विद्याप्राप्त ब्राह्मणादि तीनों वर्णों के विद्वान् स्नातक होता है। फिर कई प्रसंगों में स्नातकवाची सोम शब्द को न्यायाधीश और संन्यासी आदि अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। ऋग्वेद १।९३।४ में पवन को भी सोम कहा है। ऋग्वेद ९।९६।५ के आधिदैविक

अर्थ में निरुक्तकार महर्षि यास्क ने प्रकाश, अग्नि और पृथिवी का उत्पादक 'सोम' को बताया है। आचार्य दयानन्द ने सोम का व्यापक अर्थ लिया है।

सुवत्यैश्वर्य हेतुर्भवतीति सोमः उणादिकोष पाद १ सूत्र १४० में सम्पूर्ण ऐश्वर्य का हेतु सोम को कहा है। सोम का कहाँ क्या अर्थ लेना है यह प्रकरण-प्रकरण में आये हुए सोम के विशेषणों और वर्णनों के आधार पर निर्णीत होगा। सोम का सब जगह बूटी अर्थ करना वेद के साथ घोर अन्याय है। यह ठीक है कि बूटी, रस, जल, ऐश्वर्य, चन्द्रमा आदि अर्थ भी सोम के वेद में होते है, परन्तु सर्वत्र यही अर्थ करना असंगत है। विशेषणों के आधार पर ही हमें कोई अर्थ करना होगा और इस पद्धति से अर्थ करने में हमें वेद के अपेक्षाकृत बहुत थोड़े स्थल ऐसे मिलेंगे जहाँ सोम का अर्थ बूटी, रस, चन्द्र आदि ही हो सकेगा। अधिकांश स्थलों में दूसरे अर्थ भी होंगे। वेद में देवों का भाग जल, ओषधियों का रस, घृत और सोम है—

देवानां भाग उपनाह एष अपां रस ओषधीनां घृतस्य।
सोमस्य भक्षमवृणीत शक्रो बृहन्नद्रिरभवच्छरीरम्॥

—अथर्व ९।४।५

अर्थात् (एषः) यह (देवानां भागः) देवों का भाग (उपनाहः) नियत किया गया है, जो (अपां) जलों का, (ओषधीनां) ओषधियों का और (घृतस्य) घृत का (रसः) रस है। (शक्रः) इन्द्र ने (सोमस्य भक्षम्) सोम के भोजन को (अवृणीत) चुना है, (बृहन् अद्रिः) पत्थर की विशाल कूँडी (शरीरम् अभवत्) जिस सोम को पीसनेवाली है।

अन्यत्र वैदिक स्तोता कामना प्रकट करता है कि सर्वोत्पादक बृहस्पति प्रभु मुझे पशुओं का दूध और ओषधियों का रस भोजन के लिए प्रदान करता रहे—

पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता में नियच्छत्।

—अथर्व० १९-३१-५

ऋग्वेद में ११ बार स्पष्टरूप से सोम को वृषभ कहा गया है।

वृषभ सोम का रेतस् (रस) पाकर वत्स की मातृभूतधीतियाँ शब्दायमान हो जाती हैं। —ऋग्वेद ९-१९-४

जैसे भयंकर वृषभ बल दिखाने की इच्छा से अपने शृङ्गों को तीक्ष्ण करता हुआ दहाड़ता है, वैसे ही सोमरूप वृषभ भी अपने डंठलरूपी सींगो को सिल-बट्टों पर तीक्ष्ण करता हुआ शब्द करता है। —ऋ० ९-७०-७

जैसे वृषभ गोयूथ में जाता है, वैसे ही सोमरूप वृषभ 'आपः' के समीप जाता है। —ऋ० ९-७६-५

दस अंगुलियाँ ग्रावाओं द्वारा वृषभ सोम को जलों में दुहती हैं।

—ऋ० ९-८०-५

यह सोम सहस्र धाराओं से बहनेवाला वृषभ है, जो ऋतजात है—

सहस्रधारं वृषभं पयोवृधं प्रियं देवाय जन्मने।

ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत्॥

—९।१०८।८

सोम उक्षा भी है। ऋग्वेद में पाँच बार सोम-सूक्तों में उसके लिए उक्षा शब्द आया है। उक्षा सोम जब निचोड़े जाने पर शब्द करता है तब धेनुएँ (प्रीणयित्री स्तुतियाँ या आपः) उसके समीप जाती है। —९।६९।४

इस पर्वत-निवासी (गिरिष्ठा उक्षा) को बुद्धिमान् लोग ऊर्ध्व स्थानों पर दुहते हैं। —९।९५।४

यह सोम सिन्धु की उत्ताल तरंगों में लहरानेवाला उक्षा पशु है—

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते।

सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासुगृभ्णते॥

—९।८६।४३

ऋग्वेद १-१६४-४३ में कहीं दूर पर गोबर के उपले का धुआँ दिखायी देने की चर्चा है। उसके विषय में कहा गया है कि वीरों ने उक्षा-पृश्नि (सोमवल्ली) को पकाया है उसी का यह धुआँ है।

शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण।

उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्॥

सायण यहाँ वीर का अर्थ विविध विधियाँ करने-करानेवाले ऋत्विज् या देव तथा उक्षा का अर्थ सोमवल्ली करते हैं। प्रमाणरूप में उन्होंने एक वचन भी उद्धृत किया है।

सोम उक्षाभवत् पूर्वं तं देवाः शकृतापचन्।

यज्ञार्थे तद्भवो धूमो मेघ आसीत् तदुच्यते॥

ऋ० ९।८६।४३ में उक्षणं पशुम् शब्द का अर्थ सायण ने बैल या साँड अर्थ न लेकर सोम अर्थ ही किया है।

सोम का अर्थ वीर्य—पं० हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार ने ऋग्वेद मन्त्र १।११।९ में सोम शब्द का अर्थ वीर्य किया है।

पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि।

उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः॥

—ऋग्वेद १।११।९

१. हे अग्ने=परमात्मन्! आप अध्वराणाम्=सब हिंसारहित कर्मों के, यज्ञों के पतिः=रक्षक, असि हैं। आपकी कृपा से ही सब यज्ञ पूरे हुआ करते हैं।

२. हे अग्ने! आप ही विशाम्=सब प्रजाओं के दूतः=ज्ञान के सन्देश को प्राप्त करानेवाले हैं।

३. आप ही उषर्बुध:=प्रात:काल में जागनेवाले स्वर्दृश:=ज्ञान के सूर्य को देखनेवाले अर्थात् प्रात:काल स्वाध्यायशील देवान्=देववृत्ति के लोगों की अद्य=आज सोमपीतये=सोम के रक्षण व शरीर में ही पीने व व्याप्त करने के लिए आवह=प्राप्त करवाइए। वस्तुत: शरीर में सोम=वीर्य के रक्षण के लिए आवश्यक है कि (क) हम प्रात:काल जागें, (ख) स्वाध्यायशील हों, (ग) देववृत्ति को अपनाएँ।

भाषार्थ—उष:जागरण, स्वाध्याय व देववृत्ति को अपनाने पर हम शरीर में सोम का रक्षण कर पाते हैं। इस सोम का रक्षण होने पर हमारे जीवन में यज्ञात्मक कर्म चलते हैं और हम प्रभु के ज्ञान-सन्देश को सुन पाते हैं।

पं० विश्वनाथ वेदालङ्कार ने अथर्ववेद १४।१।१-५ तक के मन्त्रों में सोम का अर्थ वीर्य किया है—

सत्येनोत्तभिता भूमि: सूर्येणोत्तभिता द्यौ:।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधिश्रित:॥

—अथर्व० १४।१।१

अर्थात् सत्य द्वारा मातृशक्ति थामी हुई है, दृष्टिशक्ति तथा मस्तिष्क शक्ति द्वारा पितृशक्ति थामी हुई है। नियमों द्वारा आदित्य ब्रह्मचारी अपने व्रत में स्थित होते हैं, जिनके कि सिर में या मस्तिष्क में (सोम:)=वीर्य आश्रित होता है। यहाँ सोम का अर्थ वीर्य है। सोम का अर्थ वीर्य होने के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रमाण द्रष्टव्य हैं—

(क) सोम शब्द 'सु' धातु से बना है जिसका अर्थ प्रसव भी है। वीर्य प्रसव में साधन है। Seed, Semen शब्दों में भी सु धातु ही प्रतीत होता है। 'सोम' शब्द में 'मन्' प्रत्यय है और सु धातु है, अत: सोम का मौलिक रूप सुमन् है जोकि Semen के साथ मिलता है। Semen का अर्थ अंग्रेजी में वीर्य है।

(ख) यजुर्वेद १९ तथा २० अध्यायों में सोम को शुक्र, रेत: और इन्द्रिय कहा है। शुक्र का अर्थ वीर्य भी होता है और इन्द्रिय का अर्थ सामर्थ्य और शक्ति।

(ग) आयुर्वेद में अग्नि और सोम शब्द का प्रयोग रज तथा वीर्य के लिए हुआ है। यथा—

"सौम्यं शुक्रमार्तवमाग्नेयम्"।

अर्थात् "शुक्र" सोम है तथा 'ऋतुधर्म" अग्नि है। तथा

शुक्रं च्युतं योनिमभिप्रतिपद्यते संसृज्यते चार्त्तवेन।
ततोऽग्निसोमसंयोगात्संसृज्यमानो गर्भाशयमनुप्रतिपद्यते क्षेत्रज्ञ:॥

[सुश्रुत शरीरस्थान अ० ३]

अर्थात् शुक्र (=वीर्य) पुरुष से च्युत होकर योनि में आता है और ऋतुधर्म (रजः) के साथ मिलता है। तब अग्नि और सोम के संयोग के साथ मिलकर जीवात्मा गर्भाशय को प्राप्त होता है।

(घ) ब्राह्मणग्रन्थों में सोम शब्द का अर्थ वीर्य किया गया है। यथा—

"रेतः सोमः"। —कौ० ब्रा० १३।७; तै० ब्रा० २।७।४।१;

शतपथब्रा० ३।३।२, ३।३।४।२८,

३।४।३।११, १।९।२।९,

२।५।१।९, ३।८।५।१।

वीर्य शक्ति का प्रभाव

२. सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही।

अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः॥

—अथर्व १४।१।२

अर्थात् (सोमेन) वीर्य द्वारा (आदित्याः) आदित्य ब्रह्मचारी (बलिनः) बलवान् होते हैं, (सोमेन) वीर्य द्वारा (पृथिवी) स्त्री-शक्ति भी (मही) पूजनीया होती है। (अथो) और (एषां नक्षत्राणाम्) इन अक्षत-वीर्यों के (उपस्थे) उपस्थेन्द्रिय में (सोमः) वीर्य (आहितः) स्थित होता है। आदित्य ब्रह्मचारी वीर्य द्वारा बलवान् होते हैं।

वास्तविक सोमपान

३. सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिंषन्त्योषधिम्।

सोमं यं ब्रह्मणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः॥

—अथर्व १४।१।३

इस मन्त्र में सोमपान का वर्णन है। मन्त्र में बताया गया है कि सोम ओषधि को कूटकर और उसका रस निकालकर पीने से जो व्यक्ति यह समझ लेता है कि मैंने सोमपान कर लिया है वह सोमपान के अभिप्राय को ठीक नहीं समझ रहा होता है, ब्रह्मवेत्ताओं अर्थात् वेदवेत्ताओं के मत में सोमपान और ही वस्तु है। स्त्री-भोगी पुरुष ब्रह्मवेत्ताओं में प्रसिद्ध सोम का पान नहीं कर सकता। ब्रह्मवेत्ताओं का सोमपान है वीर्य को शरीर के भीतर लीन करना, उसके द्वारा मस्तिष्क शक्ति, शारीरिक शक्ति तथा आत्मिक शक्ति को बढ़ाना।

वीर्य की वृद्धि, रक्षा तथा निर्माण

४. यत् त्वा सोम प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः।

वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः॥

—अथर्व० १४।१।४

मन्त्र में वीर्य के पान अर्थात् वीर्य को रक्त में आत्मसात करने पर

वीर्य और अधिक बढ़ता है ऐसा बताया गया है। प्राणायाम और शुद्ध वायु वीर्य को उत्पन्न करते हैं और उत्पन्न हुए वीर्य की रक्षा करते हैं। शुद्धवायु या शुद्धवायु में किया गया प्राणायाम जो वीर्य को बनाता है इसमें दृष्टान्त मास और वर्ष का दिया है। मास और वर्ष का परस्पर सम्बन्ध क्या है? हम कह सकते हैं कि इनका परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध है। मास ही मिलकर वर्ष बन जाता है। इस दृष्यान्त को देते हुए वेद ने यह दर्शाया है कि शुद्धवायु या शुद्धवायु में किये गये प्राणायाम और वीर्य में भी तादात्म्य का सम्बन्ध है। मानो वायु ही वीर्यरूप में परिणत हो जाती है या प्राणायाम वीर्यशक्ति का निर्माण करनेवाला है। इस तादात्म्य सम्बन्ध को दर्शाकर वेद ने वीर्य के निर्माण तथा वीर्य की रक्षा के सम्बन्ध में प्राणायाम के महत्त्व को दर्शाया है। वायु और सोम (=वीर्य) के सम्बन्ध को यजुर्वेद १९।३ में भी स्पष्ट कर दिया है—

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अतिद्रुतः। इन्द्रस्य युज्यः सखा।
वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ् सोमो अतिद्रुतः। इन्द्रस्य युज्यः सखा॥

—यजुर्वेद १९।३

अर्थात् वायु की पवित्र करनेवाली शक्ति द्वारा पवित्र हुआ सोम अर्थात् वीर्य ''पिछली उम्र'' में बहुत शक्ति का संचार करनेवाला है, और इन्द्र अर्थात् शक्ति का योग्य सखा यह सोम है। इसी प्रकार यह सोम ''पहली उम्र'' में भी बहुत शक्ति का संचार करनेवाला है।

इस मन्त्र में ''प्रत्यङ्'' और ''प्राङ्'' शब्द जीवन के पिछले समय अर्थात् युवावस्था के सूचक हैं। वायु से पवित्र हुआ सोम इन दोनों समयों में शरीर की शक्ति को बनाये रखता है। इस प्रकार शुद्धवायु के सेवन तथा शुद्धवायु में किये गये प्राणायाम का सोमशक्ति के निर्माण, वर्धन तथा रक्षण के साथ बहुत सम्बन्ध है।

वीर्य-शक्ति की रक्षा की विधियाँ

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः॥

—अथर्व० १४।१।५

अर्थात् वेदोक्त आच्छादन विधियों अर्थात् बचाव के वैदिक साधनों और उपायों द्वारा वीर्य शरीर में लीन हो सकता है, और इस प्रकार रक्षित हो सकता है। शृङ्गारोत्पादक गीतों, कथाओं तथा वार्त्तालापों से शरीर में वीर्य स्थित नहीं रहता। वैदिक, धार्मिक वाणियों को सुनते रहने से ही वीर्य शरीर में स्थित होता है।

स्त्री-भोगी-पुरुष, अर्थात् पार्थिव-भोगों में लिप्त पुरुष वीर्याशन—जिसे कि ऊपर सोम-पान कहा है—नहीं कर सकता।

सोम का अर्थ स्नातक—सोम का अर्थ सर्वत्र सोम नामक बूटी अथवा चन्द्रमा या कोई और जड़ पदार्थ नहीं किया जा सकता यह दिखाने के लिए हम नीचे वेद के कुछ मन्त्र उपस्थित करते हैं—

१. **सोमा असृग्रम विश्वानि काव्या।** —ऋ० ९।२३।१

ये सोम सभी प्रकार के काव्यों अर्थात् गहरे ज्ञानों की रचना करते हैं।

२. **सोमास आयवः पवन्ते मदम्।** —ऋ० ९।२३।४

ये सोम आयु अर्थात् मनुष्य हैं और हर्षकारक पदार्थों को पवित्र करते हैं।

३. **सोमः सुवीरः।** —ऋ० ९।२३।५

सोम बड़ा उत्तम वीर है।

४. **सोम नृभिर्विनीयसे।** —ऋ० ९।२४।३

वह मनुष्यों द्वारा सुशिक्षित किया जाता है।

५. **एते सोमास इन्द्रं वर्धन्ति कर्मभिः।** —९।४६।३

ये सोम अपने कर्मों से इन्द्र अर्थात् सम्राट् की महिमा को बढ़ाते हैं।

६. **अयं सोमः कपर्दिन घृतं न पवते मधु।**
आ भक्षत् कन्यासु नः॥ —९।६७।११

यह सोम विवाह के समय मुकुटधारी, अपने लिए हमारी कन्याओं में से किसी व्रता द्वारा दिये हुए मधु को खाता है।

७. **सोमो वधुयुरभवत्।** —ऋ० १०।८५।९

वह वधु की कामना करनेवाला होता है।

८. **विहनन्तो दुरिता।** —ऋ० ९।६२।२

ये सोम दुराचरणों को मारनेवाले हैं।

९. **एष वनेषु विनीयते।** —ऋ० ९।२६।३

इसको वनों में शिक्षा दी जाती है।

१०. **ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन्त्सत्यकर्मन्।** —९।११३।४

वह सोम ज्ञान की बातें बोलता है, ज्ञान को ही धन समझता है, सत्य का उपदेश करता है और सत्यपूर्ण कर्म करता है।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि सोम ऐसा विद्वान् है जो युवक है, अभी-अभी शिक्षा संस्थाओं से, गुरुकुलों से विद्या पढ़कर आया है और गृहस्थ आश्रम की तैयारी कर रहा है, अर्थात् गुरुकुलों का स्नातक है। तीनों वर्णों के ही स्नातक को सोम कहा गया है, क्योंकि सोम के वर्णन ऐसे हैं जो कोई ब्राह्मण पर घटते हैं, कोई क्षत्रिय पर और कोई वैश्य पर। इस प्रकार सोम के पुरुषवाची अर्थ में सामान्यतः उसका अर्थ स्नातक है और कई स्थलों में उसका अर्थ न्यायाधीश और संन्यासी और सामान्य गृहस्थ आदि भी हो

जाता है।

क्योंकि ये सभी सोम अर्थात् स्नातक हो चुके होते हैं।

सोम का अर्थ गुरुकुल का स्नातक होता है इस विषय में विस्तार से पं० बुद्धदेवजी विद्यालंकार की पुस्तक "सोम" में वर्णन किया गया है।

सोम का अर्थ न्यायाधीश—ऋग्वेद ७।१०४ और अथर्ववेद ८।४ सूक्तों में इन्द्र और सोम से राक्षसों अर्थात् प्रजापीड़क, दुष्कर्मा लोगों को दण्डित करके प्रजाजनों की रक्षा की प्रार्थना है। इन्द्र और सोम का सबसे अधिक इकट्ठा वर्णन इन्हीं दो सूक्तों में हुआ है और ये सूक्त पच्चीस-पच्चीस मन्त्रों के लम्बे सूक्त हैं। इन सूक्तों को ध्यान से पढ़ने से पता लगता है कि अपराधियों के पारस्परिक आरोपों की सत्यासत्यता का निर्णय करने का काम सोम को सौंपा गया है। इन्द्र का काम केवल दण्ड देना है। उदाहरण के लिए कुछ मन्त्र द्रष्टव्य हैं—

१. सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत्॥
—अथर्व० ८।४।१२, ऋ० ७।१०४।१२

अर्थात् उत्कृष्ट विज्ञान को जाननेवाले सोम नामक जन के पास सत्य और असत्य वचन अपनी-अपनी विजय के लिए स्पर्धा करते हुए आते हैं, उनमें से जो सत्य है, जो सीधा-सरल है, उसकी सोम रक्षा कर लेता है और जो असत्य है उसको मार देता है—दण्डित कर देता है।

२. ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्य वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः।
अहये वा तान्प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे॥
—अथर्व० ८।४।९, ऋ० ७।१०४।९

अर्थात् जो शुद्ध, पुण्य की बातें ही निरन्तर सोचनेवाले मुझपर अपने आक्रमणों से बार-बार आते हैं, अथवा जो अपने कमाये अन्नादि के साथ रहनेवाले मुझ भद्र आचरण करनेवाले को दूषित करते हैं उन दुष्ट पुरुषों को सोम या तो मारनेवाले अर्थात् फाँसी देनेवाले पुरुषों को सौंप दे अथवा कारागार की गोद में डाल दे।

३. न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्।
हन्ति रक्षो हन्त्यसद्वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते॥
—अथर्व० ८।४।१३, ऋ० ७।१०४।१३

अर्थात् सोम पापकारी को बढ़ने नहीं देता, और न ही मिथ्या वचन को अथवा प्रजा-हिंसन को धारण करनेवाले क्षत्रिय को बढ़ने देता है, ऐसे राक्षस व्यक्ति को, और असत्यवादी को, सोम दण्डित करता है, पापी और असत्यवादी दोनों सम्राट् (इन्द्र) के बन्धन में पड़ जाते हैं।

इन मन्त्रों में स्पष्ट कहा गाय है कि झगड़नेवाले लोगों की स्थापनाओं

के वचनों की सत्यासत्यता का निर्णय सोम करता है। सोम ही यह निर्णय करता है कि अपराध के अनुसार किसको फाँसी पर चढ़ाना चाहिए और किसको कारागार में डालना चाहिए—अर्थात् सोम ही यह निश्चय करता है कि किस अपराधी को क्या दण्ड मिलना चाहिए। सोम से अपराध और दण्ड का निर्णय हो जाने के पश्चात् अपराधी सम्राट् (इन्द्र) के बन्धन में पड़ जाते हैं। इन मन्त्रों के वर्णन से स्पष्ट पता चलता है कि न्याय (Executive) काम सोम का है और शासन का (Judicial) काम इन्द्र का है। सोम जो दण्ड निर्धारित कर देता है इन्द्र उस दण्ड को दिलवा देता है।

न्याय का काम विशेषरूप से सोम का है। इस सम्बन्ध में अथर्ववेद के मन्त्र १९।२४।३ में भी बताया गया है—

परीमं सोममायुषे महे श्रोत्राय धत्तन।
यथैनं जरसे नयां ज्योक् श्रोत्रेऽधि जागरत्॥

—अथर्व० १९।२४।३

अर्थात् इस सोम गुणयुक्त सम्राट् को (सोमं) प्रजाओं की आयुवृद्धि के लिए—जीवन रक्षा के लिए, महान् श्रवण के लिए (श्रोत्राय) सिंहासन पर बिठाओ, ऐसा उपाय करो जिससे इसको बुढ़ापे तक ले-जा सकें, देर तक यह श्रवण के काम में (श्रोत्रे) जागता रहे।

मन्त्र में सम्राट् के लिए सोम नाम आया है। सोम का काम 'श्रोत्र' कहा है। सोम का यह श्रवणकर्म न्याय का काम करने की सूचना देता है।

न्यायाधीश ब्राह्मण होना चाहिए—वेद में ब्राह्मणों का और सोम का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध बताया गया है। उदाहरण के लिए कुछ मन्त्र प्रस्तुत हैं—

१. **सोमश्च यो ब्राह्मणो आविवेश।**

—ऋ० १०।१६।६, अ० १८।३।५५

जो सोम ब्राह्मणों में प्रविष्ट है।

२. **ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः।**

—ऋ० ६।७५।१०; यजुः० २९।४७

ब्राह्मण पितर हैं और सोम से सम्बन्ध रखनेवाले हैं।

३. **ब्राह्मणासः सोमिनः।** —ऋ० ७।१०३।८

ब्राह्मण सोमवाले हैं।

४. **सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा।** —यजुः० ९।४०

सोम हम ब्राह्मणों का राजा है।

५. **ब्राह्मणः...स सोमं प्रथमः पपौ।** —अथर्व० ४।६।१

ब्राह्मण सोम का सबसे पहले सेवन करता है।

ये कुछ थोड़े से मन्त्र ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद के प्रस्तुत किये और भी अनेक मन्त्र हैं जिनमें ब्राह्मणों और सोम का इसी प्रकार घनिष्ठ सम्बन्ध बताया गया है।

ब्राह्मणग्रन्थों में भी सोम को कई जगह ब्राह्मण कहा गया है। जैसे—

१. **तस्माद् ब्राह्मणो नाद्यः सोमराजा हि भवति।**

—शतपथ ५।४।२।३

२. **सोमो वै ब्राह्मणः।** —ता० २३।१६।५

३. **सौम्यो हि ब्राह्मणः।** —तै० २।७।३।१

यहाँ ब्राह्मणग्रन्थों के अनुसार सोम ब्राह्मण है और वेद के अनुसार सोम न्यायाधीश है अतः न्यायाधीश को ब्राह्मण होना चाहिए।

ऋग्वेद ७।१०४।१३; अथर्व० ८।४।१३ में बताया गया है कि न्यायाधीश अपराधी क्षत्रियों (राज्याधिकारियों) को भी दण्डित करे—

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्।

—ऋ० ७।१०४१३; अ० ८।४।१३

अर्थात् सोम पापकारी को बढ़ने नहीं देता है और न ही मिथ्याभाषी और प्रजाहिंसक क्षत्रिय को बढ़ने देता है।

अब इस मन्त्र में इस प्रकार बलपूर्वक सोम के विषय में यह कहना कि वह अपराधी क्षत्रिय को भी नहीं छोड़ता है यह सूचित करता है कि सोम ब्राह्मण है।

वेद एवं ब्राह्मणग्रन्थों में ब्राह्मण का अर्थ जन्मगत ब्राह्मणत्ववाला व्यक्ति नहीं है। वेद में ब्राह्मण संयमी, तपस्वी और कम-से-कम भौतिक आवश्यकताओं-(Material Wants)-वाले व्यक्तियों को कहते हैं। जिनके जीवन का लक्ष्य ज्ञान और सत्य की निःस्वार्थ खोज और उनका निःस्वार्थ प्रचार करना होता है। महर्षि पाणिनि ने अष्टाध्यायी के अन्तर्गत ब्राह्मण शब्द का अर्थ—'ब्रह्म अधीते वेदं वा ब्राह्मणः। तदधीते तद्वेद' किया है, अर्थात् जो ब्रह्म अर्थात् परमात्मा को जानता है और जो ब्रह्म-विद्या का अध्ययन करता हो वह ब्राह्मण कहलाएगा। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में मनुस्मृति १।८८ के आधार पर ब्राह्मण के—पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान देना-लेना—ये छह कर्म लिखे हैं।

सोम का अर्थ परमात्मा—ब्राह्मणग्रन्थों में कई स्थलों पर सोम का अर्थ प्रजापति अर्थात् परमात्मा किया गया है। उदाहरण के लिए शतपथ ब्राह्मण में कहा है—

१. **सोमो हि प्रजापतिः।** —शत० ५।१।५।२६

२. **सोमो ते प्रजापतिः।** —शत० ५।१।३।७१

ऋषि दयानन्द ने वेद में सोम-सूक्तों के अन्तर्गत सोम शब्द का अर्थ

बहुदेवतावाद के रूप में ग्रहण न करके महर्षि यास्क की परम्परानुसार सोम शब्द का अर्थ परमात्मापरक किया है। मेरी समझ से वेदों में सोम का परमात्मापरक अर्थ सबसे अधिक प्रयुक्त हुआ है। उदाहरण के रूप में कुछ मन्त्र प्रस्तुत हैं—

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः॥

—ऋ० ९।९६।५

भाषार्थ—सोम पवित्र करता है, वह मननशील बुद्धियों का उत्पन्न करनेवाला है, द्युलोक का उत्पन्न करनेवाला है, पृथिवीलोक का उत्पन्न करनेवाला है, अग्नि का उत्पन्न करनेवाला है, सूर्य का उत्पन्न करनेवाला है, इन्द्र का उत्पन्न करनेवाला है और विष्णु का उत्पन्न करनेवाला है।

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत् समाशत॥

—ऋ० ९।८३।१

भाषार्थ—ते=सोम ब्रह्म अर्थात् वेद का स्वामी है। उसका स्वरूप सबको पवित्र करनेवाला है। उसका वह पवित्र स्वरूप सर्वत्र फैला हुआ है। वह सब-कुछ कर सकने में समर्थ, सबका स्वामी है। वह संसार के सब पदार्थों के शरीरों में व्यापक है। जिन्होंने ब्रह्मचर्यादि व्रतों के तप द्वारा अपने शरीरों को तपाया नहीं है ऐसे कच्चे लोग उसके स्वरूप को नहीं पा सकते। जिन्होंने इन तपों के द्वारा अपने-आपको तपा लिया है ऐसे परिपक्व लोग ही अपनी जीवन-यात्रा में उसके पवित्र रूप को प्राप्त कर सकते हैं।

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पते प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम॥

—ऋ० ७।४१।१

मन्त्र के 'प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम' भाग में सोम के बारे में बताया गया है—

इस आनन्ददायक उषाकाल में (सोमम्) शीलता और शान्ति के भण्डार सौम्यस्वरूप भगवान् को और दुष्टों को रुलानेवाले, उग्रस्वभाव रुद्ररूप प्रभु को अपनी रक्षार्थ पुकारते हैं।

सन्ध्या में मनसा-परिक्रमा के मन्त्रों में पहली अवस्था में जीव का स्वरूप अग्नि होता है।

फिर वह उन्नति करते हुए इन्द्र, वरुण, सोम और विष्णु बनता हुआ अन्त में बृहस्पति बन जाता है, परन्तु सर्वोन्नत अवस्था पर पहुँचकर एक भय रहता है। उन्नत होने पर हमें अभिमान न आये, अतः उपासक कहता है, ''मैं सौम्यस्वरूप परमात्मा को पुकारता हुआ स्वयं भी सौम्यता=नम्रता

की भावना को जीवन में धारण करता हूँ। मैं सौम्य बनता हूँ।'' महान् बनकर भी हम सौम्य=नम्र बनें।

ऋग्वेद १।९१।१३ में सोम की उपासना करते हुए कहा गया है—

१. सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा।
मर्यइव स्व ओक्ये॥ —ऋ० १।९१।१३

हे सोम! अर्थात् हे सुख-शान्ति के स्रोत प्रभो! आपकी वन्दना करते हुए हमें युग बीत गये हैं, न आपका अन्त मिला और न आपकी महिमा का अन्त मिला। आपकी सन्तान होते हुए भी हम आपसे दूर हैं। यह दूरी कम करो। यही याचना है कि आप स्वयं हमारे हृदय-मन्दिर के देवता बनकर हमारे अन्त:करण में निवास करो। हमारा हृदय आपका घर हो। आप इसमें कुछ देर के लिए मेहमान बनकर नहीं बल्कि घर के मालिक बनकर रहें। सोम! हमें पता लग गया है कि हममें जो कुछ प्रकाशमय, ज्ञानमय या आनन्दमय है वह सब आपका ही है और जो विवेकशून्यता है, अल्प है वह हमारी अपूर्णता है।

आज्ञाकारी शान्तिदायक सोम! हम आपके हैं या आपकी वैभवमयी वाटिका के माली हैं। हमारा कर्त्तव्य है इसे यथाशक्ति स्वच्छ रखना, यही हमारा दायित्व है। आपसे ही इस मिट्टी के घर में प्रकाश है—ज्ञान है और विवेक है।

सोम का पान कौन कर सकता है, ऋग्वेद १।१६।३ में बताया गया है—

इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।
इन्द्रं सोमस्य पीतये॥ —ऋ० १।१६।३

जो इन्द्र का स्मरण और इन्द्र के गुणों का धारण करते हैं वे सोम=आध्यात्मिक आनन्द का पान करते हैं। ऋग्वेद ९।६५।१९, सामवेद ८३४ में परमात्मा, 'सोमदेव' है, ऐसा बताया गया है—

आ नः सोम सहो जुवो रूपं न सचसे भर।
सु-ष्वाणी देव-वीतये॥ —ऋ० ९।६५।१९, साम० ८३४।

प्रस्तुत मन्त्र प्रार्थना शैली का है। यह ज्ञान और उपासना से सम्बन्धित है। प्रार्थना वही सार्थक होती है जिसका कोई विशिष्ट उद्देश्य होता है। अपनी उन न्यूनताओं की पूर्ति के निमित्त उस सामर्थ्यवान् से याचना की जाती है जो उन्हें प्रदान करने की क्षमता रखता है। मानव-जीवन का उद्देश्य है अपने को द्युतिमान करना, ज्ञानपूर्वक कर्म करके स्वयं को देवत्व से विभूषित करना और दिव्यताओं का प्रसार करना। 'देव-वीतये' दिव्यताओं की व्याप्ति के लिए तीन वस्तुएँ चाहिएँ।

१. वर्चस्व २. सहनशीलता, धैर्य ३. उमंग, उत्साह।

मन्त्र में सह प्रतीक है सहनशक्ति का, 'जुवः' प्रतीक है उमंग, उत्साह, वेग का और रूपं वर्चस्व की प्राप्ति को दर्शाता है।

परमात्मा 'सोम' देव है। मन्त्र में सोम उस सौम्य सरस मनोहर देव का सम्बोधन है। वह 'सु+स्वानः' सुप्रेरक है। वह अपनी सुप्रेरणाओं के माध्यम से उन साधकों के जीवनों को उपर्युक्त गुणों से भरपूर कर देता है जो जीवनों को सौन्दर्य की भाँति सुन्दर बना देते हैं। साधक उपासना के माध्यम से उस परम मनोहर दिव्य देव के समीपस्थ होकर अपने जीवनों को भव्य बनाने के लिए और जगत् में दिव्यताओं की व्याप्ति के लिए असीम धैर्य और उत्साह के दायक वेग और शोभनीय गुणों से दीप्त वर्चस्व संजोने के लिए सर्वगुण सम्पन्न प्रभु से इनकी प्राप्ति के लिए प्रार्थना करते हैं—

स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम्।

ईशानः सोम! विश्वतः॥ —ऋ० ९।६१।६, सा० ७८९

यह मन्त्र ज्ञान और उपासना-परक है। इसमें परमात्मा को सोम नाम से सम्बोधित किया गया है। प्रभु आनन्दमय है, स्नेहशील है, परन्तु वह सर्वतः सबका स्वामित्व करता है। वह स्वयं नियमबद्ध है। साथ ही उसके नियम जगत् में अटूट हैं। वह सर्वशक्तिमान् होता हुआ भी प्रेममय है। जो आत्मना उसकी लगन लगाता है, वह उससे स्नेह करता है, वह उसे सौम्य बना देता है, अपने गुणों से भरपूर कर देता है।

साधक बनकर ज्ञानात्मा कह रहे हैं कि वह आनन्दमय स्वामी (नः) हमें (पुनानः) पवित्र करता हुआ (आभर) [हमारे अन्तःकरण को] भर रहा है, पूर रहा है (रयिम्) आध्यात्मिक ऐश्वर्यों से, आत्म-सम्पदाओं से और (वीर+वतीम् इषम्) वीर-वती इच्छाओं से।

आत्मा जब दिव्य ज्ञान के प्रकाश से अपने ज्योतिर्मय स्वरूप को देखता है, अजरत्व और अमरत्व का उसे जब बोध होता है तो सकल इच्छाओं की शक्ति को वीरवती बनाकर, दोषों, दुर्गुणों और दुर्व्यसनों से सर्वथा मुक्त होकर, जीवन को शोधकर उस आनन्दमय का प्रिय बनकर वह आनन्दमय हो जाता है, कर्मानुसार कष्टों को भी हँस-हँसकर सहन करता है, क्योंकि नियमों में बद्ध न्यायकारी अपने न्याय-नियम को नहीं त्यागता पर आत्मा को सशक्त बनाकर उन्हें सहन करने की क्षमता प्रदान करता है।

सोम का पान—परमसत्ता विराट् आनन्द-सिन्धु है। जब तक आत्म-इन्दु निज बिन्दु को उस सिन्धु में समाहित नहीं कर देता, उसे आनन्द की प्राप्ति नहीं होती। आनन्द ही वह दिव्य रस है जिसका पानकर आत्मतृषा बुझती है। युग-युगों से, कर्मानुसार, अनेक शरीरों के बन्धनों से निकलकर जब आत्मा को मानव देह की प्राप्ति होती है तब उसे आनन्द विहीनता की

अनुभूति होती है। सुख के समस्त साधन होते हुए भी व्याकुलता बनी रहती है। जिस अतृप्ति के कारण मन अशान्त और चित्त अस्थिर है, आत्मा उसे दूर करने के लिए साधनारत होता है।

मानव बुद्धिजीवी है। बाह्य विराट् जगत् में जो एक परमचेतना विद्यमान है जो सतत एकरूपा आनन्दमय है उसके समीपस्थ होकर व्याकुल आत्मा पुकारता है—**अध्वर्यो! द्राव्या त्वं सोममिन्द्रः पिपासति।**

—ऋ० ८।४।११, साम० ३०८

''हे अविनाशी आनन्द सोमी! तू अपना सोम उँडेल, आत्मा पान करना चाहता है।'' तब वह परमपिता अपनी संतति की आकांक्षा को, तृषा को तृप्त करता है। वह स्नेहमयी जगदम्बा अपनी संतति की पुकार को सुनती है जिसमें यह हृदयोद्गार व्यक्त किये जाते हैं—

यो वः शिवतमो रसस् तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः॥ —ऋ० १०।९।२; यजुः० ११।५१;
सा० १८।३८; अथर्व० १।५।२

''जो तुम्हारा कल्याणप्रद रस है उसका हमें इस संसार में स्नेहमयी माताओं के समान सेवन कराओ।''

तब वह जगज्जननी कह उठती है—

अध्वर्यो! अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ सृज।
पुनीहीन्द्राय पातवे॥ —ऋ० ९।५१।१; यजुः० २०।३१;
सा० ४९९।१२।२५

हे यजनशील! साधक इस अध्यात्मरस को सिद्ध—निष्पन्न करते हैं, चिन्तन के द्वारा इसे पवित्र अन्तःकरण में उँडेला जाता है। यदि तेरा आत्मा पान करना चाहता है तो अपने अन्तःकरण को तू पवित्र कर।

साधक सकल साधनाएँ केवल आत्म-शुचिताओं के लिए करता है। शुचिता में ही वह शक्ति है जो षड् रिपुओं को परास्त करती है। शुचिता के लिए त्रि दोषों का निवारण करना होता है, दुरित, दुर्गुण और दुर्व्यसनों को त्यागना पड़ता है। आत्मा शक्ति के परमस्रोत, उस परमधाम को अपना आश्रय बनाता है। वह प्रार्थना के माध्यम से आत्मचीत्कार करता है, उस परमपावक को पुकारता है। बाहर के पटों को बन्द करके अन्तर्मुखी होता है। धारणा को द्रुत गति से परिपक्व करता है, ध्यानावस्थित होकर तल्लीन हो जाता है उस परमपावन विराट् में जिसके आनन्द की असंख्य धाराएँ सर्वतः प्रवाहित हो रही हैं। साधक उन पावन धाराओं से अपनी समग्र मलिनताओं को धो डालता है, उनसे अपने को तरंगित करता है, रोमांचित हो उठता है। उस दिव्य सोम का पान कर मस्त हो जाता है, आनन्द में विभोर हो जाता है, अद्भुत शक्ति प्राप्त करता है और कह उठता है—

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।
इन्द्राय पातवे सुतः॥ —ऋ० ९।१।१; साम० ४६८, ६८९

"यही वह स्वादिष्ठ, आनन्दप्रद सोमधारा है जिसे पीकर आत्मा तृप्त होता है, मस्त होता है। प्रभु ने आत्मा की तृषा को शान्त करने के लिए इस सोमधारा को उसके पवित्र अन्तःकरण में प्रवाहित किया है।"

जिन्होंने इस पवित्र रस का पान किया वे सुकर्मा बनकर अमर हो गये, क्योंकि वह दिव्य पीयूष ही एकमेव साधन है जो साधक को परमधाम में अवस्थित करता है, रसान्वित करता है।

अतः साधको! दौड़ो। इस सोम के पान से अपनी अनबुझ प्यास को बुझाओ। जन्म-जन्मान्तर से व्याकुल आत्मा को मस्त बनाओ। परम आह्लाद को प्राप्त करो। मानव जीवन की सार्थकता इसी में है।

११. सोमपान से अमरता—

अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्।
किं नूनमस्मान् कृणवदरातिः, किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य॥

—ऋग्वेद ८।४८।३

मन्त्र में साधना के दो अमूल्य रहस्यों का सरल उद्घाटन है,

१. हमने सोमपान कर लिया है, हम अमृत हो गये हैं।

२. हमने ज्योति प्राप्त कर-ली है, हमने दिव्यताएँ प्राप्त कर-ली हैं। सोम का पान करने से अमृत की प्राप्ति होती है और ज्योति की प्राप्ति से दिव्यताओं की उपलब्धि होती है।

सोम के पान से तात्पर्य यहाँ ब्रह्मानन्द के सरस रस के पान से है और अमृत से तात्पर्य है निरवधि, आनन्दमय पद। ब्रह्म सोम के पान से निर्विष, निर्विकार, अनामय पद की प्राप्ति होती है। इसी पद का नाम शरीर में रहते हुए जीवन्मुक्त अवस्था है और शरीर त्याग के पश्चात् शाश्वत मोक्ष है। ज्योति की प्राप्ति से दिव्यताओं की प्राप्ति होती है। ज्योति से तात्पर्य उस आत्म-आभा और ब्रह्मप्रकाश से है जो आत्मसाक्षात्कार तथा ब्रह्म के संदर्शन से द्योतित होता है। आत्म-आभा और ब्रह्मप्रकाश से सकल दिव्यताओं का द्योतन होता है।

जब वैदिक योग के साधक योगी सोमपान से अमृत हो जाते हैं और ज्योति के आश्रय से दिव्यताएँ प्राप्त कर लेते हैं तो वे संसार और सांसारिकता से इतने ऊँचे और निर्लेप हो जाते हैं कि शत्रुता करनेवाले की शत्रुता और धूर्तता करनेवाले की धूर्तताओं से न आतंकित होते हैं न विचलित। किसी के दुर्व्यवहार का बदला वे कल्याणप्रद सद्व्यवहार से चुकाते हैं किसकी सामर्थ्य है कि ऐसे निर्लेप नारायण का बाल भी बाँका कर सके।

सामवेद मन्त्र ५२० में कहा है जो परमात्मा के सोमरस का पान कर

लेता है वह अमरत्व को प्राप्त हो जाता है।

१२. इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः।
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमीं मृजन्त्यायवः॥

—सामवेद ५२०

उपासक ध्यान और चिन्तन से सोम का निष्पादन करता है उसकी सहस्र धाराएँ इन्द्रियों के स्वामी आत्मा (इन्द्र) के आनन्द के निमित्त प्रवाहित होकर रोम-रोम को रोमांचित करती हैं। इस रस का पीनेवाला आनन्दमग्न होकर ऐसे सुकृत्य करता है जो उसे अमरत्व प्रदान करते हैं।

उपर्युक्त कुछ थोड़े-से मन्त्र सोम का परमात्मापरक अर्थ से सम्बन्धित प्रस्तुत किये। अन्य अनेक सूक्तों में भी सोम का परमात्मापरक अर्थ है। सोम का वैदिक साहित्य में विस्तार से वर्णन किया गया है। यहाँ पर हमने सोम से सम्बन्धित थोड़े-से मन्त्रों का संकलन प्रस्तुत किया है। अन्य और भी मन्त्र हैं जिनके अन्तर्गत सोम का अर्थ जल, चन्द्रमा, ऐश्वर्य, संन्यासी आदि बताया गया है।

संकलनकर्ता—
ब्र० राजेन्द्रार्य
गृह सं०—५-ब-८२ विद्युत विहार
पत्रालय—शक्तिनगर जनपद—सोनभद्र (उ०प्र०)
पिन—२३१२२२

शास्त्रार्थ का चैलेञ्ज

आर्यजगत् में इस समय सन्ध्या के सम्बन्ध में कुछ लोगों ने भ्रान्ति फैला रक्खी है कि सन्ध्या में 'जातवेदसे सुनवामः' मन्त्र भी बोलना चाहिए। ऐसा प्रचार महर्षि दयानन्द की भावनाओं के सर्वथा विरुद्ध है। सन्ध्या की पद्धति वही ठीक है जो महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 'पञ्चयज्ञविधिः' में लिखी है तथा सार्वदेशिक धर्मार्य सभा ने भी जिसे प्रामाणिक माना है, अतः इसके विरुद्ध जो व्यक्ति आन्दोलन कर रहे हैं उन्हें मेरी खुली चुनौती है वे जब चाहें जहाँ चाहें सत्य के निर्णयार्थ शास्त्रार्थ कर लें।

स्थान और समय का निर्धारण श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वतीजी से मिलकर या पत्र-व्यवहार करके कर लें।

—निवेदक
महोपदेशक पं० ज्वलन्तकुमार शास्त्री, एम०ए०, पी-एच०डी०
सदस्य—सार्वदेशिक धर्मार्य सभा
रीडर—संस्कृत विभाग—रणवीर रणञ्जय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, अमेठी—२२७४०५ (उ०प्र०)

शुभ सुचना—विशेष छूट

स्वामी जगदीश्वरानन्द जी द्वारा रूपान्तरित सत्यार्थप्रकाश का आधुनिक हिन्दी रूपान्तर प्रेस में पहुंच गया है । इसमें कम्प्यूटर कृत ४६४ पृष्ठ हैं । अन्त में अनुक्रमणिका भी दी गयी है । फिल्म बन गई हैं । छपाई आरम्भ हो गई है । उत्तम कागज व मोतियों जैसी छपाई होगी । अप्रैल मास के अन्त तक आकर्षक व मजबूत बाइंडिंग होकर विक्रयार्थ दुकान पर पहुंच जाएगा । इस ग्रन्थ का मूल्य १२५.०० रुपये है, परन्तु जो पाठक, सदस्य आर्यसमाजें ३१ मई १९९५ तक अपना आदेश और धन भेज देंगे, उन्हें आर्यसमाज स्थापना दिवस १ अप्रैल १९१५ के उपलक्ष्य में यह ग्रन्थ केवल १००.०० रु. प्रति के हिसाब से मिल जाएगा । डाक व्यय १२.०० ग्राहक को ही देना होगा । दो प्रतियों का डाक व्यय १८.०० होगा और ३ प्रतियों का २४.०० । यह संस्करण बहुत सीमित संख्या में छप रहा है । अपना धनादेश तुरन्त भेज दें ।

—अजयकुमार

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

नई सड़क, दिल्ली-६

आचार्य उदयवीर शास्त्री ग्रन्थावली

(पृष्ठ संख्या ७००० के लगभग डिमाई आकार में)

ग्रन्थावली में सम्मिलित ग्यारह ग्रन्थ

१.	न्यायदर्शन भाष्य	१५०-००
२.	वैशेषिकदर्शन भाष्य	१२५-००
३.	सांख्यदर्शन भाष्य	१००-००
४.	योगदर्शन भाष्य	१२५-००
५.	वेदान्तदर्शन भाष्य (ब्रह्मसूत्र)	१८०-००
६.	मीमांसादर्शन का विद्योदय भाष्य	३५०-००
७.	सांख्यदर्शन का इतिहास	२५०-००
८.	सांख्य सिद्धान्त	२००-००
९.	वेदान्तदर्शन का इतिहास	२००-००
१०.	प्राचीन सांख्य सन्दर्भ	१००-००
११.	वीर तरंगिणी (लेखों का संग्रह)	२५०-००

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-प्रदायिनी

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती की

सरल-सुबोध आध्यात्मिक पुस्तकें

आनन्द गायत्री कथा	१४-००
एक ही रास्ता	१२-००
शंकर और दयानन्द	८-००
मानव जीवन-गाथा	१३-००
सत्यनारायण व्रत कथा	५-००
भक्त और भगवान	१२-००
उपनिषदों का सन्देश	१८-००
घोर घने जंगल में	२०-००
मानव और मानवता	३०-००
प्रभु मिलन की राह	२०-००
यह धन किसका है ?	२२-००
वोध-कथाएँ	१६-००
दो रास्ते	१७-००
दुनिया में रहना किस तरह ?	१५-००
तत्वज्ञान	२०-००
प्रभु-दर्शन	१५-००
प्रभु-भक्ति	१२-००
महामन्त्र	१२-००
सुखी गृहस्थ	७-००
त्यागमयी देवियाँ	८-००

अंग्रेजी पुस्तकें

Anand Gayatry Katha	30-00
The Only Way	30-00
Bodh Kathayen	40-00
How To Lead Life?	30-00

जीवनी

महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)	१०-००
महात्मा आनन्द स्वामी (हिन्दी)	२५-००

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती कृत विद्वत्तापूर्ण पुस्तकें

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००-००
वाल्मीकि रामायण	१७५-००
षड्दर्शनम्	१५०-००
चाणक्यनीति दर्पण	६०-००
विदुरनीतिः	४०-००
ब्रह्मचर्य गौरव	९-००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	९-००
दिव्य दयानन्द	१२-००
कुछ करो कुछ बनो	१२-००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१२-००
आदर्श परिवार	१५-००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	१५-००
वेद सौरभ	१२-००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५-००
वैदिक विवाह पद्धति	८-००
ऋग्वेद सूक्ति सुधा	२५-००
यजुर्वेद सूक्ति सुधा	१२-००
अथर्ववेद सूक्ति सुधा	१५-००
सामवेद सूक्ति सुधा	१२-००
ऋग्वेद शतकम्	१०-००
यजुर्वेद शतकम्	१०-००
सामवेद शतकम्	१०-००
अथर्ववेद शतकम्	१०-००
भक्ति संगीत शतकम्	६-००
चमत्कारी ओषधियाँ	१२-००
घरेलू ओषधियाँ	१२-००
चतुर्वेद शतकम् (सजिल्द)	५०-००
स्वर्ण पथ	१२-००
प्रार्थना लोक	४०.००
प्रार्थना-प्रकाश	८.००
प्रभात-वन्दन	८.००
शिवसंकल्प	८.००

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

आदि शंकराचार्य वेदान्ती नहीं थे	*स्वामी विद्यानन्द सरस्वती*	४०-००
वेद-मीमांसा	*स्वामी विद्यानन्द सरस्वती*	५०-००
सृष्टि विज्ञान और विकासवाद	*स्वामी विद्यानन्द सरस्वती*	४०-००
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	*पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार*	१५०-००
दयानन्द जीवन चरित	*लेखक : देवेन्द्र मुखोपाध्याय* *अनु० : पं० घासीराम*	२५०-००
शतपथब्राह्मण (तीन खण्ड)	*अनु० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय*	१८००-००
महात्मा हंसराज (जीवनी)	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	६०-००
महात्मा हंसराज ग्रन्थावली (चार खण्ड)	*लेखक-सम्पादक प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	२४०-००
आर्य सूक्ति सुधा	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	१२-००
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (ग्यारह खण्ड)	*ले० स० डॉ० भवानीलाल भारतीय* *तथा प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु*	६६०-००
चयनिका	*क्षितीश वेदालंकार*	१२५-००
वैदिक मधुवृष्टि	*पं० रामनाथ वेदालंकार*	६०-००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	*आ० प्रियव्रत वेदवाचस्पति*	५०-००
महाभारत सूक्तिसुधा	*पं० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण*	४०-००
श्यामजी कृष्ण वर्मा	*डॉ० भवानीलाल भारतीय*	२४-००
आर्यसमाज विषयक साहित्य परिचय	*डॉ० भवानीलाल भारतीय*	२५-००
कल्याणमार्ग का पथिक (स्वामी श्रद्धानन्द की जीवनी)	*डॉ० भवानीलाल भारतीय*	प्रेस में
आर्यसमाज के बीस बलिदानी	*डॉ० भवानीलाल भारतीय*	१५-००
धर्म का स्वरूप	*डॉ० प्रशान्त वेदालंकार*	५०-००
ऋषि बोध कथा	*स्वामी वेदानन्द सरस्वती*	१०-००
वैदिक धर्म	*स्वामी वेदानन्द सरस्वती*	२५-००
ईश्वर का स्वरूप	*सुरेशचन्द्र वेदालंकार*	प्रेस में
सहेलियों की वार्ता	*सुरेशचन्द्र वेदालंकार*	२०-००
सन्ध्या रहस्य	*पं० विश्वनाथ विद्यालंकार*	२५-००
आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो ?	*प्रो० रामविचार एम० ए०*	४-००
वैदिक धर्म का संक्षिप्त परिचय	*ओम्प्रकाश त्यागी*	६-००
पूर्व और पश्चिम	*नित्यानन्द पटेल*	३५-००
सन्ध्या विनय	*नित्यानन्द पटेल*	६-००
गीत सागर	*पं० नन्दलाल वानप्रस्थी*	२५-००
वेद भगवान बोले	*पं० वा० विष्णुदयाल (मारीशस)*	१५-००
हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष	*पं० नरेन्द्र*	१५-००
आचार्य शंकर का काल	*आ० उदयवीर शास्त्री*	१०-००

याज्ञिक आचार-संहिता	पं० वीरसेन वेदश्रमी	४५-००
प्राणायाम विधि	महात्मा नारायण स्वामी	२-००
प्रेरक बोध कथाएँ	नरेन्द्र विद्यावाचस्पति	१५-००
ओंकार गायत्री शतकम्	कवि कस्तूरचन्द	३-००
जीवात्मा	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	४०.००
सन्ध्या : क्या, क्यों, कैसे	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	१५-००
विवाह और विवाहित जीवन	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	१८-००
जीवन गीत	धर्मजित् जिज्ञासु	१२-००
पंचमहायज्ञविधि	महर्षि दयानन्द	३-००
व्यवहारभानु	महर्षि दयानन्द	४-००
आर्योद्देश्यरत्नमाला	महर्षि दयानन्द	१-५०
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	महर्षि दयानन्द	१-५०
ब्रह्मचर्यसन्देश	सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	२५-००
श्रीमद्भगवद्गीता	पं० सत्यपाल विद्यालंकार	१५-००

WORKS OF SVAMI SATYAPRAKASH SARASVATI

Founders of Sciences in Ancient India (Two Vols.)	500-00
Coinage in Ancient India (Two Vols.)	600-00
Geometry in Ancient India	350-00
Brahmgupta and His Works	350-00
God and His Divine Love	5-00
The Critical and Cultural Study of Satapath Brahman	In Press
Speeches, Writings & Addresses Vol.I : VINCITVERITAS	150-00
Speeches Writings & Addresses Vol.II : ARYA SAMAJ; A RENAISSANCE	150-00
Speeches, Writings & Addresses Vol. III : DAYANAND ; A PHILOSOPHER	150-00
Speeches, Writings & Addresses Vol. IV THREE LIFE HAZARDS	150-00

कर्म काण्ड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका	३-००	संध्या-हवन-दर्पण (उर्दू)	८-००
पंचयज्ञ प्रकाशिका	८-००	सत्संग मंजरी	६-००
वैदिक संध्या	१-००	Vedic Prayer	3-00
सामाजिक पद्धतियां (मदनजीत आर्य)	१२-००		

घर का वैद्य

जब प्रकृति की अनमोल दवाइयाँ आपको आसानी से उपलब्ध हों तो गोली, पुड़िया, कैप्सूल या इन्जेक्शन की क्या जरूरत है ?

घर का वैद्य—प्याज	७-००	घर का वैद्य—हल्दी	७-००
घर का वैद्य—लहसुन	७-००	घर का वैद्य—बरगद	७-००
घर का वैद्य—गन्ना	७-००	घर का वैद्य—दूध-घी	७-००
घर का वैद्य—नीम	७-००	घर का वैद्य—दही-मट्ठा	७-००
घर का वैद्य—सिरस	७-००	घर का वैद्य—हींग	७-००
घर का वैद्य—तुलसी	७-००	घर का वैद्य—नमक	७-००
घर का वैद्य—आँवला	७-००	घर का वैद्य—बेल	७-००
घर का वैद्य—नींबू	७-००	घर का वैद्य—शहद	७-००
घर का वैद्य—पीपल	७-००	घर का वैद्य—फिटकरी	७-००
घर का वैद्य—आक	७-००	घर का वैद्य—साग-भाजी	७-००
घर का वैद्य—गाजर	७-००	घर का वैद्य—अनाज	७-००
घर का वैद्य—मूली	७-००	घर का वैद्य—फल-फूल	७-००
घर का वैद्य—अदरक	७-००	घर का वैद्य—धूप-पानी	१५-००

सभी छब्बीस पुस्तकें छः आकर्षक जिल्दों में भी उपलब्ध

घर का वैद्य-१ (प्याज, लहसुन, गन्ना, नीम, सिरस)	४५-००
घर का वैद्य-२ (तुलसी, आँवला, नींबू, पीपल, आक)	४५-००
घर का वैद्य-३ (गाजर, मूली, अदरक, हल्दी, बरगद)	४५-००
घर का वैद्य-४ (दूध-घी, दही-मट्ठा, हींग, नमक, बेल)	४५-००
घर का वैद्य-५ (शहद, अनाज, फिटकरी, साग-भाजी, फल-फूल)	४५-००
घर का वैद्य—धूप-पानी	४०-००

चित्र

स्वामी दयानन्द (झण्डेवाला)	१६" × २२" बहुरंगी	६-००
स्वामी दयानन्द (कुर्सी)	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी दयानन्द (आसन)	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी श्रद्धानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
गुरु विरजानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
पण्डित लेखराम	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी दर्शनानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
पं० गुरुदत विद्यार्थी	१८" × २२" एक रंग	३-००
महात्मा हंसराज	१८" × २२" एक रंग	३-००

बाल साहित्य

आर्य नेताओं की बालोपयोगी जीवनियाँ

महर्षि दयानन्द	त्रिलोकचन्द विशारद	४-५०
गुरु विरजानन्द	त्रिलोकचन्द विशारद	४-५०
स्वामी श्रद्धानन्द	त्रिलोकचन्द विशारद	४-५०
धर्मवीर पं० लेखराम	त्रिलोकचन्द विशारद	३-००
मुनिवर पं० गुरुदत्त	त्रिलोकचन्द विशारद	३-००
स्वामी दर्शनानन्द	सत्यभूषण वेदालंकार	३-००
महात्मा हंसराज	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	४-५०
वीतराग सेनानी स्वामी स्वतन्त्रानन्द	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	४-५०
तपोधन महात्मा नारायण स्वामी	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	५-५०
देवतास्वरूप भाई परमानन्द	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	५-५०
नैतिक शिक्षा—प्रथम	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	२.५०
नैतिक शिक्षा—द्वितीय	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	२.५०
नैतिक शिक्षा—तृतीय	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	३.५०
नैतिक शिक्षा—चतुर्थ	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	४-५०
नैतिक शिक्षा—पंचम	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	४.५०
नैतिक शिक्षा—षष्ठ	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	५.५०
नैतिक शिक्षा—सप्तम	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	५.५०
नैतिक शिक्षा—अष्टम	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	५.५०
नैतिक शिक्षा—नवम	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	८००
नैतिक शिक्षा—दशम	सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०	८००
ब्रह्मचर्य गौरव	स्वामी जगदीश्वरानन्द	९००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	स्वामी जगदीश्वरानन्द	९००
स्वर्ण पथ	स्वामी जगीदश्वरानन्द	१२००
आचार्य गौरव	ब्र० नन्दकिशोर	५००
त्यागमयी देवियाँ	महात्मा आनन्द स्वामी	८००
हमारे बालनायक	सुनील शर्मा	८००
देश के दुलारे	सुनील शर्मा	८००
हमारे कर्णधार	सुनील शर्मा	८००
आदर्श महिलाएँ	नीरू शर्मा	८००
कथा पच्चीसी	स्वामी दर्शनानन्द	८००
बाल शिक्षा	स्वामी दर्शनानन्द	२.५०
वैदिक शिष्टाचार	हरिश्चन्द्र विद्यालंकार	३००
दयानन्द चित्रावली	पं० रामगोपाल विद्यालंकार	२५००
आर्य सूक्ति सुधा	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	१२-००

R.No. 622/57—Regd. No. DL-12026/95

हमारा १९९५ का बृहद् विशेषाङ्क :

दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह

यह ग्रन्थ 'दयानन्द चरित' आकार में २०×३०/८ लगभग ६०० पृष्ठ का सजिल्द होगा।

स्वामी दर्शनानन्द जी ट्रैक्ट लिखने की मशीन थे। जीवन में बहुत ट्रैक्ट लिखे। सब उर्दू में लिखे। अनेक विद्वानों ने उनका हिन्दी अनुवाद किया।

इस ग्रन्थ-संग्रह में हम दर्शनानन्द जी के ६४ ट्रैक्ट दे रहे हैं। ईश्वर विचार, ईश्वरप्राप्ति, वेद, मुक्ति, जीव का अनादित्व, गुरुकुल, भोला यात्री, द्वैतवाद आदि अनेक विषयों पर अत्यन्त खोजपूर्ण सामग्री इस ग्रन्थ में पाठकों को मिलेगी।

इस ग्रन्थ का सम्पादन करेंगे आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान् **स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती।**

जिन मन्त्रों, सूत्रों और श्लोकों के पते नहीं हैं, उन्हें खोजकर देने का स्वामी जी का भरसक प्रयत्न रहेगा। आधुनिक साज-सज्जा से सुभूषित कलापूर्ण मुद्रण होगा। बढ़िया कागज होगा। इस ग्रन्थरत्न का मूल्य २५० रुपये होगा। परन्तु वेद-प्रकाश के सदस्यों को केवल १५० में मिलेगा। इसमें एक वर्ष तक वेदप्रकाश भी निःशुल्क मिलता रहेगा। विशेषाङ्क को भेजने का खर्च भी हम स्वयं वहन करेंगे।

ऐसा भव्य और दिव्य ग्रन्थ पहली बार छप रहा है। हम स्वामी दर्शनानन्द जी का सच्चा श्राद्ध कर रहे हैं। आर्य साहित्य में यह एक ठोस वृद्धि होगी।

हमारा 'वेदप्रकाश' के सदस्यों और पाठकों से निवेदन है कि वे स्वयं ग्राहक बनें और अन्यों को बनायें।

शीघ्रता करें। ग्रन्थ सीमित संख्या में ही छपेगा।

यदि पाठकों ने उत्साह दिखाया तो इसका दूसरा भाग भी देने का प्रयत्न करेंगे।

'वेद की मूल संहिताओं' के प्रकाशन योजना के लिए कई आर्यसमाजों ने हमारा उत्साह बढ़ाया है और इस योजना के लिए भी आर्यसमाज आगे आयें तो बृहद् विशेषांक प्रकाशित करने की योजना को बल मिलेगा तथा भविष्य में और अधिक ठोस योजनाओं पर कार्य करने की शक्ति मिलेगी।

प्रकाशक-मुद्रक अजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेद प्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।
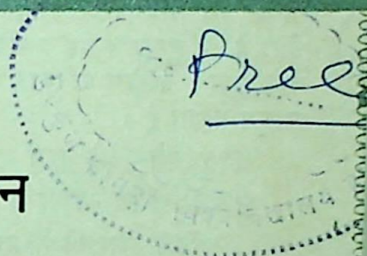
श्रेष्ठ जीवन

त्वया वयमुत्तमं धीमहे वयो बृहस्पते पप्रिणा सस्निना युजा ।
मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुरीशत प्र सुशंसा मतिभिस्तारिषीमहि ॥ २।२३।१०

पदार्थ :—हे (बृहस्पते) विद्वन् ! (पप्रिणा) परिपूर्ण (सस्निना) शुद्ध पवित्र पदार्थ (युज) युक्त (त्वया) तुम्हारे साथ वर्तमान (वयम्) हम लोग (उत्तमम्) श्रेष्ठ (वयः) जीवन को (धीमहे) धारण करें जिससे (अभिदिप्सुः) सब ओर से कपट की इच्छा करनेवाला (दुःशंसः) जिसकी दुष्ट कहावत प्रसिद्ध है वह चोर (नः) हम लोगों का (मा ईशत) ईश्वर न हो और (मतिभिः) प्रजाओं के साथ वर्तमान (सुशंसाः) जिनकी सुन्दर स्तुति ऐसे हम लोग (प्र, तारिषीमहि) उत्तमता से तरें सर्व विषयों के पार पहुंचें ।

भावार्थ :—जो पूर्ण विद्यावाले योगी शुद्धात्माजनों का संग करते हैं, वे दीर्घजीवी होते हैं; जो विद्वानों के सहचारी होते हैं उनके लिए दुःख देने को कोई भी समर्थ नहीं हो सकते हैं ।

बोध-कथा

सच्चा दान

महाभारत का प्रसंग है। १८ दिन के भीषण संग्राम के बाद भीष्म पितामह और दूसरे गुरुओं का उपदेश ग्रहण कर देश में शान्ति होने पर महाराजा युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया। यज्ञ की पूर्णाहुति पर महाराजा युधिष्ठिर ने अपने अक्षय कोश से अन्न, वस्त्र और धन का खुला दान किया। अपंगों, दीनों, दुखियों, दरिद्रों, श्रेष्ठ ब्राह्मणों, विद्वानों, तपस्वियों, याचकों को मुक्त हस्त से मुंहमांगा धन-वैभव, वस्तुएं, गौएं दी गयीं। युधिष्ठिर के महान् दान का शोर मच गया। जहां याचक, जनता और ब्राह्मण वर्ग इस महादान से तृप्त होकर प्रसन्न हो रहा था, उसी समय एक अचम्भा हुआ। दान और यज्ञ की जूठन पर लोटता-पलटता एक नेवला आया। उसकी आँखें नीली थीं और उसका आधा शरीर स्वर्ण की तरह उज्ज्वल था। पहले तो वह चिल्लाया फिर उसने कहा—"इस यज्ञ में एकत्र राजाओ! तुम्हारा यह यज्ञ कैसा है? तुम्हारा यह तथाकथित महायज्ञ कुरुक्षेत्र में उञ्छवृत्ति पर जीवित रहने वाले उदार ब्राह्मण परिवार के सेर भर के तुल्य सर्वस्वदान की तुलना में निम्न मालूम पड़ता है।

सक्तुप्रस्थेन वो नायं यज्ञस्तुल्यो नराधिपाः।
उञ्छवृत्तेर्वदान्यस्य कुरुक्षेत्रनिवासिनः ।। महा० आश्व० ९०।७

चकित सभा की जिज्ञासा का समाधान करते हुए नेवले ने कहा—"कुछ दिन पहले धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में कबूतर की तरह फसल कटने के बाद खेत से अन्न का एक-एक दाना एकत्र करने की उञ्छवृत्ति से एक ब्राह्मण अपने कुटुम्ब का पालन करते थे। एक बार भयंकर अकाल पड़ा, कई दिन वह सपरिवार भूखे रहे, फिर उन्हें सेर भर जौ मिले, उसका सत्तू बनाकर उन्होंने उसे चार हिस्सों में बांटा। एक हिस्सा पुत्र के लिए, दूसरा भाग पुत्रवधू के लिए, तीसरा हिस्सा पत्नी के लिए और चौथा भाग अपने लिए रखा।

ब्राह्मण कुटुम्ब खाने के लिए बैठा था, एक ब्राह्मण अतिथि वहां आए। उन्हें देखकर ब्राह्मण ने अतिथि से कहा—हे ब्राह्मण देवता, न्यायपूर्वक उपार्जित यह पवित्र सत्तू भेंट है, आप इसे स्वीकार करें। (शुचयः सक्तवश्चेमे नियमोपार्जिताः प्रभो प्रतिगृह्णीष्व भद्रं ते मया दत्ता द्विजर्षभः ।। महा० आश्व० ९।३९) अतिथि ने वह सत्तू खा लिया, पर उसकी भूख दूर नहीं हुई। यह देखकर ब्राह्मणी ने अपना सत्तू का हिस्सा दे दिया। यह हिस्सा खाकर भी अतिथि भूखा रहा, तब ब्राह्मण के बेटे ने आग्रह करके सत्तू का अपना हिस्सा दे दिया। अतिथि फिर भी भूखा जान पड़ा, इस पर पुत्रवधू ने अपना सत्तू का भाग भी दे दिया, सत्तू का चौथा भाग खाने पर अतिथि सन्तुष्ट हो गया।

अतिथि स्वयं धर्मराज थे। ब्राह्मण के श्रेष्ठ दान से वह प्रसन्न होकर बोले—"हे ब्राह्मण, प्राणसंकट के समय यह सब सत्तू तुमने शुद्ध हृदय से देकर अपने पुण्य कर्म से स्वर्गलोक पर विजय पा ली। तुमने यह जो दान का फल पाया है, उसकी तुलना बहुत दान वाले अश्वमेध और राजसूय यज्ञ से भी नहीं की जा सकती। यह सत्तू दान देकर तुमने अक्षय ब्रह्मलोक जीत लिया। नेवले ने अन्त में कहा—पूरा ब्राह्मण परिवार जब स्वर्ग चला गया, तो वहां गिरे हुए अन्न के कणों पर लोटने से मेरा आधा मस्तक और शरीर सोने का हो गया। मैं युधिष्ठिर के महायज्ञ की प्रशंसा सुनकर आया था, परन्तु महायज्ञ के महादान की जूठन पर मेरा लोटना व्यर्थ हो गया, तभी मैं कह सकता हूं कि यह महायज्ञ उस ब्राह्मण के सत्तूदान के बराबर नहीं था।

प्रस्तुति—नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

ओ३म्

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ४४, अंक १०   वार्षिक मूल्य : बीस रुपये   मई १९९५

सम्पा० अजयकुमार   आ० सम्पादक : स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

सामान्य जिज्ञासु के लिए उपनिषदों की देन—५

जीवन को निर्मल कैसे करें : मुण्डक उपनिषत् का लक्ष्य

उपनिषद् में ऐसी विद्या का विवेचन : जिससे सब कुछ जाना जा सकता है

मुण्डक का अर्थ है मूंडने वाला, जिस प्रकार नाई या नापित सिर का मुण्डन करता हुआ सिर के बालों के साथ वहाँ जमी मैल को दूर करता है, उसी प्रकार मुण्डक उपनिषत् का चिन्तक ऋषि इस तत्त्व ज्ञान के माध्यम से, इस की शिक्षा के माध्यम से जीवन को निर्मल करना चाहता है। इस उपनिषत् में उल्लेख है कि बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं के स्वामी एवम् अनेक विद्यालयों के संचालक शुनक के पुत्र शौनक अंगिरा ऋषि के समीप पहुंचे। शौनक ने ऋषि से जिज्ञासा की—"भगवन्, वह कौन-सी विद्या है, जिसके जानने पर सब जान लिया जाए?" अंगिरा ने बतलाया—देवों में प्रथम देव विश्व के कर्त्ता जगत् के रक्षक ब्रह्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को सब विद्याओं की आधार ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया। अथर्वा ने यह ब्रह्म विद्या अंगिरा को दी। अंगिरा ने भारद्वाज गोत्री सत्यवाह को वह उपदेश दिया। भारद्वाज ने वह विद्या—परा और अपरा दोनों प्रकार की अंगिरा को सिखलाई।

अंगिरा ने शौनक को बतलाया—"अपरा विद्या में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष हैं। सम्बद्ध मन्त्र इस प्रकार है—

तस्मै स होवाच द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म, यद् ब्रह्मविदो वदन्ति, परा चैवापरा च ॥४॥ तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः

सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ।।५।।

और परा विद्या कौन-सी है, जिसके जानने से अक्षर ब्रह्म-जाना जाता है । ब्रह्म के स्वरूप का चित्रण करते हुए ऋषि कहते हैं, ब्रह्म विद्या से जो ब्रह्म जाना जाता है वह ज्ञानेन्द्रियों से अज्ञेय है, उसे ग्रहण नहीं किया जा सकता है। उसका कोई वंश नहीं, कोई वर्ण-रूप, रंग नहीं, उसके न नेत्र हैं और न कोई श्रवण हैं, उसके हाथ-पैर भी नहीं, हां वह सर्वत्र सर्वव्यापक है, वह नित्य है सूक्ष्मातिसूक्ष्म है, वह अविनाशी है, उस ब्रह्म को धीर पुरुष जान लेते हैं । ऋचा इस प्रकार है–

यत्तदद्रृश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम् । नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः।।६।।

एक ब्रह्म से नानाविध सृष्टि का सृजन प्रकार स्पष्ट करते हुए ऋषि बतलाते हैं-जैसे एक मकड़ी जाले का सृजन करती है फिर उसे ग्रहण कर समेट लेती है, जैसे पृथिवी में से ओषधियां पैदा हो जाती हैं; जैसे जीवित पुरुष में से केश और रोम निकल आते हैं, उसी तरह उस अक्षर ब्रह्म से यह विश्व उत्पन्न होता है । मन्त्र इस प्रकार है–

यथा ऊर्णनाभिः सृजते गृह्णते च, यथा पृथिव्याम् ओषधयः सम्भवन्ति। यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि तथा अक्षरात् सम्भवति इह विश्वम् ।।७।।

ऋषि बतलाते हैं–ब्रह्म जब विकासोन्मुख हुआ, तब उसने तपस्या की। तपस्या से ब्रह्म केन्द्रित हुआ, उसी से अन्न का उत्पादन हुआ, फिर अन्न से क्रमशः प्राण, मन, सत्य, लोक, कर्म और कर्म से अमृत संज्ञा वाला कर्मफल पैदा होता है । सम्बन्धित मन्त्र इस प्रकार है–

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते । अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ।।८।।

प्रकरण का उपसंहार करते हुए ऋषि कहते हैं–जो सर्वज्ञ और सर्ववित् है जिसका तप ज्ञानमय है, उस अक्षर ब्रह्म से ही यह ब्रह्म (हिरण्यगर्भ) नाम, रूप और अन्न उत्पन्न होता है । यह अक्षर ब्रह्म सर्वज्ञ है, सब कुछ जानने के कारण वह सर्ववित् है, जिसका तप ज्ञान स्वरूप 'यस्य ज्ञानमयं तपः' है, इसी कार्य ब्रह्म हिरण्यगर्भ से देवदत्त, विश्वमित्र आदि नाम, शुक्ल-नील स्वरूप तथा व्रीहि, यव गेहूं आदि विविध अन्न उत्पन्न होते हैं ।

उपनिषदों की दृष्टि में सृष्टि का उत्पन्न होना एक तप है **यस्य ज्ञानमयं तपः** । तप का अभिप्राय केवल कष्ट सहना ही नहीं प्रत्युत ज्ञानमय तप करना है, प्रदर्शन के लिए कांटों या आग आदि पर लेटना चलना नहीं । सर्वज्ञ सर्वविद् परमेश्वर ने जब अन्न - प्रकृति

के सहयोग से विकास करना प्रारम्भ किया, तब एक ओर ब्रह्म की अध्यात्म -सत्ता थी और विकास के दूसरे छोर पर प्रकृति का प्रतीक अन्न था । एकत्व का प्रतिनिधि ब्रह्म है तो नानात्व का प्रतिनिधि अन्न है । सृष्टि के पत्ते-पत्ते को जान कर हम ज्ञान की प्रक्रिया चलाते हैं। शाखाएं जिस वृक्ष में हैं, वृक्ष जिस भूमि पर है, उस एक का ज्ञान होने पर सृष्टि का सब कुछ जाना जा सकता है-ऋषि अंगिरा ने शिष्य शौनक को यही शिक्षा दी ।

उपनिषत्कार ब्रह्माण्ड सृजन की चर्चा के बाद जानने योग्य दो-अपरा, परा विद्याओं की चर्चा करते हैं । उनमें से अपरा विद्या का प्रमुख उद्देश्य जीवन-व्यवहार को कृतकार्य बनाना है और परा विद्या मुख्यतया अन्तिम सत्ता के स्वरूप का निरूपण करती है । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है, अपरा विद्या में प्रमुख शिक्षा कर्म की है और परा विद्या में ज्ञान की विशेष महत्ता है । अब मुण्डक उपनिषत् के दूसरे खण्ड में कर्म और ज्ञान दोनों ही विषयों की चर्चा की गई है । ऋषि पहले कर्म की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं-यह सत्य है, मनीषियों ने वेद मन्त्रों में जो कर्म और विधि-विधान देखे, कर्मकाण्ड का यह विधि-विधान अधिकतर त्रेता युग में भी फैलता गया। इसलिए उसी कर्मकाण्ड पर निर्धारित रूप से आचरण करो । हे सत्य की कामना करने वाले पुरुषो, सुकर्म करने का तुम्हारा यही रास्ता है। (**एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके।**) यज्ञादि के सकाम-कर्म के रास्ते पर चलने की प्रेरणा देते हुए कर्मकाण्डी लोग यज्ञ की अग्नि का चित्र खींचते हुए कहते हैं-जब समिधाओं से अग्नि प्रदीप्त हो और ज्वालाएँ लपटें दे रही हों, तब आज्य भाग नामक घी की दो आहुतियों के मध्य श्रद्धा की आहुति प्रस्तुत करो। (**समिद्धे हव्यवाहने तदा आज्यभागौ अन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेत् श्रद्धया हुतम्**) ऋषि बतलाते हैं- यथाविधि आहुतिप्रदान रूप कर्ममार्ग (स्वर्गादि) लोकों की प्राप्ति का साधन है, उन्हें विधिपूर्वक करना बड़ा कठिन कार्य है, यदि उन्हें विधिपूर्वक पूर्ण न किया जाए तो अनेक विपित्तियां आ सकती हैं ।

ऋषि चेतावनी देते हैं-जो पुरुष कर्मकाण्डी अमावस्या पर किया जाने वाला दर्शेष्टि, पूर्णमासी पर किया जाने वाला पौर्णमासेष्टि, वर्षा के चातुर्मास और शरत्काल में किए जाने वाला आग्रयण यज्ञ नहीं करता, जो ऐसे अवसरों पर अतिथियों की पूजा नहीं करता, जो उचित समय पर विधि के अनुसार इन कर्मों को नहीं करता, जो कर्मकाण्डी अग्निहोत्र में सब देवताओं की पूजा नहीं करता (**अवैश्वदेवम्**) जो विधिरहित हवन करता है (**अविधिना हुतम्**) ऐसे कर्मकाण्डियों के सात लोकों का नाश हो जाता है (**आ सप्तमान् तस्य लोकान् हिनस्ति ।**) मानो उसकी सात पीढ़ियों का नाश कर देता है।

कर्मकाण्डी अग्निहोत्र में जिस अग्नि को प्रज्वलित करता है, उस अग्नि की काली, कराली (भयानक), मनोजवा (मन की तरह चंचल) सुलोहिता (बहुत लाल) धूम्रवर्णा (धुएं के रंग की) स्फुलिंग (चिनगारी) वाली, विश्वरूपी (अनेक प्रकार की कान्ति वाली सात जिह्वाएं होती हैं। जो याज्ञिक अग्निहोत्र की इन प्रकाशमान जिह्वाओं में यथासमय आहुतियां देता है, उसे सूर्य की रश्मियां वहां पहुंचा देती हैं, जहां देवताओं के अध्यक्ष का निवास स्थान है (**तम् नयन्ति एताः सूर्यस्य रश्मयः यत्र देवानाम् पतिः एकः अधिवासः।**)

याज्ञिक कर्मकाण्डी अग्निहोत्र में जिन अहुतियों को देता है, वे आहुतियां-आओ, आओ कहती हुईं उस यजमान को तेजोमयी सूर्य की किरणों के साथ उठा ले जाती हैं। (**सुवर्चस सूर्यस्य रश्मिभिः यजमानं वहन्ति ।**) ये आहुतियां प्रेम और सत्कार की मीठी वाणी बोलती हुईं यजमान का स्तवन करती हुईं मानो कहती हैं-यह पुण्य ब्रह्मलोक है, जो तुम्हारे सुकृत से तुम्हें प्राप्त हुआ है। (**प्रियां वाचम् अभिवदन्त्यः अर्चन्त्यः एष वः पुण्यः सुकृतः ब्रह्मलोकः।**)

निरा कर्मकाण्ड फलदायी नहीं

ऋषि अंगिरा याज्ञिकों-कर्मकाण्डियों के ज्ञानरहित कर्म को सीमित फल वाला कहते हैं । यह अविद्या, कामना और कर्म का कार्य है, फलतः असार और दुःख का मूल है । उसकी निन्दा करते हुए ऋषि कहते हैं: यजमान, उसकी पत्नी एवं १६ ऋत्विजों द्वारा किए गए यज्ञ कर्म अस्थिर एवं नाशवान् हैं । उन्हें ही श्रेय मानने वाले पुनः बुढ़ापे और मृत्यु को प्राप्त करते हैं । मुनि आगे बतलाते हैं। अविद्या में फंसे हुए जो अपने को ही धीर और पण्डित मानते हैं, ऐसे मूढ़ पुरुषों की अवस्था उन अन्धों के तुल्य है, जिनका पथ-प्रदर्शन अन्धे ही करते हैं वे लोग इधर-उधर भटकते फिरते हैं ।

ऋषि बतलाते हैं बहुधा अविद्या में फंसे हुए मूर्ख लोग जो बाल-बुद्धि पुरुष होते हैं-'हम कृतार्थ हो गए हैं। -इस प्रकार व्यर्थ का अभिमान एवं फल में आसक्ति के कारण यथार्थ स्थिति न जानने के कारण क्षीण हुए इस लोक के कारण-कर्मफल भुगत चुकने के बाद स्वर्ग से च्युत हो जाते हैं ।(**यत् कर्मिणः प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते।**)

इसी प्रकार जो कर्मकाण्डी यज्ञकर्म (इष्ट) और जनहित (पूर्त्त) कार्यों को ही श्रेष्ठ मानते हैं और किसी अन्य वस्तु को श्रेयस्कर नहीं मानते, वे अपने कर्मों का फल स्वर्गलोक में भोगने के बाद वे इस लोक में और इससे भी निकृष्ट लोक में प्रवेश करते हैं।(**नाकस्य पृष्ठे ते सुकृते अनुभूत्वा इमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति ।**)

अंगिरा ऋषि की सम्मति में यज्ञ कर्म एवं जनहित (इष्ट तथा आपूर्त्त, वापी, कूप, तडागादि पुरुषार्थ के स्मार्त कर्म) के कर्मों तक अपने को बांधे रखना मूर्खता का काम है। कर्म की अपेक्षा ज्ञान की अधिक महत्ता है तो व्यक्ति को गृहस्थ के बन्धनों से विमुक्त होकर वनों के उपयोगी वातावरण में पहुंचना चाहिए। ऋषि अंगिरा का परामर्श है जो ज्ञानमार्गी तपस्या और श्रद्धा के साथ वन में निवास करते हैं, वे हृदय से शान्त और मस्तिष्क से विद्वान् होते हुए भिक्षावृत्ति का आचरण करते हुए मृत्यु के अनन्तर सूर्यद्वार से उत्तरायण मार्ग से वहां पहुंचते हैं, जहां अमर अव्यय अविनाशी पुरुष परब्रह्म का स्थान है। सम्बद्ध मन्त्र इस प्रकार है–

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः। सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः सः पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥

इसका अभिप्राय यही है कि देहावसान के बाद पुण्यात्मा को अत्यन्त शुभ्र ज्योति दीखती है, जिसकी ओर वह खिंच जाता है–उपनिषद् में '**सूर्यस्य रश्मिभिः यजमानं वहन्ति तथा सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति।**' सम्भवतः इसी प्रकाश का उल्लेख किया गया है।

इसी प्रकार ब्रह्म का जिज्ञासु यज्ञादि कर्मों से अर्जित लोकों की परीक्षा करके विरक्त हो जाता है, उसे समझ में आ जाता है कि कर्मकाण्ड से जिसे पाया ही नहीं जा सकता, जो यज्ञादि कर्मकाण्ड के द्वारा हाथ नहीं आ सकता–उस अकृत (नित्य पदार्थ) ब्रह्म को जानने के लिए हाथ में समिधा लेकर–इस भावना से जैसे अग्नि के सम्पर्क से ये समिधाएं प्रदीप्त हो सकती हैं–श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के चरणों में जाना चाहिए, जिससे गुरु द्वारा प्राप्त ज्ञानाग्नि से जिज्ञासु का समिधा तुल्य हृदय प्रदीप्त हो सके। सम्बन्धित मन्त्र देखिए:

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणः निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन। तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥

वह विद्वान् अपने समीप आए शान्तचित्त, इन्द्रियों एवं मन पर नियन्त्रण करने वाले जितेन्द्रिय संयमी जिज्ञासु समित्पाणि शिष्य को उस ब्रह्मविद्या का तत्त्वतः उपदेश करे, जिससे वह उस सत्य अक्षर पुरुष को जान सके। इन मन्त्रों में जिज्ञासु शिष्य और गुरु के गुणों का उल्लेख है। गुरु ऐसे हों जो साधनों का प्रयोग कर ऊंचे स्तर पर पहुंच गए हों, उन्हें वेद का ज्ञान हो, वे ब्रह्मपरायण हों। दूसरी ओर जिज्ञासु शिष्य ब्रह्मनिष्ठ हो, वह विद्वान् हो, शान्तचित्त, तपस्वी और श्रद्धा से ओत-प्रोत हो। आश्रम-परिवर्त्तन उसी व्यक्ति के लिए उपयोगी हो सकता है, जो उसके लिए प्रस्तुत हो, जो यात्रा की पहली मंजिल पूरी कर अगली पर चलने के लिए उत्सुक हो, उपनिषत् के तत्त्वचिन्तक की दृष्टि से ब्रह्मविद्या प्राप्त

करने का अधिकार हर किसी को नहीं है । सम्बन्धित मन्त्र देखिए:

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्प्रशान्तचित्ताय शमन्विताय। येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्।।

मुण्डक उपनिषत् के इन खण्डों का अध्ययन करने से एक सामान्य पाठक का ध्यान भारतीय षड्दर्शनों की पूर्व और उत्तर मीमांसाओं की ओर खिंचता है । पूर्वमीमांसा धर्ममीमांसा' है और उत्तरमीमांसा का विषय ब्रह्मजिज्ञासा है । पूर्वमीमांसा के अनुसार धर्म का प्रमुख भाग कर्मकाण्ड है और उस दायित्व का निर्वहन गृहस्थी ही पूर्ण कर सकते हैं । पूर्वमीमांसा ज्ञान को कर्म का अंश समझता है और गृहस्थ-त्याग को अनिवार्य नहीं समझता है । उसके विचारानुसार सभी आश्रमों में ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, उसके लिए आश्रम-परिवर्त्तन आवश्यक नहीं ।

ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति

अभी तक अपरा विद्या के प्रमुख उद्देश्य जीवन-व्यवहार में कृतकार्य बनाने की चर्चा की गई, उसमें कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड दोनों की चर्चा कर ज्ञानकाण्ड की श्रेष्ठता दर्शाई गई थी । अब उपनिषत् के अगले दो मुण्डकों और उनके खण्डों में ब्रह्मज्ञान की चर्चा करते हुए अंगिरा ऋषि का कथन है कि इस संसार की रचना का आदिस्रोत ब्रह्म है । उसी से सारी सृष्टि की रचना हुई है । ऋषि का कथन है-यह तथ्य है, यह अक्षर ब्रह्म सत्य है । जिस प्रकार अत्यन्त प्रदीप्त अग्नि से उसी के समान रूप वाली हजारों चिनगारियां (स्फुलिंग) निकलती हैं, हे सोम्य, उसी प्रकार उस अक्षर ब्रह्म से अनेक भाव अनेक पदार्थ-नाना प्रकार की वस्तुएं प्रकट होती हैं और उसी में लीन हो जाती हैं या लौट जाती हैं । सम्बन्धित मन्त्र इस प्रकार है-

तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः। तथाक्षराद्विविधा सोम्य भावाः प्रजायन्ते यत्र चैवापि यन्ति।।

ऋषि अंगिरा अक्षर ब्रह्म का वर्णन इन शब्दों में करते हैं -वह निश्चय ही दिव्य है, अमूर्त्त है। उसकी कोई मूर्त्ति नहीं है। पुरुष है-वह हर पदार्थ वस्तु के अन्दर है और बाहर भी है। वह अजन्मा है-वह प्राण नहीं लेता। उसका मन भी नहीं है, मनोहीन -अमनाः। वह पवित्र या विशुद्ध है, एवं श्रेष्ठ अक्षर से भी परे है-उत्कृष्ट है। (**अक्षरात् परतः परः**)

ऋषि आगे चर्चा करते हैं- इस ब्रह्म से प्राण (जीवन) मन और सब इन्द्रियां उत्पन्न हुईं। उसी से आकाश, वायु, अग्नि और सब को धारण करने वाली पृथिवी। इन पांच महाभूतों का भी उसी से जन्म है । आगे ऋषि बतलाते हैं-अग्नि द्युलोक उसका मस्तक है, चन्द्रमा और सूर्य

उसके नेत्र हैं, दिशाएं उसके श्रोत्र या कर्ण हैं, प्रसिद्ध वेद उसकी विस्तीर्ण वाणी हैं, वायु उसका प्राण है, सम्पूर्ण विश्व उसका हृदय है, जिसके चरणों से पृथिवी प्रकट हुई है, निश्चय ही वह देव सम्पूर्ण भूतों का अन्तरात्मा है अथवा यह विराट् पुरुष ही सब चराचर जगत् का अन्तरात्मा है। सर्वभूतान्तरात्मा ब्रह्म का विश्व रूप वाला मन्त्र इस प्रकार हैं-

अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः। वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा।।

ऋषि बतलाते हैं उस विराट् पुरुष की समिधा सूर्य है, उससे ही अग्नि पैदा होता है। चन्द्रमा से मेघ बने, उससे भूमि में वनस्पतियां पैदा हुईं। पुरुष स्त्री में ओषधियों से उत्पन्न वीर्य का सिंचन करता है। इस प्रकार संसार में उत्पन्न हुई नानाविध वस्तुएं-प्रजाएं उस विराट् परम पुरुष से ही पैदा हुईं। ऋषि इस परम्परा का विस्तार बतलाते हैं-उस विराट् पुरुष से ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद प्रकट हुए। उसी से दीक्षा, यज्ञ, क्रतु तथा दक्षिणा प्रकट हुए। उसी से संवत्सर, यजमान और चन्द्रमा द्वारा पवित्र किए जाने वाले और सूर्य से तप्त किए जाने वाले लोक उत्पन्न हुए हैं।(**लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः।**) जहां भले कर्मों का फल मिलता है। प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए ऋषि कहते हैं-उस विराट् पुरुष से अनेक प्रकार के देव दिव्य पुरुष पैदा हुए, उसी की सृजन शक्ति से साध्यगण, मनुष्य, पशु, पक्षी, प्राण-अपान, व्रीहि, यव, तप, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य और विधि (ये सब भी उसी से उत्पन्न हुए हैं।)यह न करो, यह करो-आदि विधि -विधान भी उससे हुए।

ऋषि इन्द्रिय, विषय और इन्द्रियस्थानादि ब्रह्मजनित ही हैं, की चर्चा करते हुए कहते हैं-उस विराट् पुरुष से ही मस्तिष्क में अवस्थित सात प्राण, उसी से सात दीप्तियां, सात विषय आदि सात समिधाएं, विषय ज्ञान आदि सात होम, सात इन्द्रियों में रहने वाले सात स्थान प्रकट हुए। इस प्रकार प्रति देह में स्थापित ये सात-सात पदार्थ उस पुरुष से ही पैदा हुए। ब्रह्म से वेद वैदिक संस्कार और यज्ञ आदि की उत्पत्ति की चर्चा से स्पष्ट है कि उसी की समुचित व्यवस्था से पुण्य कर्मों का फल मिलता है। मनुष्य शरीर की दो आंखें, दो कान, दो नासिका छिद्र और मुख के सात छिद्र ही सात गुफाएं हैं।

अन्तिम दो मन्त्रों में दूसरे मुण्डक के पहले खण्ड के सारांश के रूप में ऋषि फिर चर्चा करते हुए कहते हैं-उसी विराट् पुरुष से सारे समुद्र और पर्वतों का आविर्भाव होता है, उसी से सब प्रकार की नदियों का प्रवाह होता है, उसी से सब ओषधियां प्रकट होती हैं और वह रस प्रकट होता है जिससे पंचभूतों के साथ यह अन्तरात्मा अवस्थित रहता है। सम्बन्धित मन्त्र यह है:

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः।
अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा॥

ऋषि स्पष्ट करते हैं कि यह सब उस विराट् पुरुष से ही उत्पन्न हुआ है, वही सत्य है । ऋषि कहते हैं कि यह सारा जगत् परम पुरुष का ही प्रकाश है—कर्म, तप, वेद, ज्ञान और परम अमृत । यह सब विश्व कर्म और तप (ज्ञान) पुरुष ही है । वह पर और अमृत रूप ब्रह्म है। जो साधक उस विराट् पुरुष को सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तःकरण में अवस्थित मानता है । वह इस लोक, इस जीवन में ही अविद्या की ग्रन्थियों-गांठों को हे सोम्य छिन्न-भिन्न कर देता है ।

पिछले दो मन्त्रों में -९में कहा गया है-जब तुम बाहर विश्व की ओर देखोगे तो ईश्वर की महिमा दिखाई देगी। दसवें मन्त्र में कहा गया है, ब्रह्म तुम्हारे अपने हृदय की गुफा में छिपा है, उसे वहां देखो । जिस तरह अधिकतम गर्मी से तपे लोहे के गोले में अग्नि होती है और उसमें लोहा भी होता है, उसी प्रकार ब्रह्माण्ड रूपी गोले में ब्रह्म रूपी अग्नि ओत-प्रोत है, वह सब ब्रह्म है। यह अंकन भी ठीक है क्योंकि ब्रह्म उसमें अग्नि की तरह समाविष्ट होता है । पुरुष ब्रह्म में ही सारा विश्व है ।

ब्रह्म का स्वरूप : उसे कैसे जानें ?

यद्यपि ब्रह्म स्वरूप विहीन है, तथापि वह अक्षर-ब्रह्म प्रकाश स्वरूप है, वह सब के हृदयों में अवस्थित है, वह दर्शन श्रवणादि प्रकारों से बुद्धि रूपी गुहा में संचार करता है, इसलिए 'गुहाचर' नाम से प्रख्यात है, वह महत्पद है। उसी में गति करने वाले निमेष, उन्मेष करने वाले वे सब समर्पित हैं- जो जीवित हैं, जो कुछ आंख के पीछे है- सब उसी पर आश्रित है, वह हमारे लिए उपयोगी सत् और हमारे लिए अनुपयोगी सभी वस्तुओं से ऊपर है, वह प्रजाओं में सर्वश्रेष्ठ वरिष्ठ है । ऋषि आगे बतलाते हैं- वह अक्षर ब्रह्म दीप्तिमान् है, वह अणु से भी अणु है और जिसमें सम्पूर्ण लोक और उन लोकों के निवासी सन्निहित हैं, वही प्राण है तथा वही वाक् और मन है, वही सत्य है, वही अमृत है (**तद् एतत् सत्यं, तद् अमृतम्।**) हे सोम्य, मनोनिवेश द्वारा बेधने योग्य है, उस चरम सत्य को तू जान ले।

ऋषि का सत्परामर्श है कि अविनाशी ब्रह्म को मन से पहुंचने के लिए उपनिषत् की परा विद्या रूपी धनुष हाथ में लेकर उस धनुष पर उपासना रूपी तेज धार पर चढ़े आत्मा रूपी महाअस्त्र को चढ़ा दे, तदनन्तर ब्रह्म-भगवान् में लीन चित्त से धनुष की डोर अपनी ओर खींचकर अविनाशी अक्षर रूपी ब्रह्म लक्ष्य को हे सोम्य, तू बींध दे । सम्बन्धित मन्त्र इस प्रकार है-

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं संधीयत ।

आयम्य तद् भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि॥

उक्त वचन को अधिक स्पष्ट करते हुए ऋषि अंगिरा कहते हैं- जिस धनुष को प्रयुक्त करना है वह ओंकार -ओम्-प्रणव धनुष है-यह शर बाण आत्मा है, आत्मा रूपी बाण का लक्ष्य ब्रह्म कहा जाता है, उसे बींधना हो तो अत्यन्त तन्मयता सावधानता से उसे बींधना होगा, जिस तरह तीर लक्ष्य को बींधने के लिए लक्ष्य रूप हो जाता है, उसी तरह उपासक भी ब्रह्म में लीन हो जाए। सम्बन्धित मन्त्र इस प्रकार है-

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥

सामान्य व्यवहार में देखें, जितनी शक्ति से डोरी खींची जाती है, उतनी ही तीव्रता से बाण जाता है, उसी प्रकार जितने तीव्र वैराग्य से ओंकार का ध्यान होगा, उतनी तेजी से आत्मा परमात्मा रूपी लक्ष्य की ओर जाएगा। ऋषि स्पष्ट करते हैं-उस ब्रह्म में द्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष आदि तीनों सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ओत-प्रोत हैं और इसी पिण्ड में सभी प्राणों के साथ मन भी ओत-प्रोत है। उसी एक आत्मा अक्षर ब्रह्म को जानो। इस अक्षर ब्रह्म आत्मा का जान लेना अमृत-महान् पर-ब्रह्म को पाना अमरता के सेतु तक पहुंचना है ।

ओङ्कार रूप से ब्रह्मचिन्तन की विधि प्रस्तुत करते हुए ऋषि परामर्श देते हैं - रथचक्र-पहिए के केन्द्र या नाभि में जिस प्रकार अरे लगे रहते हैं, उसी प्रकार हृदय के भीतर केन्द्रबिन्दु में सब नाड़ियां एकत्र होती हैं, वहीं यह आत्मा अनेक प्रकार से प्रकट होता है । उस आत्मा-अक्षर ब्रह्म का ध्यान करो । तुम्हारा कल्याण हो, तुम अन्धकार सागर के पार हो जाओ। अगले मन्त्र में अंगिरा ऋषि कहते हैं- वह अक्षर ब्रह्म भू-लोक (भुवि) द्यु-लोक (दिव्ये)तथा अन्तरिक्ष लोक (व्योम्नि) तीनों लोकों सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अपनी महिमा से प्रतिष्ठित है । जैसे ब्रह्माण्ड में अक्षर ब्रह्म की महिमा दीख रही है उसी प्रकार पिण्ड के अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय आदि पांच कोशों में अक्षर ब्रह्म की महिमा दिखाई पड़ रही है । मन, प्राण तथा हृदय के तीनों अन्नमय कोशों में वह आत्मा प्रतिष्ठित है । उसकी अनुभूति होने पर भी विवेकी पुरुष - धीर जन ध्यान योग से उस आनन्दमय प्रकाशस्वरूप अमृत ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं। (**तद् विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीराः आनन्दरूपम् अमृतं यद् विभाति ।**)

ऋषि अंगिरा परमात्म-ज्ञान के साक्षात्कार का फल कहते हैं- उस कारण कार्य रूप (परावर) **ब्रह्म** का साक्षात्कार करने पर इस जीव की सब हृदय **ग्रन्थियां गांठें खुल जाती हैं**, सारे सन्देह-संशय नष्ट हो जाते हैं और **कर्मों के सारे बन्धन कर्म क्षीण हो जाते हैं। (भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते**

सर्वसंशया:।)अगले मन्त्र में ऋषि कहते हैं–वह निर्मल-कलाहीन ब्रह्म ज्योतिर्मय हिरण्यमय परम कोश में विद्यमान है । वह शुद्ध और सम्पूर्ण ज्योतिर्मय पदार्थों की ज्योति है - ऐसा आत्मज्ञानी पुरुष अपने अनुभव से कहते हैं। (**तत् शुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिः यत् आत्मविदः विदुः ।**)

ज्योतियों की ज्योति : ब्रह्म

ज्योतियों की ज्योति ब्रह्म की चर्चा करते हुए ऋषि बतलाते हैं–उस आत्मस्वरूप ब्रह्म में न सूर्य प्रकाशित होता है और न चन्द्रमा या तारे । वहां यह विद्युत्-बिजली भी नहीं चमकती, फिर यह अग्नि का प्रकाश क्या काम कर सकता है, उसी के प्रकाश से ये सूर्य,चन्द्र, तारे-अग्नि सब कुछ उसी से प्रकाशमान हो रहे हैं। सम्बद्ध मन्त्र इस प्रकार है–

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

ऋषि बतलाते हैं- जैसे अग्नि से चिनगारियां छिटकती हैं, वैसे ही अक्षर ब्रह्म से जगत् के विविध पदार्थ प्रकट होते हैं। जो साधक उपासक यह स्थिति समझ लेता है उसे अपने सामने ब्रह्म दीखता है, पीठ के पीछे भी ब्रह्म दिखलाई देता है, दक्षिण और उत्तर में-दाएं और बाएं- वही नीचे और ऊपर फैला हुआ दीखता है। –उसे यह सारा विश्व वरिष्ठ सर्वोत्तम दिखाई देता है। यह सारा जगत् सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है । मूल मन्त्र देखिए–

ब्रह्मैवेदममृतं, पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चात् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण। अधश्चोर्ध्वञ्च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥

ब्रह्म जीव प्रकृति का स्वतन्त्र अस्तित्व

इस प्रकार सर्वत्र ब्रह्म ही ब्रह्म है, हर पदार्थ में ब्रह्म की महत्ता दिखलाई पड़ती है। तीसरे मुण्डक के प्रथम मन्त्र में प्रकृति जीव और परमात्मा- उन तीन सत्ताओं के स्वतन्त्र अस्तित्व का परिचय देते हुए ऋषि कहते हैं- सुन्दर पंखों वाले दो पक्षी हैं, वे एक दूसरे के प्रेमी और सखा हैं। वे दोनों एक ही वृक्ष पर बैठे हुए हैं, उनमें से एक पिप्पल वृक्ष के स्वादिष्ठ फल खाता है और दूसरा न खाता हुआ केवल देखता रहता है। यह प्रसिद्ध मन्त्र इस प्रकार है–

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

ऋग्वेद के पहले मण्डल १६४ वें सूक्त का भी यही मन्त्र है । इसमें एक अलंकार द्वारा सृष्टि की यथार्थता प्रतिपादित की गई है । वृक्ष प्रकृति है, फल खाने वाला पक्षी जीव है, सब कुछ अनासक्त भाव से देख

कर यथार्थ फल देने वाला पक्षी परमात्मा है । अगले मन्त्र में उक्त भाव को और स्पष्ट करते हुए ऋषि कहते हैं– एक ही वृक्ष पर एक पक्षी जीवात्मा फल खाने में निमग्न है, वह अपनी दुर्बलता-शक्तिहीनता के कारण मोहग्रस्त हो शोकाकुल हो जाता है, जब यह पक्षी रूप जीव दूसरे पक्षी भगवान् को देखता है कि योगि उसकी सेवा में संलग्न हैं तो वह शोक से मुक्त हो जाता है। (**जुष्टं यदा पश्यति अन्यम् ईशम् अस्य महिमानम् इति वीतशोकः।**)

जब देखने वाला द्रष्टा उस प्रकाशमान सृष्टिकर्त्ता ब्रह्म के भी उस उत्पत्तिस्थान को देखता है। (**पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।**) उस समय वह विद्वान् पुण्य-पाप दोनों का परित्याग कर निर्मल-निर्लेप हो जाता है और परम समता को प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार जीवन में समता ही शान्ति का उपाय है । (**विद्वान् पुण्यपापे विधूय परमं साम्यम् उपैति।**)

ऋषि बतलाते हैं श्रेष्ठतम ब्रह्मज्ञ वह है जो भली प्रकार जान लेता है-वह समस्त भूतों-पदार्थों में प्रकट हो रहा है, निश्चय से वही प्राण-शक्ति प्राण है, फलतः वह अतिवादी नहीं होता-बढ़-चढ़ कर बातें नहीं करता, वह अपने आप में आत्मा में क्रीड़ा करता है-खेलता है। (**आत्मक्रीडः आत्मरतः**) ऐसा क्रियावान् पुरुष ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठतम है । (**एवं ब्रह्मविदां वरिष्ठः।**)

ब्रह्मज्ञानी कर्मों से विरत नहीं होते । उपनिषत् के चिन्तन में जो पुरुष बाह्य पदार्थों के स्थान पर आत्मा में ही निमग्न रहता है, ऐसा व्यक्ति दूसरों से किसी प्रकार की स्पर्धा का विषय नहीं बनता, ऐसा व्यक्ति परम साम्य प्राप्त करता है और वह काम करता हुआ भी ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ है । ऋषि बतलाते हैं–आत्मा की प्राप्ति सत्याचरण से तथा तपस्या से होती है। (**सत्येन लभ्यः तपसा ह्येष आत्मा ।**)उसे यथार्थ ज्ञान और नित्य ब्रह्मचर्य से प्राप्त किया जा सकता है। (**सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।**) उसे दोष हीन होकर यति लोग-योगि जन देखते हैं, वह ज्योतिर्मय शुभ्र प्रभु शरीर के आभ्यन्तर में-हृदय में विद्यमान है ।(**अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयः हि शुभ्रः यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः।**)

ऋषि अंगिरा शाश्वत सत्य का वह गौरव पूर्ण सन्देश देते हैं- जिसे भारत राष्ट्र ने अपना बोध-सन्देश बनाया हुआ है-संसार में सत्य की ही विजय होती है, झूठ या अनृत की नहीं। सत्य से ही भले पुरुषों को दिव्य गुण प्राप्त करने का देवयान मार्ग खुलता है, इसी मार्ग का अनुसरण कर पूर्णकाम-आप्त काम ऋषि आगे बढ़ते हैं, वहीं सत्य का परम धाम है । सम्बद्ध मन्त्र इस प्रकार है–

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।

येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥

ऋषि ने दोष दूर करने के सत्य, तप, यथार्थज्ञान और निर्विघ्न ब्रह्मचर्य के चार उपाय बतलाए हैं । इसी प्रकार सत्य में दो बातें हैं--व्यक्ति की कथनी और करनी एक रूप हो, उसका मन, वाणी और क्रिया एक रूप हो । इस प्रकार सम्यक् ज्ञान से ही ब्रह्म की प्राप्ति सम्भव है । ऋषि कहते हैं– वह ब्रह्म महान् है, वह दिव्य है, उसका रूप इतना अधिक विराट् है कि उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती । (**बृहच्च तद् दिव्यमचिन्त्यरूपम्**) महान् विराट् होने के साथ वह इतना अधिक सूक्ष्म है कि उससे सूक्ष्म कुछ हो ही नहीं सकता । (**सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति ।**) वह दूर से भी दूर और यहां पर समीप से समीप है (**दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च ।**) वह चेतन प्राणियों के देखने वालों के लिए यहीं शरीर के अन्दर हृदय की गुहा में ही विद्यमान है, उसे देखने के लिए आंखें चाहिए। (**पश्यत्स्विहैव निहित गुहायाम् ।**)

आत्म-साक्षात्कार-चित्तशुद्धि द्वारा

ऋषि सावधान करते हैं कि यह आत्मा न नेत्रों से ग्रहण किया जाता है, न वाणी से, न अन्य इन्द्रियों से, और न उसे तपस्या अथवा कर्म से ग्रहण किया जाता है। (**न चक्षुषा गृह्यते न अपि वाचा, न अन्यैः देवैः तपसा कर्मणा वा ।**) बुद्धिज्ञान के प्रसाद से पवित्र शुद्धबुद्धि सम्पन्न हुआ विशुद्ध चित्त वाला व्यक्ति- इन्द्रियों की वासनाओं रूपी मल के पृथक् हो जाने पर हम से तिरोहित निराकार आत्मतत्त्व का ध्यान द्वारा साक्षात्कार कर लेता है । (**ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः।**)

विशुद्ध सत्त्व व्यक्ति परमात्मा का ज्ञान-प्रसाद मिलते ही निराकार आत्मतत्त्व का ज्ञान द्वारा साक्षात्कार कर सकता है । जिज्ञासा होती है कि क्या व्यक्ति स्वयं कुछ नहीं कर सकता, क्या उसके प्रसाद की प्रतीक्षा करना ही उसकी नियति है? इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए अंगिरा ऋषि कहते हैं--इस सूक्ष्म अणु स्वरूप आत्मा का पांचों प्राणों और पांचों इन्द्रियों से ओत-प्रोत चित्त को इन्द्रियों की वासनाओं रूपी मल से पृथक् एवं शुद्ध होने पर हम से तिरोहित हुआ आत्मा प्रकट हो जाता है। (**प्राणैः चित्तं सर्वम् ओतं प्रजानां यस्मिन् विशुद्धे विभवति एष आत्मा ।**)

तत्त्ववेत्ता अंगिरा ऋषि मण्डूक उपनिषद् में चित्तशुद्धि पर विशेष बल देते हैं। इस खण्ड के आठवें मन्त्र में विशुद्धसत्त्व की महत्ता प्रतिपादित की है, तो नौवें मन्त्र में 'विशुद्धे विभवति' पर ध्यान आकर्षित किया गया है, दसवें मन्त्र में विशुद्धसत्त्व को पुनः दोहराया गया है । मलिन चित्त व्यक्ति संसाराभिमुख होता है जबकि निर्मलचित्त भगवान् की ओर केन्द्रित होता

है। ऋषि अंगिरा स्पष्ट कहते हैं कि विशुद्धचित्त आत्मवेत्ता मन से जिस-जिस स्थिति का चिन्तन करता है और जिन कामनाओं को पूरा करना चाहता है, वह उन-उन अवस्थाओं और कामनाओं को प्राप्त कर लेता है, इसलिए जिस जिज्ञासु को विभूतियों की कामना हो, उसे चाहिए वह किसी आत्मज्ञानी-तत्त्वज्ञानी गुरु के चरणों में जाकर उसकी सेवा करे। तीसरे मुण्डक के पहले खण्ड का अन्तिम १०वां मन्त्र इस प्रकार है-

यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान्। तं तं लोकं जयते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेत् भूतिकामः॥

परम पुरुष भगवान् की उपासना का फल

तीसरे मुण्डक के पहले खण्ड के अन्तिम मन्त्र में ऋषि ने जिस आत्मज्ञ आत्मवेत्ता गुरु के चरणों में जाने का परामर्श दिया है, ऋषि कहते हैं वह आत्मज्ञानी उस परम ब्रह्म परमेश्वर को जानता है, जिसमें यह ब्रह्माण्ड अवस्थित है, वहां सम्पूर्ण विश्व शुद्ध रूप से प्रकाशित हो रहा है। निस्सन्देह निष्काम भाव से कामना रहित होकर जो उस परम पुरुष भगवान् की उपासना करते हैं, वे धीर बुद्धिमान् लोग संसार के विषयों में नहीं फंसते, वे अपने वीर्य शक्ति का अतिक्रमण नहीं करते, वे इसके बन्धन से, जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। सम्बन्धित मन्त्र इस प्रकार है--

स वेदैतत्परं ब्रह्मधाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्। उपासते पुरुषं ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः॥

ऋषि शिक्षा देते हैं, जो कामना रहित होकर निष्काम धीर पुरुष हैं, वे जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं, परन्तु जो कामनाओं से बन्धे रहते हैं, वे कामनाओं से खिंचे हुए उनकी प्राप्ति के बन्धनों में आबद्ध पैदा होते रहते हैं। स्पष्ट है जिन आत्मज्ञानियों की कामनाएं पूर्ण हो चुकी हैं, जिनकी अब कोई कामना ही नहीं है, वे इस जन्म में ही कामनारहित हो जाते हैं। इस तरह सच्चा आत्मज्ञानी कामनाओं के त्याग से जन्म-मरण के बन्धन पुनर्जन्म के चक्र से बच जाता है, उनकी सब कामनाएं यहीं विलीन हो जाती हैं।(**पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः।**)

कह सकते हैं कि यदि दूसरे सब लाभों की तुलना में आत्मलाभ ही उत्कृष्ट है तो स्वभावतः जिज्ञासा होती है कि आत्मदर्शन के लिए प्रवचन, धारणा शक्ति, अधिक श्रवण या त्याग आदि उपायों का अवलम्बन अधिक करे। ऋषि अंगिरा का परामर्श है-यह आत्मा न तो बहुत भाषण करने -पुष्कल शास्त्राध्यन (प्रवचन) से प्राप्त होने योग्य है, न बहुत बुद्धि के प्रयोग-धारणा शक्ति के परिमार्जन से मिल सकता है, न स्थान-स्थान पर बहुत से उपदेश सुनने-अधिक श्रवण करने से मिलने वाला है, प्रत्युत

जो कोई उसका वरण कर लेता है- जो कोई उसे जानने का प्रयत्न करता है, उसके सामने वह अपना स्वरूप खोल कर रख देता है—दूसरे शब्दों में उसे वह प्राप्त हो जाता है । सम्बन्धित मन्त्र देखिए :

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥

यह साधक जिस आत्मा का वरण करता है, वह आत्मा उसके प्रति अपना स्वरूप अभिव्यक्त कर देता है। ऋषि के इस कथन का यह अर्थ नहीं है कि परमात्मा की कृपा पाने के लिए साधक का निर्बल या बलहीन होना कोई गुण है, नहीं । उपनिषद् में ऋषि स्पष्ट कहते हैं। **नायम् आत्मा बलहीनेन लभ्यः।** जो बलहीन है, वह भी उसे प्राप्त नहीं कर सकता वैसे यदि साधक का आत्मसमर्पण उसकी शक्ति है वह उसे प्राप्त हो जाता है । साथ ही वेद में कहा गया है -**न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः** । जब तक कोई अपना पसीना बहा कर श्रान्त नहीं हो जाता, थक नहीं जाता है । तब तक भगवान् की कृपा उस पर नहीं होती। (ऋग्वेद ४।३३।११) प्रमादी-आलसी व्यक्ति से भगवान दूर रहते हैं, वह कोरी तपस्या और निष्प्रयोजन अपने को कष्ट देने वाले को भी प्राप्त नहीं होता है, परन्तु जो विद्वान् इन सच्चे त्याग आदि उपायों से लगातार यत्न करते रहते हैं, उन्हें वह प्राप्त हो जाता है और वे ब्रह्मधाम में प्रवेश करते हैं। उपनिषत् का मन्त्र इस प्रकार है—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिंगात्। एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्म धाम ॥

तीसरे मुण्डक के दूसरे खण्ड का चौथा 'नायमात्मा' मन्त्र कठ उपनिषद् (२।२३) में भी आया है । इस प्रकार आत्मवेत्ता विद्वान् विवेकी ज्ञानवेत्ता तत्पर होकर, बल, अप्रमाद, संन्यास और ज्ञान आदि उपायों से ब्रह्मधाम में सम्यक् रूप से प्रविष्ट हो जाता है। अगले मन्त्र में ऋषि बतलाते हैं-उस आत्मा को प्राप्त कर ऋषिगण ज्ञानतृप्त आत्मवेत्ता राग-द्वेष से शून्य होकर शान्तचित्त हो जाते हैं। उस सर्वव्यापक ब्रह्म को प्राप्त कर वे धीर समाहित चित्त होकर ब्रह्म में पूरी तरह प्रविष्ट हो जाते हैं ।

ऋषि का कथन है कि वेदान्तजनित ज्ञान से तो यतिजन तत्त्व का निश्चय कर लेते हैं जो अपने प्रयत्नों से संन्यास योग से शुद्ध अन्तःकरण वाले होकर शरीर त्याग करते हैं और सब ओर से मुक्त होकर वे परम अमर धाम को प्राप्त कर लेते हैं ।

ऋषि बतलाते हैं मोक्ष काल में शरीर के प्राकृत अंश प्राणादि पन्द्रह कलाएं (प्राण को अलग करने पर प्रश्नोपनिषद् ६।२ में लिखा है- (**पुरुषः यस्मिन् षोडशकलाः प्रभवन्ति ।**) अवशिष्ट रह जाती हैं, चक्षु आदि इन्द्रियों के अधिष्ठाता समस्त देवगण आदित्य आदि प्रतिदेवों - दिव्य स्रोतों

में स्थानान्तरित हो जाती हैं। ज्ञान स्वरूप आत्मा और उसके सञ्चित कर्म ही उसके हाथ रह जाते हैं। वह और परमात्मा -सूक्ष्म पुरुष में एक हो जाते हैं ।

इस स्थिति का विवरण देते हुए ऋषि कहते हैं- जिस प्रकार निरन्तर बहती हुई नदियां अपना नाम-रूप त्याग कर समुद्र में विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष अपने नाम-रूप से विमुक्त होकर परात्पर महान् दिव्य पुरुष को प्राप्त हो जाते हैं। मूल मन्त्र इस प्रकार है-

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय। तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।

ऋषि का परामर्श है इस प्रकार जो उस परम ब्रह्म को जानता है ब्रह्म ही हो जाता है। उसके कुल में ब्रह्म को न जानने वाला कोई नहीं होता है, वह शोक से पार हो जाता है, पाप से तर जाता है, उसकी हृदय की ग्रन्थियां गांठें खुल जाती हैं और वह अमृत हो जाता है ।

ऋषि ऋचा द्वारा सीख देते हैं गुरु यह ब्रह्मविद्या ऐसे अधिकारी व्यक्तियों को दे, जो विहित कर्म करने वाले श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ और श्रद्धावान् हों, एक ऋषि की अर्चना करते हों, जो विधिपूर्वक शिरोवत् धारण करते हों ।

पूर्वकाल में अंगिरा ऋषि ने यह ज्ञान (शौनक) को दिया था । व्रत हीन मनुष्य के लिए यह ज्ञान नहीं । परम ऋषियों को नमस्कार है; इन सच्चे ऋषियों को प्रणाम ।

तदेतत्सत्यमृषिरङ्गिराः पुरोवाच नैतदचीर्णव्रतोऽधीते । नमः परम-ऋषिभ्यो नमः परम-ऋषिभ्यः ।।

अथर्ववेद के मन्त्र भाग के अन्तर्गत मुण्डक उपनिषद् का चिन्तन है । गृहस्थी शौनक ने मुनि अंगिरा से जिज्ञासा की थी-ऐसी कौन सी वस्तु है, जिस एक के जान लेने पर सब कुछ जान लिया जाता है।

महर्षि अंगिरा ने परा और अपरा दो विद्याओं का निरूपण करते हुए सारे संसार को अपरा विद्या का विषय कहा और परा विद्या वह है जिससे अखण्ड अविनाशी एवं निष्कलंक परमार्थ तत्त्व का बोध हो। तीनों मुण्डकों में इसी गूढ़ विषय को समझाने का प्रयत्न किया गया है ।

-नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

अभ्युदय,बी-२२,

गुलमोहर पार्क

नई दिल्ली-११००४९

मई १९९५

सम्पादकीय

वेद एवं दर्शनानन्दग्रन्थसंग्रह-प्रकाशन

प्रिय पाठकगण ! सुहृद् बन्धुओ !

मैंने चारों वेदों के प्रकाशन की घोषणा करा दी। स्वामी दर्शनानन्द जी के ग्रन्थ की भी घोषणा करा दी। कार्य आरम्भ भी हो गया। उधर वेद मन्दिर का निर्माण कार्य आरम्भ हो गया। उसके सामान की खरीद, देख-रेख में छह मास निकल गये। यह कार्य पूर्ण हो गया। मॉडल टाउन छोड़कर अब वेद मन्दिर इब्राहिमपुर, दिल्ली-११००३६ में स्थायी निवास हो गया है। इधर यह कार्य सम्पूर्णता की ओर आया तो आँख का ऑपरेशन कराना पड़ा। प्रभु कृपा से आपरेशन सफल हो गया। चश्मा जून के प्रथम सप्ताह में मिलेगा। पढ़ना-लिखना बन्द है। जून से लंगर-लगोटे कसकर इन दोनों ग्रन्थों में लग जाऊँगा। इस वर्ष में दोनों ग्रन्थ अवश्य मिल जाएँगे।

आप थोड़ा-सा धैर्य रक्खें। गोविन्दराम हासानन्द ६०-७० वर्ष से आर्य जगत् की सेवा कर रहा है। आपको ग्रन्थ मिलेंगे और अवश्य मिलेंगे। दर्शनानन्दग्रन्थसंग्रह को सर्वश्रेष्ठ बनाने के लिए मैं जो परिश्रम कर रहा हूँ, वह आज तक तो किसी ने किया नहीं है। अब तक जो अनुवाद हुए हैं, शब्द और लाइनें ही नहीं पृष्ठ के पृष्ठ भी छूटे हुए हैं। इसे सुन्दरतम रूप देना है। वेदों को भी भव्यरूप में छापना है। इन सब में समय लगता है। जिन्हें बहुत जल्दी है, उन्हें आमंत्रण देता हूँ, कभी आश्रम में आ जाइए और देखिए, देर क्यों हो जाती है। इन दोनों योजनाओं में देरी होने से प्रकाशक को भी आर्थिक हानि का सामना करना पड़ रहा है क्योंकि आपको ज्ञात ही होगा की पिछले छः महीनों में कागज के मूल्यों में असाधारण वृद्धि हुई है। मूल वेद जो कि आपने लागत मात्र पर ही बुक किया है आज उसकी लागत में भी वृद्धि हो चुकी है, परन्तु फिर भी ये योजनाएँ जल्दी से जल्दी पूरी की जाएंगी तथा यह ग्रन्थ उन्हीं मूल्यों पर आपको उपलब्ध होंगे जिन पर आपने बुक किये हैं।

अतः मुझे विश्वास है कि आप सभी ग्राहकगण धैर्य तथा विश्वास बनाए रखकर सहयोग देंगे।

सधन्यवाद

—जगदीश्वरानन्द सरस्वती

साहित्य-समीक्षा

वेदसन्देश (दो भाग)

लेखक–प्रो० रामविचार

दोनों भागों का मूल्य १००.०० रुपये।

यह एक सर्वसम्मत तथ्य है कि स्वामी दयानन्द ने वैदिक चर्चा का पुनरुद्धार किया था और उनके अनुवर्ती विद्वानों ने विभिन्न वेद-व्याख्या के ग्रन्थ लिखकर वेदों के प्रतिपाद्य, कथ्य तथा अभिप्राय को लोकप्रिय बनाया। विगत काल में सर्व श्री स्वामी वेदानन्द तीर्थ, प्रियव्रत वेदवाचस्पति, पं० अभयदेव विद्यालंकार आदि अनेक लेखकों ने वेद मन्त्रों में निहित शिक्षणों की लोकानुरञ्जनी व्याख्या कर इनको सर्वसाधारण तथा विद्वत् वर्ग में प्रचारित किया है। प्रो० रामविचार का दो भागों में लिखित वेदसन्देश इसी परम्परा को आगे बढ़ाता है। आर्यसमाज के क्षेत्र में इस प्रकार के वेद-व्याख्यानों की दो कापियाँ हैं। प्रथम कोटि इन ग्रन्थों की है। जिनमें मन्त्रों का पद पाठ, इनमें प्रयुक्त शब्दों के व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ देकर उनकी शास्त्रीय सन्दर्भ में गुरु गम्भीर व्याख्या की गई है। प्राय: इस प्रकार के व्याख्या ग्रन्थ विद्वत् समुदाय के लिए ही होते हैं, किन्तु साधारण पाठक उनसे विशेष लाभ नहीं उठाता।

आलोच्य ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इनके दोनों खण्डों में विद्वान् लेखक ने २९ वेद मन्त्रों को सरल, सुबोध, विस्तृत व्याख्या इस दृष्टि से की है जिसकी सहायता से यदि कोई उपदेशक इसे आधार बनाकर व्याख्या व प्रवचन करें तो उसे सफलता मिलेगी। साथ ही सामान्य पाठक भी इस विस्तृत व्याख्या को पढ़कर वेद की जीवन निर्माणकारी शिक्षाओं को हृदयंगम कर सकेगा। मन्त्र के हार्द को समझाने के लिए बहुश्रुत तथा बहुपठित लेखक ने शतश: दृष्टान्तों, नीतिवचनों, सुभाषितों तथा शास्त्र-वाक्यों को उद्धृत किया है। मन्त्रों का चयन करने में विद्वान् व्याख्याकार ने विशेष सावधानी रक्खी है। फलत: प्रथम खण्ड में तन्तुं तन्वन् (मनुष्यता के कर्त्तव्यों का द्योतक), उलूकयातुं (दोषों से मुक्त होने की प्रेरणा), परोऽपेहि मनस्पाप (पापों से पीछा छुड़ाना), सक्तुमिव तितउना (विवेकपूर्वक कर्त्तव्य निर्धारण), सहृदयं सांमनस्यम् (गृहस्थ में सौहार्द भाव), त्र्यम्बकं यजामहे (मोक्ष लाभ), इहैव स्तं मा वि यौष्टम् (गृहस्थ का महत्त्व), दृते दृँह मा मित्रस्य मा चक्षुषा (सर्वप्रिय होने) आदि मन्त्रों की अत्यन्त

सारगर्भित एवं मनोज्ञ व्याख्या की गई है।

इसी प्रकार द्वितीय खण्ड में जो मन्त्र लिये गये हैं उनमें कतिपय निम्न हैं–(अष्टाचक्रा नवद्वारा)–(ईश्वरोपासना), यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो (ईश्वर की महत्ता का प्रतिपादक) यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा: (धर्म की महत्ता) स्वस्ति पन्थामनुचरेम (कल्याण मार्ग का विवेचन), ईशावास्यम् (लोभ का त्याग), अपां मध्ये तस्थिवांसं (जल बिच मीन पियासी) कालो अश्वो वहति (काल की प्रबलता) ये सभी मन्त्र तथा इनका अभिप्राय प्रकाशन इतना उदात्त, सारगर्भित तथा प्रभावशाली है कि आबाल वृद्ध वनिता सभी स्वाध्याय तत्पर लोग इनका लाभ ले सकते हैं। इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के लेखन के लिए लेखक को साधुवाद तो दिया ही जाना चाहिए, उनसे यह भी आशा करनी चाहिए कि वे इसी ग्रन्थमाला में कुछ और भी पुष्प अर्पित करेंगे ताकि विश्व के इस आदि काव्य वेद के सर्वतोभद्र उपदेशों और शिक्षाओं से पाठक कृतार्थ हों तथा परमात्मा की इस कल्याणी वाणी का सर्वत्र सार्थक प्रचार हो सके।

–भवानीलाल भारतीय

विद्याभास्कर, वेदरत्न, न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योगतीर्थ, वेदान्ताचार्य, शास्त्रशेवधि

आचार्य उदयवीर शास्त्री ग्रन्थावली

(पृष्ठ संख्या ७००० के लगभग डिमाई आकार में)

ग्रन्थावली में सम्मिलित ग्यारह ग्रन्थ

१.	न्यायदर्शन भाष्य	१५०-००
२.	वैशेषिकदर्शन भाष्य	१२५-००
३.	सांख्यदर्शन भाष्य	१२५-००
४.	योगदर्शन भाष्य	१००-००
५.	वेदान्तदर्शन भाष्य (ब्रह्मसूत्र)	१८०-००
६.	मीमांसादर्शन का विद्योदय भाष्य	३५०-००
७.	सांख्यदर्शन का इतिहास	२५०-००
८.	सांख्य सिद्धान्त	२००-००
९.	वेदान्तदर्शन का इतिहास	२००-००
१०.	प्राचीन सांख्य सन्दर्भ	१००-००
११.	वीर तरंगिणी (लेखों का संग्रह)	२५०-००

सम्पूर्ण ग्रन्थावली के ग्यारह खण्डों का मूल्य २०३०-००

यह अमूल्य ग्रन्थावली बहुत बढ़िया कागज पर, सुन्दर छपाई, पक्की कपड़े की जिल्द में नयनाभिराम भी है।

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-प्रदायिनी

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती की

सरल-सुबोध आध्यात्मिक पुस्तकें

आनन्द गायत्री कथा	१४-००
एक ही रास्ता	१२-००
शंकर और दयानन्द	८-००
मानव जीवन-गाथा	१३-००
सत्यनारायण व्रत कथा	५-००
भक्त और भगवान	१२-००
उपनिषदों का सन्देश	१८-००
घोर घने जंगल में	२०-००
मानव और मानवता	३०-००
प्रभु मिलन की राह	२०-००
यह धन किसका है ?	२२-००
बोध-कथाएँ	१६-००
दो रास्ते	१७-००
दुनिया में रहना किस तरह ?	१५-००
तत्वज्ञान	२०-००
प्रभु-दर्शन	१५-००
प्रभु-भक्ति	१२-००
महामन्त्र	१२-००
सुखी गृहस्थ	७-००
त्यागमयी देवियाँ	८-००

अंग्रेजी पुस्तकें

Anand Gayatry Katha	30-00
The Only Way	30-00
Bodh Kathayen	40-00
How To Lead Life?	30-00

जीवनी

महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)	१०-००
महात्मा आनन्द स्वामी (हिन्दी)	२५-००

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती कृत विद्वत्तापूर्ण पुस्तकें

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००-००
वाल्मीकि रामायण	१७५-००
षड्दर्शनम्	१५०-००
चाणक्यनीति दर्पण	६०-००
विदुरनीतिः	४०-००
ब्रह्मचर्य गौरव	९-००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	९-००
दिव्य दयानन्द	१२-००
कुछ करो कुछ बनो	१२-००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१२-००
आदर्श परिवार	१५-००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	१५-००
वेद सौरभ	१२-००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५-००
वैदिक विवाह पद्धति	८-००
ऋग्वेद सूक्ति सुधा	२५-००
यजुर्वेद सूक्ति सुधा	१२-००
अथर्ववेद सूक्ति सुधा	१५-००
सामवेद सूक्ति सुधा	१२-००
ऋग्वेद शतकम्	१०-००
यजुर्वेद शतकम्	१०-००
सामवेद शतकम्	१०-००
अथर्ववेद शतकम्	१०-००
भक्ति संगीत शतकम्	६-००
चमत्कारी ओषधियाँ	१२-००
घरेलू ओषधियाँ	१२-००
चतुर्वेद शतकम् (सजिल्द)	५०-००
स्वर्ण पथ	१२-००
प्रार्थना लोक	४०.००
प्रार्थना-प्रकाश	८.००
प्रभात-वन्दन	८.००
शिवसंकल्प	८.००

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

आदि शंकराचार्य वेदान्ती नहीं थे	*स्वामी विद्यानन्द सरस्वती*	४०-००
वेद-मीमांसा	*स्वामी विद्यानन्द सरस्वती*	५०-००
सृष्टि विज्ञान और विकासवाद	*स्वामी विद्यानन्द सरस्वती*	४०-००
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	*पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार*	१५०-००
दयानन्द जीवन चरित	*लेखक : देवेन्द्र मुखोपाध्याय अनु० : पं० घासीराम*	२५०-००
शतपथब्राह्मण (तीन खण्ड)	*अनु० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय*	१८००-००
महात्मा हंसराज (जीवनी)	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	६०-००
महात्मा हंसराज ग्रन्थावली (चार खण्ड)	*लेखक-सम्पादक प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	२४०-००
आर्य सूक्ति सुधा	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	१२-००
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (ग्यारह खण्ड)	*ले० स० डॉ० भवानीलाल भारतीय तथा प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु*	६६०-००
चयनिका	*क्षितीश वेदालंकार*	१२५-००
वैदिक मधुवृष्टि	*पं० रामनाथ वेदालंकार*	६०-००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	*आ० प्रियव्रत वेदवाचस्पति*	५०-००
महाभारत सूक्तिसुधा	*पं० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण*	४०-००
श्यामजी कृष्ण वर्मा	*डॉ० भवानीलाल भारतीय*	२४-००
आर्यसमाज विषयक साहित्य परिचय	*डॉ० भवानीलाल भारतीय*	२५-००
कल्याणमार्ग का पथिक (स्वामी श्रद्धानन्द की जीवनी)	*डॉ० भवानीलाल भारतीय*	प्रेस में
आर्यसमाज के बीस बलिदानी	*डॉ० भवानीलाल भारतीय*	१५-००
धर्म का स्वरूप	*डॉ० प्रशान्त वेदालंकार*	५०-००
ऋषि बोध कथा	*स्वामी वेदानन्द सरस्वती*	१०-००
वैदिक धर्म	*स्वामी वेदानन्द सरस्वती*	२५-००
ईश्वर का स्वरूप	*सुरेशचन्द्र वेदालंकार*	प्रेस में
सहेलियों की वार्ता	*सुरेशचन्द्र वेदालंकार*	२०-००
सन्ध्या रहस्य	*पं० विश्वनाथ विद्यालंकार*	२५-००
आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो ?	*प्रो० रामविचार एम० ए०*	४-००
वैदिक धर्म का संक्षिप्त परिचय	*ओम्प्रकाश त्यागी*	६-००
पूर्व और पश्चिम	*नित्यानन्द पटेल*	३५-००
सन्ध्या विनय	*नित्यानन्द पटेल*	६-००
गीत सागर	*पं० नन्दलाल वानप्रस्थी*	२५-००
वेद भगवान बोले	*पं० वा० विष्णुदयाल (मारीशस)*	१५-००
हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष	*पं० नरेन्द्र*	१५-००
आचार्य शंकर का काल	*आ० उदयवीर शास्त्री*	१०-००

याज्ञिक आचार-संहिता	*पं० वीरसेन वेदश्रमी*	४५-००
प्राणायाम विधि	*महात्मा नारायण स्वामी*	२-००
प्रेरक बोध कथाएँ	*नरेन्द्र विद्यावाचस्पति*	१५-००
ओंकार गायत्री शतकम्	*कवि कस्तूरचन्द*	३-००
जीवात्मा	*पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय*	४०.००
सन्ध्या : क्या, क्यों, कैसे	*पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय*	१५-००
विवाह और विवाहित जीवन	*पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय*	१८-००
जीवन गीत	*धर्मजित् जिज्ञासु*	१२-००
पंचमहायज्ञविधि	*महर्षि दयानन्द*	३-००
व्यवहारभानु	*महर्षि दयानन्द*	४-००
आर्योद्देश्यरत्नमाला	*महर्षि दयानन्द*	१-५०
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	*महर्षि दयानन्द*	१-५०
ब्रह्मचर्यसन्देश	*सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार*	२५-००
श्रीमद्‌भगवद्‌गीता	*पं० सत्यपाल विद्यालंकार*	१५-००

WORKS OF SVAMI SATYAPRAKASH SARASVATI

Founders of Sciences in Ancient India (Two Vols.)	500-00
Coinage in Ancient India (Two Vols.)	600-00
Geometry in Ancient India	350-00
Brahmgupta and His Works	350-00
God and His Divine Love	5-00
The Critical and Cultural Study of Satapath Brahman	In Press
Speeches, Writings & Addresses Vol.I : VINCITVERITAS	150-00
Speeches Writings & Addresses Vol.II : ARYA SAMAJ; A RENAISSANCE	150-00
Speeches, Writings & Addresses Vol. III : DAYANAND ; A PHILOSOPHER	150-00
Speeches, Writings & Addresses Vol. IV THREE LIFE HAZARDS	150-00

कर्म काण्ड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका	३-००	संध्या-हवन-दर्पण (उर्दू)	८-००
पंचयज्ञ प्रकाशिका	८-००	सत्संग मंजरी	६-००
वैदिक संध्या	१-००	Vedic Prayer	3-00
सामाजिक पद्धतियाँ (मदनजीत आर्य)	१२-००		

घर का वैद्य

जब प्रकृति की अनमोल दवाइयाँ आपको आसानी से उपलब्ध हों तो गोली, पुड़िया, कैप्सूल या इन्जेक्शन की क्या जरूरत है ?

घर का वैद्य—प्याज	७-००	घर का वैद्य—हल्दी	७-००
घर का वैद्य—लहसुन	७-००	घर का वैद्य—बरगद	७-००
घर का वैद्य—गन्ना	७-००	घर का वैद्य—दूध-घी	७-००
घर का वैद्य—नीम	७-००	घर का वैद्य—दही-मट्ठा	७-००
घर का वैद्य—सिरस	७-००	घर का वैद्य—हींग	७-००
घर का वैद्य—तुलसी	७-००	घर का वैद्य—नमक	७-००
घर का वैद्य—आँवला	७-००	घर का वैद्य—बेल	७-००
घर का वैद्य—नींबू	७-००	घर का वैद्य—शहद	७-००
घर का वैद्य—पीपल	७-००	घर का वैद्य—फिटकरी	७-००
घर का वैद्य—आक	७-००	घर का वैद्य—साग-भाजी	७-००
घर का वैद्य—गाजर	७-००	घर का वैद्य—अनाज	७-००
घर का वैद्य—मूली	७-००	घर का वैद्य—फल-फूल	७-००
घर का वैद्य—अदरक	७-००	घर का वैद्य—धूप-पानी	१५-००

सभी छब्बीस पुस्तकें छः आकर्षक जिल्दों में भी उपलब्ध

घर का वैद्य-१ (प्याज, लहसुन, गन्ना, नीम, सिरस)	४५-००
घर का वैद्य-२ (तुलसी, आँवला, नींबू, पीपल, आक)	४५-००
घर का वैद्य-३ (गाजर, मूली, अदरक, हल्दी, बरगद)	४५-००
घर का वैद्य-४ (दूध-घी, दही-मट्ठा, हींग, नमक, बेल)	४५-००
घर का वैद्य-५ (शहद, अनाज, फिटकरी, साग-भाजी, फल-फूल)	४५-००
घर का वैद्य—धूप-पानी	४०-००

चित्र

स्वामी दयानन्द (झण्डेवाला)	१६" × २२" बहुरंगी	६-००
स्वामी दयानन्द (कुर्सी)	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी दयानन्द (आसन)	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी श्रद्धानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
गुरु विरजानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
पण्डित लेखराम	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी दर्शनानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
पं० गुरुदत विद्यार्थी	१८" × २२" एक रंग	३-००
महात्मा हंसराज	१८" × २२" एक रंग	३-००

मई १९९५

बाल साहित्य

आर्य नेताओं की बालोपयोगी जीवनियाँ

महर्षि दयानन्द	*त्रिलोकचन्द विशारद*	४-५०
गुरु विरजानन्द	*त्रिलोकचन्द विशारद*	४-५०
स्वामी श्रद्धानन्द	*त्रिलोकचन्द विशारद*	४-५०
धर्मवीर पं० लेखराम	*त्रिलोकचन्द विशारद*	३-००
मुनिवर पं० गुरुदत्त	*त्रिलोकचन्द विशारद*	३-००
स्वामी दर्शनानन्द	*सत्यभूषण वेदालंकार*	३-००
महात्मा हंसराज	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	४-५०
वीतराग सेनानी स्वामी स्वतन्त्रानन्द	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	४-५०
तपोधन महात्मा नारायण स्वामी	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	५-५०
देवतास्वरूप भाई परमानन्द	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	५-५०
नैतिक शिक्षा—प्रथम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	२.५०
नैतिक शिक्षा—द्वितीय	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	२.५०
नैतिक शिक्षा—तृतीय	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	३.५०
नैतिक शिक्षा—चतुर्थ	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	४-५०
नैतिक शिक्षा—पंचम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	४.५०
नैतिक शिक्षा—षष्ठ	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	५.५०
नैतिक शिक्षा—सप्तम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	५.५०
नैतिक शिक्षा—अष्टम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	५.५०
नैतिक शिक्षा—नवम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	८००
नैतिक शिक्षा—दशम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	८००
ब्रह्मचर्य गौरव	*स्वामी जगदीश्वरानन्द*	९००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	*स्वामी जगदीश्वरानन्द*	९००
स्वर्ण पथ	*स्वामी जगीदश्वरानन्द*	१२००
आचार्य गौरव	*ब्र० नन्दकिशोर*	५००
त्यागमयी देवियाँ	*महात्मा आनन्द स्वामी*	८००
हमारे बालनायक	*सुनील शर्मा*	८००
देश के दुलारे	*सुनील शर्मा*	८००
हमारे कर्णधार	*सुनील शर्मा*	८००
आदर्श महिलाएँ	*नीरू शर्मा*	८००
कथा पच्चीसी	*स्वामी दर्शनानन्द*	८००
बाल शिक्षा	*स्वामी दर्शनानन्द*	२.५०
वैदिक शिष्टाचार	*हरिश्चन्द्र विद्यालंकार*	३००
दयानन्द चित्रावली	*पं० रामगोपाल विद्यालंकार*	२५००
आर्य सूक्ति सुधा	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	१२-००

R.No. 622/57—Regd. No. DL-12026/95

प्रकाशक-मुद्रक अजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेद प्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

नये प्रकाशन

दीप्तिः—स्वामी विद्यानन्द सरस्वती। अनेक विषय हैं जिन पर आर्यसमाज में विभिन्न स्तरों पर समय-समय पर विचार होता आया है, परन्तु वे आज तक विवादास्पद बने हुए हैं। लेखक ने उन्हें गम्भीरतापूर्वक विचार कर निर्णय के तट पर पहुँचाने का प्रयास किया है। मूल्य ८०.०० रु०

वैदिक ज्ञान-धारा—प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु। आर्यसमाज के कई दिवंगत महात्माओं, हुतात्माओं, विचारकों, नेताओं व उपदेशकों के महत्त्वपूर्ण लेखों, भाषणों, शास्त्रार्थों व प्रवचनों का संकलन। मूल्य ८०.०० रु०

बिखरे मोती—डॉ० भवानीलाल भारतीय। आर्य महापुरुषों के रोचक, शिक्षाप्रद संस्मरणों, शास्त्रार्थों की नोक-झोंक, आर्यों के आदर्श चरित्र को प्रख्यापित करने वाले जीवन प्रसंगों, साहित्यकारों की हास्यपूर्ण उक्तियों तथा उपदेशकों की हाजिर जवाबी को एक साथ प्रस्तुत किया गया है।
मूल्य ४०.०० रु०

आर्य सूक्ति-सुधा—प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु। महर्षि दयानन्द जी महाराज से लेकर शास्त्रार्थ महारथी श्री पं० शान्तिप्रकाश जी व श्रद्धेय पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक तक अधिक से अधिक शीर्षस्थ वैदिक विद्वानों की सूक्तियों का संग्रह, समुद्र मंथन जैसा प्रयास है। मूल्य १२.०० रु०

बोध-कथा

मानव सेवा से बढ़कर कुछ नहीं

वैशाखी का पर्व था। आनन्दपुर में गुरु गोविन्दसिंह का उपदेश सुनने के लिए दूर-दूर के शिष्य और जनता एकत्र हो गई थी। जनता में भारी उत्साह था। तभी समाचार मिला कि मुगलों की बड़ी फौज ने हमला कर दिया है। गुरु गोविन्दसिंह के निर्देश पर जनता केसरिया बाना पहन कर लड़ाई के मैदान में उतर आई। जनता ने बीच रास्ते में ही फौज की अच्छी पिटाई की। लड़ाई के अगले दिन कुछ शिष्यों ने गुरु जी से शिकायत की कि कन्हैया नाम का एक शिष्य दुश्मन की फौज के घायलों को भी पानी पिला रहा था।

गुरु जी ने कन्हैया को बुलवा भेजा। उससे पूछा—"क्या यह शिकायत ठीक है?" बड़ी विनम्रता से कन्हैया ने उत्तर दिया—"गुरु जी, लड़ाई के मैदान में तो मैं घायलों, तड़पतों और प्यासों को लगातार पानी पिलाता रहा हूं। हर जरूरतमन्द की प्यास बुझाना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। हर जरूरतमन्द प्यासे की पुकार सुनकर उसकी प्यास बुझाना मैं अपना फर्ज समझता हूँ। मुझे उन में न तो सिख दिखाई देता है और न किसी दुश्मन का चेहरा, मुझे तो हर प्यासे में आपका या भगवान् का ही चेहरा दिखाई देता है।

❀ ❀ ❀

एक बार गुरु नानक ने अपने शिष्यों से उनकी इच्छा पूछी। सभी उपस्थित शिष्यों ने बढ़-चढ़ कर अपनी इच्छाओं-अभिलाषाओं का बखान किया। किसी ने खूब धन-सम्पति जुटाने की बात की, तो किसी ने हथियारों की ताकत बढ़ाने की बात की, तीसरे ने सभा-संगत के लिए बड़ी इमारत बनाने का सुझाव दिया। अन्त में शिष्य लहणा की बारी आई। गुरु जी ने पूछा—"लहणा, तुम्हारी क्या इच्छा है?"

लहणे ने हाथ जोड़कर कहा—"गुरु जी, मेरी तो यही तमन्ना-इच्छा है कि आप गुरुदेव, गुरुभाइयों और दूसरे सभी मानवों की सेवा-अरदास करता रहूँ।"

शिष्य का उत्तर सुनकर गुरु नानकदेव प्रसन्न हो उठे। उन्होंने लहणा को बांहों में बांधते हुए कहा—"वत्स, तुम मेरे सच्चे उत्तराधिकारी हो। असल में मानव की सेवा से बढ़कर दूसरी कोई बड़ी सेवा नहीं।"

गुरु नानकदेव ने शिष्य लहणा का नया नामकरण कर उन्हें अंगद नाम दिया और उन्हें ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया और वही गुरु नानकदेव के बाद दूसरे नये गुरु के पद पर प्रतिष्ठित हुए।

प्रस्तुति—नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ४४, अंक ११ वार्षिक मूल्य : बीस रुपये जून १९९५

सम्पा॰ अजयकुमार आ॰ सम्पादक : स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

सामान्य जिज्ञासु के लिए उपनिषदों की देन—६

ओ३म् की सच्ची व्याख्या :

उसकी महिमा का विवरण माण्डूक्य उपनिषत् के माध्यम से

—नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

एक जंगल में एक शेरनी रहती थी। उसके पेट में बच्चा था। उसे कई दिनों से कोई शिकार नहीं मिला। भूख से परेशान वह शिकार की तलाश में जंगली बकरी-बकरों के एक झुण्ड के पास जा पहुंची, वह फुर्ती से उन पर झपटी पर विफल रही। सब बकरी-बकरे भाग गए। उसी समय उसे तेज प्रसव-वेदना हुई, बच्चे को जन्म देकर वह मर गई। बकरी-बकरे लौट कर आए तो उन्होंने देखा कि शेरनी मरी पड़ी थी, पर उस का बच्चा जिन्दा असहाय पड़ा था। बकरी-बकरों ने उसे उठाकर पाल लिया। शेरनी का बच्चा बकरों के झुण्ड के साथ रहने लगा। वह उनकी तरह खाना खाने लगा, उनकी तरह मिमियाने लगा। थोड़े ही दिनों में लगा कि वह शेर नहीं बकरा है। वह दिनों-दिन बढ़ने लगा, अचानक एक दिन एक बड़े शेर ने बकरों के झुण्ड पर हमला किया। सब बकरी-बकरे प्राण बचाकर भाग निकले पर शेर का बच्चा वहीं खड़ा रहा, उसने अचम्भे से शेर को देखा, फिर मिमियाने लगा। शेर ने शेर बच्चे को देखा फिर कहा—"तुम यहां बकरी बकरों के बीच में क्या कर रहे हो ?" शेर बच्चा फिर मिमियाया। इस पर वह शेर, शेर के बच्चे को पकड़ कर पानी के एक सोते के पास ले गया। जब वहां पानी में उसने शेर के बच्चे को अपना और शेर का चेहरा देखने के लिए कहा तो उसे मालूम पड़ा कि वह भी शेर की तरह शेर है। फिर शेर ने पूछा तुम क्यों मिमियाते हो और फल-मूल खाते हो। शेर बच्चा हैरान हो गया, उसे लगा कि शेर की बात में दम है। फिर शेर उसे अपनी मांद में घसीट कर ले गया, जबदस्ती मांस

का एक टुकड़ा उसके मुंह में ठूंस दिया, पहले वह झिझका, फिर खाने लगा । ऐसा लगा कि मानो वह गहरी नींद से जागा हो, उसने अपने को पहचाना, उसने पंजे फैलाए और शेर की तरह गरजने लगा ।

आत्मज्ञान की सूक्ष्म व्याख्या

अपने को पहचानना ही—अपने को जानना ही सच्चा आत्मज्ञान है। भारतीय संस्कृति के जिन ग्रन्थों में आत्मज्ञान की सूक्ष्म व्याख्या है--वे ही उपनिषत् कहलाते हैं, उपनिषद् वेदों के अन्तिम भाग हैं । उपनिषत् शब्द सद्धातु से बना है—उसका मतलब है ब्रह्मविद्या, इस ब्रह्मविद्या से अविद्या का नाश होता है, आनन्द मिलता है--जन्म-मरण का दु:ख छूट जाता है। ग्यारह प्रधान उपनिषदों में छठी उपनिषद् है—माण्डूक्य । यद्यपि आकार में यह सबसे छोटी है, तथापि परमात्मा के मुख्य वाचक 'ॐ' ओ३म्'—ओङ्कार' शब्द की महत्ता इसमें वर्णित है, फलतः सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है । मण्डूक एक ऋषि थे, उनके ही कुल में माण्डूक्य महर्षि हुए, उनके द्वारा प्रस्तुत की गई यह उपनिषद् है। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है—प्रणव धनुष का काम करता है—**'प्रणवः धनुः शरः हि आत्मा'**। योग दर्शन कहता है—**'तस्य वाचकः प्रणवः'**—परमात्मा का वाचक प्रणव है—प्रणव अर्थात् ओङ्कार । अ, उ, म्—इन तीन के कारण ओङ्कार त्रिमात्र कहा जाता है । ध्यान के लिए ओङ्कार के जप का निर्देश किया जाता है। केनोपनिषद् में उल्लेख है कि उमा स्वरूपा देवी से इन्द्र, अग्नि तथा वायु को ज्ञात हुआ कि उनके सामने जो यक्ष आ गया था—वह ब्रह्म था। विनोबा भावे ने लिखा है—'उमा' 'ओम्' का ही रूपान्तर है। वह कैसे ? अगर अ+उ+म् में 'अ' को स्त्री लिंगी -'आ' बनाकर उ+म् के पीछे जोड़ दिया जाए तो उमा बन जाता है। यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमानों में 'ओम्' ही एमन (Amen) या आमीन बन जाता है । ओङ्कार-ओ३म् की महिमा का गुणगान करते हुए महर्षि माण्डूक्य बतलाते हैं—ॐ—अ+उ+म् 'ओम्'—यह एक छोटा-सा अक्षर है। यह अविनाशी आत्म तत्त्व है । यह सब संसार उसी 'ओ३म्' की एक छोटी-सी व्याख्या है । वर्त्तमान संसार ही नहीं, भूत जो था, वर्त्तमान जो है, भविष्यत् जो होगा—यह सब उसी की व्याख्या है—वह सब ओङ्कार ही है । इतना ही नहीं, प्रत्युत इन कालों से अतीत और जो कुछ भी है—वह सब ओङ्कार ही है। सम्बद्ध ऋचा इस प्रकार है—

ओ३म् इति एतद् अक्षरम् इदं सर्वं तस्य उपव्याख्यानम् ।
भूतं, भवद्, भविष्यंत्—इति सर्वम् ओङ्कार एव ।
यत् च अन्यत् त्रिकालातीतं तद् अपि ओङ्कार एव ।।१।।

उल्लेखनीय है **'अक्षरम् इदं सर्वम्'** यह वाक्य—यह अक्षर परमात्मा के साथ था—अक्षर परमात्मा ही था (द वर्ड वाज विद गॉड, दि

वर्ड वाज गॉड'–बाइबिल के उद्धरण से हूबहू मिल जाता है । बाइबिल में भी यही अक्षर 'ईश्वर' कहा गया है । उपनिषदों में पर-ब्रह्म के ध्यान के लिए ओङ्कार महत्त्वपूर्ण साधन माना गया है । कठोपनिषद् में नचिकेता को ब्रह्मज्ञान देते हुए आचार्य कहते हैं– **'सर्वे वेदाः यत्पदमामनन्ति 'ओम्' इत्येतत्'**–सम्पूर्ण वेद समस्त तपों के लक्ष्य जिस अक्षर की घोषणा करते हैं, वह अक्षर ओङ्कार ही है । प्रश्नोपनिषद् में सत्यकाम ने अपने गुरु से पूछा–''मृत्यु काल तक प्रणव का निरन्तर जप ध्यान करने से क्या गति होती है ?'' गुरु ने उत्तर दिया था–''हे सत्यकाम, जो पर है, जो अपर है, वह ओङ्कार है । (**एतद् वै सत्यकाम परं च अपरं ब्रह्म यद् ओङ्कारः।** मुण्डकोपनिषद् में प्रणव को धनु और शर को आत्मा कहा गया है (**प्रणवः धनुः शरः हि आत्मा**)। श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा गया है–अपने शरीर को नीचे की अरणि और प्रणव को ऊपर की अरणि समझ कर–दोनों को ध्यान की रगड़ से रगड़े तो छिपी हुई ब्रह्माग्नि प्रकट हो जाती है । (**स्वदेहम् अरणिं कृत्वा प्रणवं च उत्तर-अरणिं ध्यान-निर्मन्थनाभ्यासात् देवं पश्येत् निगूढवत्**)।

उपनिषद् की पहली ऋचा में उल्लेख है कि भूत-वर्त्तमान-भविष्यत् आदि तीनों कालों से अतीत-सृष्टि के निर्माण से पूर्व–जब काल और समय का निर्धारण नहीं हुआ था–उस कालातीत अवस्था में भी ओङ्कार था । स्वभावतः जिज्ञासा होती है यदि काल के चार पक्ष हैं तो ब्रह्म के भी चार पक्ष होने चाहिए । माण्डूक्य ऋषि अगली ऋचा में कहते हैं–यह सब कुछ ब्रह्म ओङ्कार है । यह आत्मतत्त्व-परमात्मा चार पादों या चरणों वाला है । ऋचा इस प्रकार है–

सर्वं हि एतद् ब्रह्म अयम् आत्मा ब्रह्म, सोऽयमात्मा चतुष्पात् ।

ब्रह्म के चार चरणों या पादों की व्याख्या अगली ऋचाओं में करते हुए महर्षि बतलाते हैं । वह जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्त तथा तुरीय-चार प्रकार के पाद बतलाते हैं । अगली ५ ऋचाओं में आत्मा तथा ब्रह्म के विषय में चर्चा की गई है । आठवीं से बारहवीं ऋचाओं में ओङ्कार की चार मात्राओं का वर्णन किया गया है । आत्मज्ञान-आत्म तत्त्व जाग्रत अवस्था में बहिःप्रज्ञ होता है । उस समय वह सिर, आंख, कान, वाणी, फेफड़े, हृदय तथा पैर आदि सात अंगों द्वारा जीवन-यापन कर रहा होता है । ऐसे ब्रह्म के भी सिर रूपी अग्नि, सूर्य-चन्द्र जैसी आंखें, दिशाएं रूपी कान, वेद (ज्ञान) वाणी है, वायु फेफड़े हैं, विश्व हृदय है और पृथ्वी पांव रूपी-सात अंग-सप्तांग हैं । पंच ज्ञानेन्द्रियां, पंच कर्मेन्द्रियां, पंच प्राण, मन-बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि चार अन्तःकरण–इस प्रकार कुल उन्नीस मुख हैं, इसलिए जैसे आत्मा व्यष्टि रूप में भिन्न-भिन्न नर-नारियों के स्वरूप में विद्यमान है । इसलिए जैसे आत्मा वैश्वानर

है, वैसे ब्रह्म भी वैश्वानर है। जैसे शरीर की जाग्रत अवस्था ब्रह्म का जाग्रत स्थान है । उपनिषत् के ऋषि ने आत्मा तथा परमात्मा का पहला प्रथम-पाद-चरण कहा है । (**जागरितस्थानो बहिःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग् वैश्वानरः प्रथमः पादः**)।

ऋषि बतलाते हैं–आत्मा का जब स्वप्नस्थान होता है, उस समय वह अन्तःप्रज्ञ हो जाता है । बाहरी प्रज्ञावस्था में आत्मा अपने सप्ताङ्ग शरीर और भोग के १९ उपकरणों से संसार का भोग करता है । तब वहां स्वप्न अवस्था में सूक्ष्म शरीर विचारमय जगत् का चिन्तन करता है । वहां बिना खाए खाता है, बिना पीए पीता है, बिना आंखें खोले देखता है, बिना कान के सुनता है । उस अवस्था में स्थूल इन्द्रियां कार्य नहीं करतीं, परन्तु सूक्ष्म रूप में उनका काम चलता है । अनेक नर-नारियों में दीखने वाला आत्मा का स्थूल शरीर 'वैश्वानर' कहा जाता है, उसका सूक्ष्म शरीर तेजस् कहाता है । (**स्वप्नस्थानः अन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्गः एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक् तैजसः द्वितीयः पादः**)।

आत्मज्ञान के तीसरे स्थान-पाद पर पहुंच कर जब सुषुप्त अवस्था में पहुंचता है, तब उसे कोई आकांक्षा नहीं होती । वह कोई सपना नहीं देखता, जाग्रत अवस्था में शक्तियों को विषयों में बाहर बखेरने की जगह एक केन्द्र में समेट कर ज्ञानमय-आनन्दविभोर होकर चेतना की ओर आकृष्ट होकर ज्ञानमय हो जाता है । शरीर की अनुभूति छूट जाती है। सोकर उठकर उसे आत्मज्ञान का आनन्द मिलता है । (**यत्र सुप्तः न कञ्चन कामं कामयते, न कञ्चन स्वप्नं पश्यति, तत् सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थानः एकीभूतः प्रज्ञानघनः एव आनन्दमयः हि आनन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञः तृतीयः पादः**)।

उपनिषत्कार कहते हैं–जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्त स्थानों में वास करने वाला ब्रह्म ही सर्वेश्वर, सर्वज्ञ एवम् अन्तर्यामी है, वही सब भूतों की उत्पत्ति तथा प्रलय का कारण है । (**एष सर्वेश्वरः एव सर्वज्ञः एष अन्तर्यामी एष योनिः सर्वस्य प्रभव अप्ययौ हि भूतानाम्**)।

निर्गुण चतुर्थ पाद ब्रह्म का वर्णन करते हुए मुनि माण्डूक्य कहते है–तत्त्वतः आत्मा और ब्रह्म निर्गुण हैं, वह न अन्तःप्रज्ञ है, न बहिःप्रज्ञ है, न उभयप्रज्ञ है, आत्मा न दृश्य है, न व्यवहार्य है, न ग्राह्य है, उनका न चिन्तन किया जा सकता है, न उसे वाणी से अभिव्यक्त किया जा सकता है, अपने आप में वह एक है, उसे जान लेने से संसार का विश्व का सारा प्रपंच शान्त हो जाता है, उस प्रपंच से व्यक्ति उद्विग्न नहीं होता, वह शिव-शान्त, कल्याणकारी शिव है, उस जैसा दूसरा कोई नहीं है । वह चतुर्थ पाद है– यही आत्मा का शुद्ध रूप है–जिसे जानना चाहिए । उपनिषत्कार ने इस ऋचा में इन छोटे-छोटे वाक्यों में जो कुछ

कहा है वह आत्मा और ब्रह्म दोनों पर एक समान चरितार्थ होता है। अपने यथार्थ रूप में ब्रह्म और आत्मा न बहि:प्रज्ञ है और न अन्त:प्रज्ञ, न उभयप्रज्ञ, न प्रज्ञानघन और न प्रज्ञ है, न उसका वाणी से वर्णन हो सकता है, न वह विचारकोटि में आ सकता है । इस नकारात्मकता के साथ उनके बारे में यही कहा जा सकता है कि अपने स्वरूप में ही उसका भान किया जा सकता है । सम्बन्धित ऋचा इस प्रकार है–

नान्त:प्रज्ञम्, न बहि:प्रज्ञम्, नोभयत: प्रज्ञम् न प्रज्ञानघनम् प्रज्ञम् नाप्रज्ञम् । अदृष्टम् अव्यवहार्यम् अग्राह्यम् अलक्षणम्, अचिन्त्यम् अव्यपदेश्यम् । एकात्मप्रत्ययसारम् । प्रपञ्चोपशमम्, शान्तम्, शिवम्, अद्वैतम् चतुर्थं मन्यन्ते, स आत्मा स विज्ञेय: ।।६।।

महर्षि माण्डूक्य ने **'ओम् इति एतद् अक्षरम्'**– वाक्य से इस उपनिषत् का प्रारम्भ कर अभी तक आत्मा और ब्रह्म के चार पादों का वर्णन किया है । अब ऋषि प्रत्येक पाद के अक्षरों और उसकी मात्राओं की चर्चा करते हुए कहते हैं–आत्मा तथा ब्रह्म का वर्णन मात्राओं में ओङ्कार है। 'अ' 'उ' 'म्' तीन मात्राएं ही तीन पाद हैं। ब्रह्म के तीन पाद ही तीन मात्राएं हैं। 'अ' 'उ' 'म्' का सामूहिक रूप ओङ्कार स्वयं परमात्म तत्त्व है। सम्बद्ध मन्त्र देखें–

सोऽयमात्मा अध्यक्षरमोङ्कार: ,अधिमात्रं पादा मात्रा
मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ।।८।।

'ओ३म्' की 'अ उ म्' तीन मात्राएं या पाद शरीर तथा प्रकृति की जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति की तीन अवस्थाएं आत्मा तथा ब्रह्म की जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति की तीन स्थितियों पर किस प्रकार चरितार्थ की जा सकती हैं, उसका वर्णन करते हुए उपनिषत्कार बतलाते हैं–'अ उ म्' का सामूहिक ओङ्कार रूप स्वयं परमात्म तत्त्व है और उसकी तीन मात्राएं या पादों की ब्रह्म से समानता है। उनका कथन है कि उस ओङ्कार की पहली अकार मात्रा ही शब्दमात्र में व्याप्त होने के कारण और जाग्रत होने के कारण वैश्वानर कही जाती है । सब अक्षरों में अ की मात्रा व्याप्त है, उसके बिना कोई अक्षर बोला नहीं जा सकता। इसी प्रकार वैश्वानर परमात्मा सब पदार्थों में व्याप्त है। सब अक्षरों में अकार सर्वप्रथम है । इसी प्रकार सृष्टि के सब कारणों में परमात्मा-प्रथम कारण या कर्त्ता है–जो यह तथ्य जान लेता है। वह सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण कर सकता है । उपयुक्त ऋचा इस प्रकार है–

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकार: प्रथमा मात्राऽऽप्ते: ।
आदिमत्त्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान् कामान् आदिश्च भवति य एवं वेद।९।

शरीर में आत्मा तथा प्रकृति में ब्रह्म के स्वप्न स्थान को आत्मा

तथा ब्रह्म का तैजस्–शरीर कहा गया था–यहां ओङ्कार की दूसरी मात्रा उकार–अ से उत्कृष्ट होने के कारण 'उत्कर्षात्' महान् होने से अथवा दोनों भाव होने के कारण–या दोनों मात्राओं के बीच में होने के कारण–दोनों के साथ सम्बन्ध होने के कारण उकार के कारण जो उपासक ओङ्कार की उपासना करता है–उसका उत्कर्ष होता है । ओङ्कार में उ की मध्य स्थिति होने के कारण महत्ता को प्राप्त करता है । उसका ज्ञान दोनों पक्षों के लिए एक समान हो जाता है । दोनों भाव होने के कारण स्वप्न के समान सूक्ष्म जगत् रूपी शरीर वाला तैजस् नामक दूसरा पाद है। ऐसे आत्मज्ञानी–ब्रह्मज्ञानी के कुल में कोई अब्रह्मवित् नहीं होता। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं होता, जिसे आत्मा या ब्रह्म का ज्ञान न हो । 'उ' से उत्कर्ष की भी सूचना मिलती है। जो न कभी दुःखी न सुखी, न मित्र न शत्रु–सब के समान रहता है। ऋचा इस प्रकार है–

स्वप्नस्थानः तैजसः उकारः द्वितीया मात्रा, उत्कर्षात् उभयत्वात् वा उत्कर्षति ह वै । ज्ञानसन्ततिं समानः च भवति, न अस्य अब्रह्मवित् कुले भवति, य एवं वेद ॥१०॥

ओङ्कार का मकार–तीसरी मात्रा है–शरीर में आत्मा तथा प्रकृति में ब्रह्म का सुषुप्त स्थान–आत्मा तथा ब्रह्म का प्राज्ञ–शरीर कहा जाता है। मात्रा का अर्थ मापना है–'मा मापने' । इस ओङ्कार की तीसरी 'मकार' मात्रा माप करने वाले या जीतने वाला होने से सुषुप्ति के अभाव कारण में लीन जगत् ही उसका शरीर है–प्राज्ञ नामक वह उसका तीसरा पाद है, जो यह जानता है, वह निश्चय ही इस कारण जगत् को माप लेता है–वह उसे भली प्रकार जान लेता है, वह सारे विषय को भली प्रकार अपने आत्मसात् कर लेता है । इस उपनिषद् का ११वां मन्त्र यह है–

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा ।
मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥११॥

इसी प्रकार मात्रा से रहित चतुर्थ पाद जिस पर कोई व्यवहार प्रचलित नहीं होता, जहां पहुंचकर साधक सब प्रपंचों एवं ज्ञान से अतीत कल्याणमय अद्वितीय पूर्ण ब्रह्म के चतुर्थपाद में पहुंच जाता है, वहां वह भूख, प्यास, शोक, मोह, वृद्धावस्था और मृत्यु आदि से उठकर शिव कल्याणकारी परम आत्मतत्त्व में समाविष्ट हो जाता है । वही अद्वितीयं अनुपम ओङ्कार जीवात्मा है। जो आत्मा को परमात्मा में व्याप्य होकर उसमें रम जाता है।

परम ब्रह्म उसके नाम की अपार महिमा है । इस उपनिषद् में परम ब्रह्म ओङ्कार के चार पादों का वर्णन उसके रहस्य को समझाने के लिए है। उपनिषत् का बारहवां मन्त्र यह है–

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैतः एवमोङ्कारः।
आत्मा एव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद य एवं वेद ॥१२॥

माण्डूक्य उपनिषत् अथर्ववेद से सम्बन्धित है । इस उपनिषद् में बड़ी गहराई से ओङ्कार का विषय प्रस्तुत किया गया है। शरीर में आत्मा और प्रकृति में ब्रह्म या परमात्मा ही—दो मुख्य तत्त्व संसार में हैं।

१. अ-शरीर तथा प्रकृति की जाग्रत अवस्था—२.'उ'-शरीर और प्रकृति की स्वप्नावस्था और ३. म—शरीर और प्रकृति की सुषुप्तावस्था के स्वरूप हैं । ये तीनों मात्राएं आत्मा तथा ब्रह्म के दृश्य सगुण रूप हैं । आत्मा की जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्त स्थितियां पूरी तरह व्यावहारिक हैं ।

इन तीन स्थितियों के अतिरिक्त आत्मा तथा ब्रह्म की निर्गुण स्थिति को तुरीय-चतुर्थ या मात्राहीन स्थिति कहा गया है । वस्तुतः वह अदृश्य-व्यवहार से परे, ग्रहण में न आने वाली विचार कोटि में न आने वाली अवस्था है—उसी स्थिति के आत्मा-परमात्मा को जानना हमारा लक्ष्य है ।

—नरेन्द्र विद्यावाचस्पति
अभ्युदय, बी-२२
गुलमोहर पार्क
नई दिल्ली—११००४९

सुख क्या, कैसा तथा कहाँ है?

—डॉ० रामअवतार अग्रवाल

सुख के लिए संसार भटक रहा है। सुख के लिए मानव जप तप तथा कीर्तन पूजा पाठ तथा अनेक प्रकार के कर्मकाण्ड करता है। सुख की खोज में कोई मन्दिर, मठ में बैठा है तो कोई मस्जिद, गिरिजाघर में भटक रहा है। कोई साम्प्रदायिक संवादों में संलिप्त है तो कोई धार्मिक प्रवचनों में रत, किन्तु सुख क्या कैसा और कहाँ है, यह कोई भी समझने का प्रयास नहीं कर रहा है? कोई मोक्षानंद से बंधा है तो कोई स्वर्गीय सुखों के सपनों में खोया हुआ है। ये सभी सुखाभिलाषी सुख भोग के लिए दौड़-धूप कर रहे हैं, परंतु वास्तविक सुख इनसे दूर है। सुख काल्पनिक नहीं है, संसार में सुख ही सुख है, सुख के अतिरिक्त कुछ नहीं है जगत् में जो दुःख है वह स्वाभाविक नहीं, वरन् मानवकृत है।

वस्तुतः जगत् में जितना भी क्रिया कलाप दृष्टिगोचर हो रहा है, वह सुख के लिए है। जीवन के चारों पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, सुख की खोज में लगे हुए हैं। भोग व त्याग का आधार भी सुख प्राप्ति है, ज्ञान-विज्ञान, कर्म और कर्त्तव्य भी सुख के पीछे भाग रहा है।

सृष्टि में सुख है, इसीलिए मनुष्य, जीवन-मरण के चक्र में घूम रहा है। किन्तु सुख क्या है यही इसके जीवन चक्र का उद्देश्य है।

ब्रह्माण्ड में ईश्वर, प्रकृति तथा जीव तीन अनादि तत्त्व हैं, परमात्मा पूर्ण चेतन, प्रकृति जड़ एवं जीव जड़-चेतन का योग है। प्रकृति जड़ता के कारण अक्रिय या निष्क्रिय है। वह अकेली कुछ नहीं कर सकती। उसमें जो गति क्रिया, वेग या शक्ति है, अनंत चेतना के कारण है। इसी के द्वारा वह लोक-लोकान्तरों के रूप में भ्रमणशील है। उसी के कारण प्राकृतिक ऋतु नियम अस्तित्व में हैं। उसी के द्वारा जीवनचक्र चल रहा है। सृष्टिचक्र के चलते रहने से ही अस्तित्व सुरक्षित है। विश्व में अस्तित्व है तो जीवन है, और जीवन है तो सुख है। इसलिए संसार में जीवन अथवा चेतना का नाम ही सुख है। प्रत्यक्षानुभूति के अनुसार जब जब चेतना का ह्रास होता है, तब तब मृत्यु निकट आती है परंतु जैसे-जैसे चेतना की वृद्धि होती है वैसे-वैसे सुखानुभूति होती है।

वैज्ञानिक विश्लेषण के अनुसार मृत्यु का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। जैसे अमृत का अभाव मृत्यु है, वैसे ही सुख का अभाव दुःख या दुःख का अभाव सुख है। जैसे-जैसे सुख का हनन होता है, वैसे-वैसे ही जीवन से दुःख व्यक्त होता है। सुख-

दुःख एक दूसरे के पूरक हैं। परंतु सुख सदैव रहनेवाला तत्त्व है, दुःख नहीं फलतः आत्मा जब-जब चेतना का स्पर्श करता है, तब-तब वह सुखी रहता है, किन्तु जैसे ही वह उससे विमुख होता है, वैसे ही वह दुःख पाता है। दार्शनिक भाषा में आत्मा का परमात्मा से प्रतिकूलता का अर्थ है, जीव का भोग्य पदार्थों में आसक्त होना।

ब्रह्म सर्वव्याप्त है अतः उससे कोई भी पृथक् नहीं हो सकता। आत्मा उससे अनुकूल और प्रतिकूल हो सकता है। उक्त प्राकृतिक सत्य को व्यक्त करते हुए वेद ने कहा है कि, उसकी छाया ही अनुकूलता अथवा अमृत या सुख है, तथा उसकी अछाया ही प्रतिकूलता अथवा मृत्यु या दुःख है।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः, कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

—ऋग्वेद १०।१२१।२, यजुर्वेद २५।१३

उससे विमुखता तथा सम्मुखता का सम्बन्ध जीव की मानसिक दशा पर निर्भर है, अतः उससे योग-वियोग मन, बुद्धि द्वारा होता है। मन जब-जब उससे स्पर्श करता है, तब-तब वह चेतना, स्फूर्ति, साहस, आशा-विश्वास व क्रतु के रूप में सुखानुभूति करता है। वह जब-जब उससे विमुख होकर पदार्थ में रत रहता है, तब-तब अचेतना, आलस्य, निराशा, अविश्वास, अकर्मण्यता तथा प्रमाद के रूप में दुःखानुभूति करता है। मन यदि एकाग्र है, तो जीव सुख-दुःख की अनुभूति नहीं कर सकता, क्योंकि उनका ज्ञान मानसिक तरंगों पर निर्भर है।

चेतना सर्वव्याप्त है, और वही सुख है। अतः संसार में सुख ही सुख है। सुख, आनन्द और अपार सौन्दर्य-बोध के भाव को व्यक्त करते हुए वेद कहता है कि यह जगत् अत्यन्त सुन्दर, सुखद व रमणीय है, अतः आनन्द भोग के लिए संसार में रमण करना चाहिए।

इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा। —यजुर्वेद ८।५१

जगत् नर्क द्वार नहीं है। वह स्वर्ग धाम है। यह अत्यन्त सुख कारक या स्वादिष्ठ है। —यजुः० १९।११

प्रकृति जड़ है। अतः उसमें सुख दुःख नहीं है। वह जीवन के अनुसार सुख-दुःख में सहायक है। जगत् के समस्त भोग्य पदार्थ प्रकृति प्रदत्त होने के कारण सुख-दुःख के प्रति निरपेक्ष हैं। वे संवेग रहित होने से ही किसी के द्वारा कैसे भी उपभोग किए जा सकते हैं। आत्मा जड़-चेतन का योग होने से सुख-दुःख रहित हो सकता है। इसीलिए निद्रा या सुषुप्ति अवस्था में वह चेतन रहता है और न अचेतन। जब उसका चित्त सुख-दुःख के दृश्यों या अभोग उपभोग की अवस्था में रमण करता है, तब वह उनकी अनुभूति करता है। इस प्रकार सुख का स्वरूप आत्मा के प्रचलन,

प्रगमन, चाल-चलन अथवा आचरण पर अवलंबित है। आचरण का अर्थ है चलना या गति करना।

जगत् में जीव तीन प्रकार के मार्गों पर प्रगमन करता है। मनुष्य जिन पथों से यात्रा आरंभ करता है, वही उसके सुख-दुःख के नियामक हैं। जैसे आदित्य, अपनी और अंबर ऋत नियमों के अनुकूल गति करके प्राकृतिक जगत् में स्थिरता, निश्चितता व्यवस्था बनाये रखते हैं। वैसे ही यदि व्यक्ति देवों के अनुसार सदाचरण करता है, तो जीव जगत् में सुख, स्थिरता, स्थायित्व व शान्ति स्थित रहती है। वेदों में इन्हें इसलिए देव कहा गया है क्योंकि ये प्राकृतिक देवों की भांति ऋताचारी होते हैं। इसके अतिरिक्त ये इसलिए देव कहलाते हैं, क्योंकि ये अहर्निश अपनी वासनाओं का दमन करते हुए पूर्व देवों की भाँति पर-हित में रत रहते हैं। इसके अनुसार परहित ही स्व-हित है। अत: इनके आचरण से ही संसार में सुख-वृष्टि होती है। यह इतिहास का निर्विवाद सत्य है कि परहित किये बिना व्यक्ति तथा जगत् सुखी नहीं हो सकता।

दूसरा पथ वह है, जिस पर मनुष्य स्वार्थ के अनुसार आचरण करता है। केवल स्वार्थपरता दुःख का कारण है। अत: ऐसे पुरुषों को दान का उपदेश इसलिए दिया जाता है जिससे सुख-दुःख के भावों में समन्वय बना रहे।

उक्त दो प्रकार के मानव संसार को सुख प्रदान करते हैं। तीसरे पथ पर चलनेवाले वे व्यक्ति हैं जो स्वार्थसिद्धि के लिए अन्य के हितों का विनाश करते हैं। ये परजीवी होते हैं। अत: इनके द्वारा जगत् में दुःख, पीड़ा, क्लेश, कष्ट तथा अशान्ति उत्पन्न होती है। संसार में सदा सुख शान्ति बनी रहे, इसलिए उपनिषदों में उपर्युक्त तीन प्रकार के मनुष्यों के लिए दमन या निग्रह, दान और दया के मार्ग निर्मित किये गये हैं। —बृहदारण्यकोपनिषद् २।२।१, २, ३

उपनिषदों के अनुसार देव, मानव व असुर तीनों प्रजापति के पुत्र हैं। अत: ये तीनों शाश्वत हैं। उपयुक्त मार्गों के कारण ही विश्व में तीन प्रकार के पुरुषों का विकास हुआ है। इन्हीं के आचरण से सुख-दुःख की धाराएँ प्रस्फुटित होती हैं। उपनिषदों के अनुसार सुख की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है वह उस अवस्था में स्रवित होता है, जिसमें विभिन्न मानवीय प्रवृत्तियों में समन्वय उत्पन्न होता है। मानव-जीवन में समन्वय तब तक उत्पन्न नहीं हो सकता, जब तक वह संयम, दान, दया द्वारा परोपकार में रत नहीं होता। इस प्रकार सुख कभी भी व्यक्तिगत भाव नहीं था और न है। सुख अन्यों या समाज के ऊपर निर्भर है। वह एक दूसरे के सहयोग से नियंत्रित है।

सुख किसी एक वस्तु या स्थान में केन्द्रित नहीं है। वह सर्वव्याप्त है। वह

माता-पुत्र, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भ्रातृ-भगिनी, मित्र-बन्धु, सखा-सखी इत्यादि के मधुर सम्बन्धों एवम् सदाचरण की अन्तर्धाराओं से फूटकर प्राप्त होता है। वह गुरु शिष्य, राजा-प्रजा के अटूट रिश्तों तथा पास-पड़ौस के सहयोग से स्रवित होता है। सुख किसी एक के ऊपर निर्भर नहीं है। वह सर्वव्याप्त होने से ही अन्न, औषधि, वनस्पति, पशु, पक्षी, ताप, अग्नि, विद्युत् तथा जलवायु आदि विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होता है। सुख सार्वजनिक व सार्वभौमिक है। अत: वेदों के अनुसार उसे प्राप्त करने के लिए मित्र-अमित्र, सुर-असुर सभी को नमस्कार करके प्रसन्न करने का प्रयत्न किया गया है। प्रत्येक प्राणी को नमस्कार करने से तात्पर्य यह है कि यदि कोई सुख में साधक नहीं बन सकता तो बाधक भी नहीं बने। सर्वव्याप्त होने के कारण ही वह अनेकताओं विभिन्नताओं सुन्दरताओं, असुन्दरताओं, प्राचीनताओं, नवीनताओं से नि:सृत होकर प्राप्त होता है। वह प्रकृति से निर्झरित होकर आत्मा का सिंचन करता है। सुख मधुरवाणी, मधुर-संगीत, सुखमय दृश्यों, नृत्य, हास-परिहास, क्रीड़ा, रतिक्रीड़ा, सुगन्ध, स्पर्श, ज्ञान-विज्ञान व विभिन्न कलाओं से उपलब्ध होता है। उसकी प्राप्ति का कोई निश्चित स्रोत नहीं है। वह विभिन्न रीतियों से ही प्राप्त होता है।

सुख पहाड़, खेत, खलियान, उद्योग, व्यापार, दूर-पास, रेगिस्तान, एकान्त, अनेकान्त, मौन, शोर-शराबे, हाट-बाजार, स्वप्न-निद्रा व जागृति इत्यादि सभी अवस्थाओं और सभी स्थानों में मिलता है। वह चलने-फिरने काम करने, खाने-पीने और श्वास-प्रश्वास से भी प्राप्त होता है। वह झरने सरोवर व समुद्र में भरा हुआ है। वह प्रकृति के कणकण से फूट रहा रहा है, तो स्त्री-पुरुषों के प्रणय प्रसंगों से भी छलक रहा है। वह पुरुष के बल वीर्य में निहित है तो स्त्री के अंग प्रत्यंग की सुन्दरता में अवस्थित है।

सुख किसी एक तत्त्व या व्यक्ति के पास नहीं है। वह सर्वजन के पास है और किसी के पास नहीं है। इसी सत्य को प्रतिपादित करते हुए उपनिषदों में कहा गया है कि सुख अल्प या किसी एक व्यक्ति के पास नहीं है। अल्प जब सर्व या अन्यों में मिलता है। तब वह सुख में बदलता है। वह विशाल, अनन्त या भूमा में निहित है अथवा भूमा या विशाल मानव समाज ही सुख है—

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति।

भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति॥ —छान्दोग्योपनिषद् ७।२३।१

अत: सुखोपभोग के लिए भूमा या समाज की कामना करनी चाहिए, क्योंकि समाज के बिना व्यक्तिगत सुख प्राप्त नहीं हो सकता। उपनिषत् के अनुसार सुख-भोग में व्यक्ति अपने को और अन्यों को भूलकर सुख या भूमा में एकाकार हो जाता है। जब वह न तो कुछ और देखता, कुछ और नहीं सुनता तथा कुछ और नहीं जानता

तब वही भूमा या सुख है। —छान्दो० ७।२४।१

सुखधारा अनन्त से अल्प की ओर प्रवाहित होती है। अत: उसे प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि वह अल्प द्वारा अनन्त की ओर प्रत्यावर्तित कर दी जाये, क्योंकि सुखधारा अवरुद्ध होने से दु:खधारा में बदल जाती है। अत: यदि कोई व्यक्ति प्राप्त सुख भोग को समाज में नहीं बाँटता तो वह दु:ख में परिवर्तित हो जाता है। सुख दु:ख में बदलता है तथा दु:ख सुख में । यह ऋत नियम है। जैसे अति भोजन, सुखदायक होने के बाद भी विष या दु:ख में बदलता है, वैसे ही अत्यल्प विष औषधि रूप में अमृत या सुख बनता है।

इस प्रकार सुख, व्यक्ति की संयमित भोगावस्था, अथवा नियंत्रित आहार विहार पर निर्भर है। अत: वैदिक संस्कृति अतिभोगवाद के विरुद्ध है-अति सर्वत्र वर्जयेत्।

वेदों के अनुसार सुख-पदार्थों में नहीं है। चराचर में जो चेतना या प्राणतत्त्व व्याप्त है, वहीं सुख है। अत: त्याग पूर्वक भोगों में ही सुख है—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्यस्विद् धनम्॥ —ईशा० उप० १

आत्मा जड़ चेतना का योग होने से उनमें व्याप्त चेतन का भोग, उन्हीं के द्वारा कर सकता है। वह जड़ता तथा चेतना का सीधे भोग नहीं कर सकता। पदार्थों में जो चेतन सत्ता व्याप्त है, उसी के भोग से व्यक्ति को सुख मिलता है। वेदों के अनुसार वही कुशल भोक्ता है जो इस रहस्य को समझकर भोग करता है। व्यक्ति ब्रह्म चेतना का भोग करता है, इसी कारण ब्रह्म पीयूष एवं सोम पान का उल्लेख मिलता है।

मनुष्य जब अचेतन होता है, तब वह चेतना का भोग नहीं कर सकता, क्योंकि तब वह मृत या जड़ होता है। इस प्रकार मृत या जड़ में सुख नहीं है। सुख चेतन द्वारा चेतना का भोग करने में ही है। इसीलिए वेदों में ब्रह्म पीयूष या सोम पान के लिए आग्रह किया गया है। अत: अमृत पीयूष अमृत सुख के लिए पीना चाहिए।

—ऋ० २।३०।६, ९।१०९।३, १०।८६।१४, ६।४७।१, १०।११९

—ऋ० ८।४।११ अथवा ८।१।४८, १४।१।३, यजु:० २६।२५

सुख जड़ चेतन के मिलन में है। अचेतना से दूर, चेतना में रहना ही सुख है। कर्म, श्रम, गति, ऊर्जा, शक्ति, चेतना के प्रतीक हैं। अत: कर्मशील या शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति सुखी होता है। अकर्मण्यता, आलस्य, गतिहीनता या शक्तिहीनता, अचेतना के द्योतक हैं। फलत: अकर्मण्य और शक्तिहीन पुरुषों को दु:ख प्राप्त होता है। जगत् में चेतना ही जीवन, अमृत या सुख है। अचेतना दु:ख या मृत्यु है। अत: यदि सुख चाहिए तो चेतना या शक्ति का विकास आवश्यक है। शक्ति या बल के अभाव में सुख प्राप्त होना असम्भव है।

मनुष्य के शुक्राणु, जो जड़ चेतना से मिलकर बने हैं, चेतना के विस्तारक हैं। आत्माएँ शुक्राणुओं में रहते हैं। वे जड़ चेतन के संयोग से जीवन प्राप्त करते हैं। आत्मा यदि शुद्ध चेतन होता तो वह जन्म-मरण के चक्र में नहीं फँसता। उसका ह्रास-विकास भी नहीं हो सकता था, क्योंकि चेतन में घट-बढ़ नहीं हो सकती। वृद्धि व अवृद्धि का कारण जड़ता है।

आत्मा जड़ चेतन का संयोग है। अत: उसे विकास के लिए अन्यों की आवश्यकता है। उसे जन्म से पूर्व व पश्चात् प्रकृति तथा ब्रह्म दोनों चाहिए। इनमें से किसी के अभाव में जीवन नहीं चल सकता। अत: जीवन नहीं है तो सुख भी नहीं है। संसार में सब से कीमती रत्न, सब से मूल्यवान् धन, जीवन है। ब्रह्माण्ड का सार-तत्त्व जीवन या लाइफ है। जीवन या लाइफ ही सुख है। अत: सुख के लिए जीवितों की तरह जीना चाहिए।

जीवन सुख क्या है? कैसा है? इसकी पहचान व परख का माध्यम स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य का अर्थ है नीरोग शरीर और बलवान् इन्द्रियाँ, अथवा स्वास्थ्य का शाब्दिक अर्थ है स्व या चेतना में अवस्थित रहना। व्यक्ति सुखी रहे, इसी के लिए उत्तम स्वास्थ्य के लिए वेदों में अनेक प्रार्थनाएँ की गईं हैं।

मानव स्वास्थ्य, स्वस्थ इन्द्रियों, बलिष्ठ मन व तीक्ष्ण बुद्धि के ऊपर निर्भर है। यदि मन इन्द्रियाँ कमजोर हैं तो व्यक्ति पूर्ण सुख प्राप्त नहीं कर सकता। वेदों में पूर्णसुख की सीमा १०० वर्ष मानी गयी है। उनके अनुसार मनुष्य को इतनी शक्ति प्राप्त हो कि वह १०० वर्षों तक ठीक प्रकार देखता रहे, सुनता रहे और बोलता रहे। वह १०० वर्ष या इससे भी अधिक वर्षों तक सुख पूर्वक अदीन रहकर जीवित रहे—

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शत प्रब्रवाम शरदः शतम् अदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥

—ऋग्वेद ७।६६।१६, यजुर्वेद ३६।१२४

उत्तम स्वास्थ्य के लिए जहाँ इन्द्रियों का सबल होना आवश्यक है वहाँ मनुष्य के सभी अङ्ग बलिष्ठ होने चाहिए। उसके १०० वर्ष तक दांत अक्षीण रहें, बाल काले रहें और शरीर का तेज और ओज बढ़ता रहे। उसका ओज व तेज कभी भी कम न हो, इसीलिए ब्रह्म से बल. तेज और ओज की प्राप्ति की कामना की गयी है।

वाङ्म आसन् नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम्॥

—अथर्व १९।६०।१

ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः प्रतिष्ठा। अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः।

—अथर्व १९।६०।२

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। बलमसि बलं मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।

वैज्ञानिक नियमों के अनुसार शक्ति, शक्ति से ही प्राप्त होती है, और वह शक्ति के नियन्त्रण में रहती है। अत: जीव अनन्त चेतना से प्रार्थना करता है कि हे देव तू बलशाली है, हमें भी शक्ति दे—

बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानळुत्सु नः।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि॥ —ऋग्वेद ३।५३।१८

बल व शक्ति से लौकिक सुख तो प्राप्त होता ही है, दूसरे वह सुख भी प्राप्त होता है, जो परम गति या ब्रह्म प्राप्ति में है। शक्ति से सभी प्रकार की मनोकामनाएँ, इच्छाएँ व आवश्यकताएँ पूर्ण होती हैं। उससे जहाँ विविध प्रकार के सुख व आनन्द उपलब्ध होते हैं, वहाँ उससे वह बल प्राप्त होता है, जो पूर्ण सुखों की आदि धारणा है। वेदों में इसीलिए प्रार्थनाएँ की गयी हैं कि सर्वशक्तिमान् ईश्वर जो सुखदायक है वह बलहीन को प्राप्त नहीं हो सकता।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो, न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात्।
—मुण्डकोपनिषद् ३।२।४

सुख शक्ति अभिन्न है, क्योंकि स्वस्थ व शक्ति सम्पन्न व्यक्ति के बिना, सुख उपलब्ध नहीं हो सकता। वैदिक दर्शन के अनुसार परम सुख की अवस्था वह है, जिसमें दु:ख, मृत्यु एवं भय, सुख, अमृत तथा अभय में बदलते हैं। सुख की परावस्था में जीव सदा सुखी रहते हैं, मृत्यु उनके निकट नहीं जाती, प्रत्युत वे अभीष्ट आयु प्राप्त करके इच्छानुसार मृत्यु के निकट जाते हैं। वे मृत्यु या अन्य किसी आपत्ति-विपत्ति से भयभीत नहीं होते। जिस प्रकार ग्रह, नक्षत्र, वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्र और आदित्य आदि देव न तो किसी से डरते हैं और न क्रोधित होते हैं, उसी प्रकार सुखी मानव के प्राण न तो भयभीत होते और न ही विचलित।

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः। एवा मे प्राण मा बिभेः।
—अथर्ववेद २।१५।१, २, ३, ४, ५, ६

इसके अतिरिक्त सुखी मनुष्य वह है, जो मित्र-अमित्र, ज्ञान-अज्ञान तथा दिन-रात सब से निर्भय रहता है। —अथर्ववेद १९।२५।६, १५, १९।१५।१

निर्भयता वहाँ रहती है जहाँ शक्ति होती है। बलहीन व्यक्ति कभी भी अभयता प्राप्त नहीं कर सकता। कर्म, श्रमशक्ति, ऊर्जा या गति, अभयता तथा स्वस्थता, चेतना के विभिन्न स्वरूप हैं। जहाँ चेतना रहती है, वहाँ ये सभी निवास करते हैं। चेतना अनन्त है। व्यक्ति अल्प या सीमित है। अत: स्थायी सुख के लिए अल्प को अल्पता की सीमाओं का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए, क्योंकि जिस पात्र में पाँच किलो पदार्थ आता है, उसमें उससे अधिक पदार्थ नहीं आ सकता। जो व्यक्ति सीमा या

पात्रता का उल्लंघन करके अधिक भोग का प्रयत्न करता है, वह सुख से वञ्चित हो जाता है, क्योंकि उसके पात्र या शरीर में सीमा से अधिक सुख समा नहीं सकता।

सीमा प्रकृति प्रदत्त है, मानवकृत नहीं। फलतः प्राकृतिक या स्वाभाविक सुख के लिए मनुष्य को अपनी सीमा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। सीमा में रहना चाहिए, इसी सत्य से संयम की निष्पत्ति हुई है। अतः जब जब मनुष्य असंयमी या अनिग्रही अथवा सीमा का अतिक्रमण करता है, तब तब दुःखी होता है। मानव दुःखी न हो, इसीलिए सीमांकन, संयम, नियमन या ऋताचरण का विधान है। वायु पृथिवी, चन्द्रमा, अग्नि, आदित्य, अनन्त की तुलना में सीमित हैं। सीमित होने के कारण ये संयमित या ऋतचारी होने से सदैव सीमा में रहते हैं।

इस प्रकार मनुष्य को भी सीमा या संयम में रखने के लिए ही ऋताचरण है। संयम के कारण जैसे देव स्थायी सुखी हैं, वैसे ही मानव भी संयम में रहकर ही सुखी बन सकता है। सुख और संयम अभिन्न मित्र हैं। मनुष्य की इन्द्रियाँ, मन बुद्धि नियन्त्रण पसन्द नहीं करतीं, इसीलिए संयमित करने के लिए धर्मग्रन्थों में मन के दमन एवम् इन्द्रिय निग्रह की व्यवस्था करनी पड़ी है।

वस्तुतः संयमन और नियमन का अर्थ मृत्यु पर विजय प्राप्त करना है। यम नाम मृत्यु का है, अतः नियमन का अर्थ मृत्यु को नियन्त्रित करना, यही वैदिक दर्शन के अनुसार मृत्यु पर विजय प्राप्त करना, यह है परम सुख, यही मोक्ष है एवम् यही ब्रह्म प्राप्ति है।

सुख मानसिक अवस्था है। दुःख भी मानसिक अवस्था है, किन्तु सुख सर्वत्र व्याप्त है और दुःख सुख का अभाव है। मानसिक स्थिति अथवा आध्यात्मिक प्रगति के अनुसार सुख की मात्रा या उसकी अनुभूति कम अधिक होती है। सुख का आनन्द या मोद-प्रमोद के लिए जिस स्वर्ग और ब्रह्मलोक की कल्पना की गयी है वह धरती पर ही है। सुधा के लिए भटकने की आवश्यकता नहीं है, वह सुकर्म एवं निरोग व सुडौल शरीर वाले व्यक्ति को इसी संसार में उपलब्ध है—

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः।
अश्लोणा अङ्गैरहुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान्॥

—अथर्व० ३।२८।५, ६।१२०।३

अर्थात् वेदानुसार जहाँ सुकर्म, रोगराहित्य, अमंगलता या पूर्णांगता, अकुटिलता और प्रेम है वहाँ सुख और आनन्द है, और जहाँ सुख है वहीं स्वर्ग है। हम और हमारा विश्व सुख सम्पन्न हो यही वैदिक जीवन की मुख्य व्याख्या है।

सुख अनुभूति का विषय है। वह व्याख्या तथा तर्क का विषय नहीं है, क्योंकि एक ही भोग, यदि एक व्यक्ति को आनन्द देता है, तो वही दूसरे को आनन्द नहीं

देता। रोगी व्यक्ति को स्वादिष्ठ भोजन दुःख देते हैं और निरोगी को सुख। इस प्रकार सुख, स्वास्थ्य के ऊपर निर्भर है।

मानव को अर्थ भोग से जो सुख मिलता है वह अल्प और अस्थायी है, परन्तु अर्थदान और विद्यादान से जो सुख प्राप्त होता है, वह व्यापक व स्थायी होता है, यज्ञ दान से मिलने वाले सुख में यश व कीर्ति व्याप्त होती है। यश नाम ईश्वर का है, अतः यश से जिस सुख की अनुभूति होती है, वह ब्रह्म सुख के बराबर है। ब्रह्म सुख से बड़ा सुख संसार में दूसरा नहीं है, क्योंकि महान् यश ही ब्रह्म का नाम है—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।

—यजुर्वेद ३२।३, श्वेताश्वतरोपनिषद् ४।१९

ऋषियों ने ब्रह्म के जिस परम पद की कल्पना की है वह यश कीर्ति है। यश कीर्ति ही अमृत है, क्योंकि यह तब तक रहती है जब तक धरती। इस प्रकार यश कीर्ति से जो सुख मिलता है, उससे महान् सुख ईश्वर के पास भी नहीं है। राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा-मसीह एवम् मोहम्मद साहब आदि पुरुषों को वही सुख प्राप्त हुआ है, जो यश कीर्ति से प्राप्त होता है।

नोट— *यदि कोई विद्वान् लेखक के किन्हीं विचारों से असहमत हों तो कृपया तर्क एवं प्रमाण सहित लिखने का कष्ट करें। उन पर पुनर्विचार किया जा सकता है।*

रामावतार
साऊथ एवेन्यू, चौबे कालोनी
रायपुर-४९२००१ म०प्र०

सच्चा सुख

सच्चा सुख उसी सद्गृहस्थ के आंगन में खलता है जहाँ माता-पिता, भाई-बहिन, पति-पत्नी, स्वामी-सेवक में परस्पर प्रेम, सद्भावना एवम् कर्त्तव्यपरायणता होती है॥

विद्याभास्कर, वेदरत्न, न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योगतीर्थ, वेदान्ताचार्य, शास्त्रशेवधि

आचार्य उदयवीर शास्त्री ग्रन्थावली

(पृष्ठ संख्या ७००० के लगभग डिमाई आकार में)

ग्रन्थावली में सम्मिलित ग्यारह ग्रन्थ

१.	न्यायदर्शन भाष्य	१५०-००
२.	वैशेषिकदर्शन भाष्य	१२५-००
३.	सांख्यदर्शन भाष्य	१२५-००
४.	योगदर्शन भाष्य	१००-००
५.	वेदान्तदर्शन भाष्य (ब्रह्मसूत्र)	१८०-००
६.	मीमांसादर्शन का विद्योदय भाष्य	३५०-००
७.	सांख्यदर्शन का इतिहास	२५०-००
८.	सांख्य सिद्धान्त	२००-००
९.	वेदान्तदर्शन का इतिहास	२००-००
१०.	प्राचीन सांख्य सन्दर्भ	१००-००
११.	वीर तरंगिणी (लेखों का संग्रह)	२५०-००

सम्पूर्ण ग्रन्थावली के
ग्यारह खण्डों का मूल्य २०३०-००

यह अमूल्य ग्रन्थावली बहुत बढ़िया कागज पर, सुन्दर छपाई, पक्की कपड़े की जिल्द में नयनाभिराम भी है।

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-प्रदायिनी

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती की

सरल-सुबोध आध्यात्मिक पुस्तकें

आनन्द गायत्री कथा	१४-००
एक ही रास्ता	१२-००
शंकर और दयानन्द	८-००
मानव जीवन-गाथा	१३-००
सत्यनारायण व्रत कथा	५-००
भक्त और भगवान	१२-००
उपनिषदों का सन्देश	१८-००
घोर घने जंगल में	२०-००
मानव और मानवता	३०-००
प्रभु मिलन की राह	२०-००
यह धन किसका है ?	२२-००
बोध-कथाएँ	१६-००
दो रास्ते	१७-००
दुनिया में रहना किस तरह ?	१५-००
तत्वज्ञान	२०-००
प्रभु-दर्शन	१५-००
प्रभु-भक्ति	१२-००
महामन्त्र	१२-००
सुखी गृहस्थ	७-००
त्यागमयी देवियाँ	८-००

अंग्रेजी पुस्तकें

Anand Gayatry Katha	30-00
The Only Way	30-00
Bodh Kathayen	40-00
How To Lead Life?	30-00

जीवनी

महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)	१०-००
महात्मा आनन्द स्वामी (हिन्दी)	२५-००

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती कृत विद्वत्तापूर्ण पुस्तकें

महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००-००
वाल्मीकि रामायण	१७५-००
षड्दर्शनम्	१५०-००
चाणक्यनीति दर्पण	६०-००
विदुरनीतिः	४०-००
ब्रह्मचर्य गौरव	९-००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	९-००
दिव्य दयानन्द	१२-००
कुछ करो कुछ बनो	१२-००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१२-००
आदर्श परिवार	१५-००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	१५-००
वेद सौरभ	१२-००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५-००
वैदिक विवाह पद्धति	८-००
ऋग्वेद सूक्ति सुधा	२५-००
यजुर्वेद सूक्ति सुधा	१२-००
अथर्ववेद सूक्ति सुधा	१५-००
सामवेद सूक्ति सुधा	१२-००
ऋग्वेद शतकम्	१०-००
यजुर्वेद शतकम्	१०-००
सामवेद शतकम्	१०-००
अथर्ववेद शतकम्	१०-००
भक्ति संगीत शतकम्	६-००
चमत्कारी ओषधियाँ	१२-००
घरेलू ओषधियाँ	१२-००
चतुर्वेद शतकम् (सजिल्द)	५०-००
स्वर्ण पथ	१२-००
प्रार्थना लोक	४०.००
प्रार्थना-प्रकाश	८.००
प्रभात-वन्दन	८.००
शिवसंकल्प	८.००

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

आदि शंकराचार्य वेदान्ती नहीं थे	स्वामी विद्यानन्द सरस्वती	४०-००
वेद-मीमांसा	स्वामी विद्यानन्द सरस्वती	५०-००
सृष्टि विज्ञान और विकासवाद	स्वामी विद्यानन्द सरस्वती	४०-००
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	१५०-००
दयानन्द जीवन चरित	लेखक : देवेन्द्र मुखोपाध्याय अनु० : पं० घासीराम	२५०-००
शतपथब्राह्मण (तीन खण्ड)	अनु० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	१८००-००
महात्मा हंसराज (जीवनी)	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	६०-००
महात्मा हंसराज ग्रन्थावली (चार खण्ड)	लेखक-सम्पादक प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	२४०-००
आर्य सूक्ति सुधा	प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	१२-००
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (ग्यारह खण्ड)	ले० स० डॉ० भवानीलाल भारतीय तथा प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु	६६०-००
चयनिका	क्षितीश वेदालंकार	१२५-००
वैदिक मधुवृष्टि	पं० रामनाथ वेदालंकार	६०-००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	आ० प्रियव्रत वेदवाचस्पति	५०-००
महाभारत सूक्तिसुधा	पं० चन्द्रभानु सिद्धान्तभूषण	४०-००
श्यामजी कृष्ण वर्मा	डॉ० भवानीलाल भारतीय	२४-००
आर्यसमाज विषयक साहित्य परिचय	डॉ० भवानीलाल भारतीय	२५-००
कल्याणमार्ग का पथिक (स्वामी श्रद्धानन्द की जीवनी)	डॉ० भवानीलाल भारतीय	प्रेस में
आर्यसमाज के बीस बलिदानी	डॉ० भवानीलाल भारतीय	१५-००
धर्म का स्वरूप	डॉ० प्रशान्त वेदालंकार	५०-००
ऋषि बोध कथा	स्वामी वेदानन्द सरस्वती	१०-००
वैदिक धर्म	स्वामी वेदानन्द सरस्वती	२५-००
ईश्वर का स्वरूप	सुरेशचन्द्र वेदालंकार	प्रेस में
सहेलियों की वार्ता	सुरेशचन्द्र वेदालंकार	२०-००
सन्ध्या रहस्य	पं० विश्वनाथ विद्यालंकार	२५-००
आर्यसमाज का कायाकल्प कैसे हो ?	प्रो० रामविचार एम० ए०	४-००
वैदिक धर्म का संक्षिप्त परिचय	ओम्प्रकाश त्यागी	६-००
पूर्व और पश्चिम	नित्यानन्द पटेल	३५-००
सन्ध्या विनय	नित्यानन्द पटेल	६-००
गीत सागर	पं० नन्दलाल वानप्रस्थी	२५-००
वेद भगवान बोले	पं० वा० विष्णुदयाल (मारीशस)	१५-००
हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष	पं० नरेन्द्र	१५-००
आचार्य शंकर का काल	आ० उदयवीर शास्त्री	१०-००

याज्ञिक आचार-संहिता	पं० वीरसेन वेदश्रमी	४५-००
प्राणायाम विधि	महात्मा नारायण स्वामी	२-००
प्रेरक बोध कथाएँ	नरेन्द्र विद्यावाचस्पति	१५-००
ओंकार गायत्री शतकम्	कवि कस्तूरचन्द	३-००
जीवात्मा	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	४०.००
सन्ध्या : क्या, क्यों, कैसे	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	१५-००
विवाह और विवाहित जीवन	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	१८-००
जीवन गीत	धर्मजित् जिज्ञासु	१२-००
पंचमहायज्ञविधि	महर्षि दयानन्द	३-००
व्यवहारभानु	महर्षि दयानन्द	४-००
आर्योद्देश्यरत्नमाला	महर्षि दयानन्द	१-५०
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	महर्षि दयानन्द	१-५०
ब्रह्मचर्यसन्देश	सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	२५-००
श्रीमद्भगवद्गीता	पं० सत्यपाल विद्यालंकार	१५-००

WORKS OF SVAMI SATYAPRAKASH SARASVATI

Founders of Sciences in Ancient India (Two Vols.)	500-00
Coinage in Ancient India (Two Vols.)	600-00
Geometry in Ancient India	350-00
Brahmgupta and His Works	350-00
God and His Divine Love	5-00
The Critical and Cultural Study of Satapath Brahman	In Press
Speeches, Writings & Addresses Vol.I : VINCITVERITAS	150-00
Speeches Writings & Addresses Vol.II : ARYA SAMAJ; A RENAISSANCE	150-00
Speeches, Writings & Addresses Vol. III : DAYANAND ; A PHILOSOPHER	150-00
Speeches, Writings & Addresses Vol. IV THREE LIFE HAZARDS	150-00

कर्म काण्ड की पुस्तकें

आर्य सत्संग गुटका	३-००	संध्या-हवन-दर्पण (उर्दू)	८-००
पंचयज्ञ प्रकाशिका	८-००	सत्संग मंजरी	६-००
वैदिक संध्या	१-००	Vedic Prayer	3-00
सामाजिक पद्धतियाँ (मदनजीत आर्य)	१२-००		

घर का वैद्य

जब प्रकृति की अनमोल दवाइयाँ आपको आसानी से उपलब्ध हों तो गोली, पुड़िया, कैप्सूल या इन्जेक्शन की क्या जरूरत है ?

घर का वैद्य—प्याज	७-००	घर का वैद्य—हल्दी	७-००
घर का वैद्य—लहसुन	७-००	घर का वैद्य—बरगद	७-००
घर का वैद्य—गन्ना	७-००	घर का वैद्य—दूध-घी	७-००
घर का वैद्य—नीम	७-००	घर का वैद्य—दही-मट्ठा	७-००
घर का वैद्य—सिरस	७-००	घर का वैद्य—हींग	७-००
घर का वैद्य—तुलसी	७-००	घर का वैद्य—नमक	७-००
घर का वैद्य—आँवला	७-००	घर का वैद्य—बेल	७-००
घर का वैद्य—नींबू	७-००	घर का वैद्य—शहद	७-००
घर का वैद्य—पीपल	७-००	घर का वैद्य—फिटकरी	७-००
घर का वैद्य—आक	७-००	घर का वैद्य—साग-भाजी	७-००
घर का वैद्य—गाजर	७-००	घर का वैद्य—अनाज	७-००
घर का वैद्य—मूली	७-००	घर का वैद्य—फल-फूल	७-००
घर का वैद्य—अदरक	७-००	घर का वैद्य—धूप-पानी	१५-००

सभी छब्बीस पुस्तकें छः आकर्षक जिल्दों में भी उपलब्ध

घर का वैद्य-१ (प्याज, लहसुन, गन्ना, नीम, सिरस)	४५-००
घर का वैद्य-२ (तुलसी, आँवला, नींबू, पीपल, आक)	४५-००
घर का वैद्य-३ (गाजर, मूली, अदरक, हल्दी, बरगद)	४५-००
घर का वैद्य-४ (दूध-घी, दही-मट्ठा, हींग, नमक, बेल)	४५-००
घर का वैद्य-५ (शहद, अनाज, फिटकरी, साग-भाजी, फल-फूल)	४५-००
घर का वैद्य—धूप-पानी	४०-००

चित्र

स्वामी दयानन्द (झण्डेवाला)	१६" × २२" बहुरंगी	६-००
स्वामी दयानन्द (कुर्सी)	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी दयानन्द (आसन)	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी श्रद्धानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
गुरु विरजानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
पण्डित लेखराम	१८" × २२" एक रंग	३-००
स्वामी दर्शनानन्द	१८" × २२" एक रंग	३-००
पं० गुरुदत विद्यार्थी	१८" × २२" एक रंग	३-००
महात्मा हंसराज	१८" × २२" एक रंग	३-००

बाल साहित्य

आर्य नेताओं की बालोपयोगी जीवनियाँ

महर्षि दयानन्द	*त्रिलोकचन्द विशारद*	४-५०
गुरु विरजानन्द	*त्रिलोकचन्द विशारद*	४-५०
स्वामी श्रद्धानन्द	*त्रिलोकचन्द विशारद*	४-५०
धर्मवीर पं० लेखराम	*त्रिलोकचन्द विशारद*	३-००
मुनिवर पं० गुरुदत्त	*त्रिलोकचन्द विशारद*	३-००
स्वामी दर्शनानन्द	*सत्यभूषण वेदालंकार*	३-००
महात्मा हंसराज	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	४-५०
वीतराग सेनानी स्वामी स्वतन्त्रानन्द	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	४-५०
तपोधन महात्मा नारायण स्वामी	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	५-५०
देवतास्वरूप भाई परमानन्द	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	५-५०
नैतिक शिक्षा—प्रथम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	२.५०
नैतिक शिक्षा—द्वितीय	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	२.५०
नैतिक शिक्षा—तृतीय	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	३.५०
नैतिक शिक्षा—चतुर्थ	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	४-५०
नैतिक शिक्षा—पंचम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	४.५०
नैतिक शिक्षा—षष्ठ	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	५.५०
नैतिक शिक्षा—सप्तम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	५.५०
नैतिक शिक्षा—अष्टम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	५.५०
नैतिक शिक्षा—नवम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	८००
नैतिक शिक्षा—दशम	*सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०*	८००
ब्रह्मचर्य गौरव	*स्वामी जगदीश्वरानन्द*	९००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	*स्वामी जगदीश्वरानन्द*	९००
स्वर्ण पथ	*स्वामी जगीदश्वरानन्द*	१२००
आचार्य गौरव	*ब्र० नन्दकिशोर*	५००
त्यागमयी देवियाँ	*महात्मा आनन्द स्वामी*	८००
हमारे बालनायक	*सुनील शर्मा*	८००
देश के दुलारे	*सुनील शर्मा*	८००
हमारे कर्णधार	*सुनील शर्मा*	८००
आदर्श महिलाएँ	*नीरू शर्मा*	८००
कथा पच्चीसी	*स्वामी दर्शनानन्द*	८००
बाल शिक्षा	*स्वामी दर्शनानन्द*	२.५०
वैदिक शिष्टाचार	*हरिश्चन्द्र विद्यालंकार*	३००
दयानन्द चित्रावली	*पं० रामगोपाल विद्यालंकार*	२५.००
आर्य सूक्ति सुधा	*प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु*	१२-००

बस्ती और मरघट

फ़कीर इब्राहीम के निवास-स्थान से दायाँ रास्ता मरघट की ओर तथा बायाँ बस्ती की ओर जाता था। राहगीर इब्राहीम से बस्ती का रास्ता पूछते। इब्राहीम कहता दायें जाना उधर बस्ती है, बेचारे राहगीर पहुँच जाते मरघट। वापस लौटकर इब्राहीम को गालियाँ देते। इब्राहीम कहता मैं तो जबसे पैदा हुआ हूँ, यही देख रहा हूँ कि बायीं ओर से निरन्तर लोग उठ-उठकर दायीं ओर बसने आ रहे हैं, जबकि जो दायीं ओर है, सदा से वहीं बसे हैं, अत: बस्ती दायीं ओर ही है।

नींव का पत्थर

लाल बहादुर शास्त्री जब लोक सेवक मण्डल के अध्यक्ष बने तो बहुत संकोची हो गये थे। वे नहीं चाहते थे कि उनका नाम पत्र-पत्रिकाओं में छपे और लोग उनका स्वागत व प्रशंसा करें। एक दिन उनके कुछ मित्रों ने उनसे पूछा, 'शास्त्रीजी! आपको प्रचार से इतना परहेज क्यों है?'

शास्त्रीजी कुछ देर सोचकर बोले, 'लाला लाजपत राय ने लोक सेवक मण्डल की दीक्षा देते समय कहा था, 'लाल बहादुर! ताजमहल में दो तरह के पत्थर लगे हैं। एक बढ़िया संगमरमर के पत्थर हैं जिनकी चमक सारी दुनिया देखती है। दूसरे वे हैं जो ताजमहल की नींव में हैं और जिनके जीवन में सिर्फ अँधेरा है, किन्तु ताज तो उन्हीं के सहारे खड़ा है।' लालाजी के वे शब्द मुझे हर समय याद रहते हैं। इसीलिए मैं नींव का पत्थर ही बना रहना चाहता हूँ।

आत्म-नियन्त्रण का अभ्यास

एक बार कौत्स अपने गुरु महर्षि कण्व के आश्रम में तपस्या कर रहे थे। एक दिन गुरु और शिष्य दोनों ही जंगल में देर तक काम करते रहे। इसी बीच गुरु ने कौत्स से कहा कि हे वत्स, तुम अब आश्रम में जाओ। रास्ते में कौत्स ने पीड़ा से कराहती हुई एक सुन्दर स्त्री को देखा, पर कुछ ही क्षण रुककर अपनी राह चलते बने। पीछे से महर्षि कण्व भी उसी रास्ते से आये और उन्होंने भी स्त्री को वैसे ही कराहते देखा तो उन्हें अपने शिष्य पर बहुत ही क्रोध आया। स्वयं वे उस स्त्री को उठाकर आश्रम में ले-आये और उसकी चिकित्सा की व्यवस्था करा दी। फिर उन्होंने अपने शिष्य कौत्स को बुलाकर कहा कि जब तुमने इस स्त्री को मार्ग में कराहते हुए देखा तो उसे उठाया क्यों नहीं और आश्रम में लाकर उसकी सेवा का उचित प्रबन्ध क्यों नहीं किया? कौत्स ने नतमस्तक होकर कहा— हे भगवन्! मुझे सन्देह था कि कहीं मैं स्त्री के सौंदर्य से विचलित न हो जाऊँ। इसलिए चुपचाप चला आया। महर्षि ने गम्भीर होकर कहा वत्स! इससे क्या सौंदर्य से विरक्ति हो जाएगी? छिपा हुआ भाव तो कभी भी प्रकट हो सकता है, अत: वासनाओं के आकर्षण से बचने का एक मात्र उपाय है कि वैसे ही वातावरण में

रहकर आत्म-नियन्त्रण का अभ्यास किया जाए। जिस प्रकार तैरना सूखे में नहीं सीखा जा सकता है, उसी प्रकार आत्म-नियन्त्रण का अभ्यास एकान्त में नहीं हो सकता।

कुरूपता और सुन्दरता

ग्रीस (यूनान) के सुविख्यात दार्शनिक सुकरात बहुत कुरूप थे। वे सदा अपने पास एक दर्पण रखते थे। जिसमें प्राय: अपना मुख देखा करते थे। उनकी इस क्रिया पर लोगों को बड़ा आश्चर्य होता। एक दिन कुछ लोगों ने सुकरात से इसका कारण पूछा। सुकरात थोड़ा हँसे, फिर बोले—'मैं जानता हूँ कि मैं बहुत कुरूप हूँ। इसलिए मैं क्षण-क्षण दपर्ण में अपना प्रतिबिम्ब निहारा करता हूँ जिससे मुझे हर क्षण यह अनुभूति बनी रहे कि मैं बदसूरत हूँ और अपनी इस कुरूपता को सुन्दरता में बदलने के लिए मुझे सुन्दर और उत्तम कार्य करने चाहिए।' 'किसी सुन्दर व्यक्ति को भी यह समझकर ही दपर्ण देखना चाहिए कि जैसा वह सुन्दर है वैसे ही उसके कार्य भी सुन्दर होने चाहिएँ, तभी रूप की सार्थकता है।'

शौर्य का सम्मान

बल्लारी। दक्षिण भारत का बहुत छोटा-सा राज्य। मलबाई देसाई शासिका—विधवा, परन्तु शौर्य की जीवन्त प्रतिमा। छत्रपति शिवाजी ने राज्य पर आक्रमण किया। दिल्ली सल्तनत के दाँत खट्टे करनेवाले गुरिल्ला युद्ध के बेमिसाल मराठों के सामने मुट्ठीभर बल्लारी सैनिक लड़ते तो कब तक, परन्तु वे लड़े और खूब लड़े। पराजय निश्चित थी।

मलबाई बन्दिनी बनाकर भी, बड़े सम्मान के साथ शिवाजी के सम्मुख लायी गयी। उनके क्रोधान्त होंठ फुँकार उठे—'छत्रपति! नारी होने के कारण मेरा परिहास क्या शोभनीय है? तुम्हारा राज्य बड़ा है, बल्लारी छोटा। तुम स्वतन्त्र हो, थोड़ी देर पहले हम भी स्वतन्त्र थे, स्वतन्त्रता के लिए पूरी शक्ति से लोहा लिया, परन्तु असमान शक्ति के सामने पराजय स्पष्ट थी। फिर मृत्युदण्डवाले शत्रु के साथ यह सम्मान का नाटक कैसा?'

छत्रपति सिंहासन से उठे। हाथ जोड़े—'बल्लारी स्वतन्त्र था, स्वतन्त्र है। मैं आपका आक्रन्ता शत्रु नहीं पुत्र हूँ। तेजस्विनी माता जीजाबाई के परलोक गमन पश्चात् मैं मातृविहीन, उन सदृश मातृत्व के संरक्षण की छाँव ढूँढ़ता आपके द्वार पहुँचा। शौर्य की चर्चा बहुत सुनी थी पर आज परख लिया। मुझे आपमें अपनी माता की उसी तेजोमय मूर्त्ति के दर्शन हुए हैं। यदि शिवा का अपराध क्षमा कर सकें तो उसे अपना पुत्र स्वीकार कर लें।' गद्‌गद वाणी में हृदय उद्‌गार प्रकट कर दिये शिवाजी ने।

शौर्य शिखा रणचण्डी क्षण में वत्सलमयी बन गयी। आगे बढ़ी और शिवाजी को अंक में भर लिया।

सत्यार्थप्रकाश

[आधुनिक हिन्दी रूपान्तर]

यदि आप महर्षि के अमर ग्रन्थ '**सत्यार्थप्रकाश**' को समझना चाहते हैं तो प्रस्तुत है इस ग्रन्थ का आधुनिक हिन्दी रूपान्तर। रूपान्तरकार हैं—**आर्यजगत् के** सुप्रसिद्ध विद्वान् **स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती**।

स्वामी जी ने कम से कम ४५ बार इस ग्रन्थ का आद्योपान्त पाठ किया है। इस के प्रत्येक वाक्य को समझने का प्रयत्न किया है। इस में जो छापे की अशुद्धियां रह गयी थीं, प्रूफ व संशोधकों की असावधानी से कोई शब्द छूट गया था, इस प्रकार की सभी अशुद्धियों को ठीक कर दिया गया है। जो तेरहवें और चौदहवें समुल्लासों की हिन्दी बड़ी टेढ़ी-मेढ़ी है, क्योंकि उस समय बाईबल और कुरान के भाष्य मुहावरेदार भाषा में उपलब्ध नहीं थे। अब इन दोनों समुल्लासों की भाषा को भी आधुनिक हिन्दी का रूप दे दिया गया है।

जैसे सत्यार्थप्रकाश के गुजराती, बंगाली, मराठी, तेलुगु, असमिया आदि भाषाओं में अनुवाद हुए हैं, उसी प्रकार यह संस्करण आधुनिक हिन्दी रूपान्तर है।

आज तक जितने भी संस्करण छपे हैं, उन सभी से सुन्दर, अनेक टिप्पणियों से विभूषित, कठिन शब्दों के अर्थ से युक्त यह संस्करण है। पाठक पढ़कर भाव-विभोर हो उठेंगे।

अपने स्वाध्याय के लिए, अपने मित्रों-सम्बन्धियों को भेंट देने के लिए उपयोगी संस्करण।

मूल्य : १२५-०० रुपये

प्रकाशक-मुद्रक अजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेद प्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

सत्यार्थ

[आधुनिक हिन्दी

यदि आप महर्षि के अमर ग्रन्थ 'सत्य
प्रस्तुत है इस ग्रन्थ का आधुनिक हिन्दी रूपान
सुप्रसिद्ध विद्वान् **स्वामी जगदीश्वरानन्द स**

स्वामी जी ने कम से कम ४५ बार
है। इस के प्रत्येक वाक्य को समझने का
अशुद्धियां रह गयी थीं, प्रूफ व संशोधकों की
था, इस प्रकार की सभी अशुद्धियों को ठीक
चौदहवें समुल्लासों की हिन्दी बड़ी टेढ़ी-मेढ़ी
कुरान के भाष्य मुहावरेदार भाषा में उपलब्ध
की भाषा को भी आधुनिक हिन्दी का रूप दे

जैसे सत्यार्थप्रकाश के गुजराती, बंगा
भाषाओं में अनुवाद हुए हैं, उसी प्रकार यह सं

आज तक जितने भी संस्करण छपे हैं,
से विभूषित, कठिन शब्दों के अर्थ से युक्त यह
विभोर हो उठेंगे।

अपने स्वाध्याय के लिए, अपने मित्र
उपयोगी संस्करण।

मूल्य : १२५-००

प्रकाशक-मुद्रक अजयकुमार ने सम्पादित कर
वेद प्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क